पाप और विज्ञान

ले०— डाइसन कार्टर

अनु०— श्री 'मुन्शी'

प्रस्तावना— डा० कोशाम्बी

करेन्ट पब्लिशर्स

कानपुर

प्रथम संस्करण
अक्तूबर
१९५७

मूल्य
तीन रुपये पचास नये पैसे

मुद्रक
बाजपेयी प्रेस
कानपुर

क्रम :— पृष्ठ

—:o:—

प्रस्तावना

किसी भी आधुनिक नगर में सामाजिक परिपक्वता प्राप्त करने वाला कोई भी इंसान कह सकता है कि अपराध, पाप और विज्ञान का मतलब तो खुद ही ज़ाहिर है। हम में से अधिकतर, कम से कम हिन्दुस्तान के रहने वाले लोग, जानते हैं कि अलग अलग धर्मों में पाप की अलग-अलग व्याख्यायें हैं। एक मुसलमान के लिये शराब पोना पाप है। एक हिन्दू के लिये गाय का मांस खाना पाप है। पर, एक ईसाई यह दोनों ही काम रत्ती भर आत्मसंताप के बिना कर सकता है। पाप की यह अलग अलग व्याख्यायें समाज के नियन्त्रण के लिये काफी सिद्ध नहीं हुई। इसलिये, कुछ कामों को–जिन्हे अपराध कहा जाता है–रोकने के लिये कानूनी कार्यवाइयाँ की जाती हैं। इन कामों के लिये सज़ा देने का अधिकार पुलिस और अदालतों को दिया जाता है। सज़ा कारगर हो, इसके लिये जरूरी होता है कि अपराध का पता लगाया जाय और अपराधी के खिलाफ कुछ कानूनी कार्यवाई की जाय। पर अधिक मामलों में, यह साबित करना मुश्किल होता है कि अब पाप का फल मिल गया है। इसलिये, यह कह कर संतोष कर लिया जाता है कि पापी अपनी पापों का फल दूसरी दुनिया में या अगले जन्म में भोगेगा। पर, विज्ञान के अन्तर्गत नतीजों की नाप–जोख सावधानी से किये गये प्रयोगों और अनुभवों के तर्कपूर्ण भौतिकवादी विश्लेषण के आधार पर ही होती है। इसमें आध्यात्मिक और अदालती नियमों का समावेश नहीं होता। जहर की एक पुड़िया चाट जाने वाला इंसान मरेगा जरूर, भले ही यह काम कानूनी हो या न हो।

शरीर के अन्दर किसी रोग के कीटाणुओं के उचित मात्रा में पहुँच जाने पर वह रोग होगा जरूर, भले ही भगवान की इच्छा हो या न हो। साथ ही, रोग का निश्चित रूप से घटना-बढ़ना भी जारी रहेगा।

अगर किसी बुरे काम के सम्बन्ध में इन तीनों (धार्मिक, कानूनी और वैज्ञानिक—अ०) नजरियों से हम एक ही नतीजे पहुँचे, यानी उस काम के करने से रोग हो जाने की भारी सम्भावना हो, साथ ही वह अपराध भी हो तो समाज उस खतरनाक बुराई को उखाड़ फेंकने की भरसक कोशिश करता दिखाई पड़ता है। यौन-सम्बन्धों तथा उससे सम्बन्धित बातों—तलाक, गुप्त रोग, वेश्यावृत्ति के नियन्त्रण के बारे में तो बात ऐसी है ही। उसी तरह, शराब खोरी तथा इन्सान, उसके परिवार और समाज पर मशीन युग में बढ़ती हुई दुर्घटनाओं में प्रकट होने वाले इस शराबखोरी के प्रभाव के नियन्त्रण के बारे में भी बात ऐसी ही है।

अभी हाल में, मौजूदा जमाने की दो एकदम अलग-अलग सभ्यताओं ने—जो अपने-अपने ढंग की आदर्श सभ्यतायें हैं—इन बुराइयों को उखाड़ फेंकने के लिए कुछ तरीके अपनाये हैं। डाइसन कार्टर ने उनकी सच्ची और निष्पक्ष रिपोर्ट पेश की है। कोई इस बात से इनकार नहीं कर सकता कि अमरीका में विज्ञान का महत्वपूर्ण विकास हुआ है। पर, कोई इससे भी इन्कार नहीं कर सकता कि वहाँ पुलिसशक्ति का उससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण विकास हुआ है। अमरीका के सभी धार्मिक दल ऐसे मसलों पर अपनी पूरी ताकत जुटा देते हैं। फिर भी, वहाँ तलाकों की संख्या दुनिया भर में करीब-करीब सबसे ऊँची है। "सुधार" के राजनीतिक आन्दोलनों, पुलिस की विशेष कार्यवाइयों और गिरजाघरों में लगातार धर्मोपदेश के बावजूद अमरीका में गुप्त रोग, वेश्यावृत्ति और शराबखोरी अपनी-अपनी जगह पर ज्यों की

त्यों जमी हैं। सोवियत रूस एक नई समाज-व्यवस्था का पहला और सबसे बड़ा प्रतिनिधि है। वहाँ इस बात की पूरी गुंजाइश थी कि वर्तमान समाज की ये खौफनाक वसीयतें पूरे जोर-शोर से भड़क उठें। क्रान्ति ने संगठित धर्म-व्यवस्था को खतम कर दिया था। पहले के अधिकाँश प्रतिबन्ध हटा दिये गये थे। वेश्या को अपराधी मानकर दन्ड नहीं दिया जाता था। तलाक बहुत आसान हो गया था। सरकार की ओर से सस्ती शराब का प्रबन्ध कर दिया गया था। इनके साथ-साथ, क्रान्ति के बाद विदेशियों के आक्रमणों और उत्पादन की बढ़ती हुई दर से उत्पन्न हुई कठिनाइयों को भी सोचिये। पूँजीवादी तर्क-पद्धति आपको इसी नतीजे पर पहुँचायेगी कि अब वहाँ व्यभिचार का खूब बोलबाला होगा। पर, हम देखते यह हैं कि सोवियत रूस में वेश्यावृत्ति एकदम खतम होगयी है। तलाकों की दर को घटाकर न्यूनतम स्तर पर ला दिया गया है। जो देश कभी किसानों और मजदूरों की नशेबाजी से बदनाम था, अब वहाँ शराबखोरी का क़रीब-क़रीब लोप हो चुका है।

ये परिणाम, जो बड़े ही विचित्र और असंगत प्रतीत होते हैं, सोवियत रूस में वैज्ञानिक अनुसंधान के द्वारा इन समस्याओं की जड़ों का पता लगाकर ही प्राप्त किये गये थे। पूँजीवादी देशों में पुलिस वाला जिस सवाल को उठाने की हिम्मत नहीं कर सकता, पादरी जिस सवाल को नहीं उठा सकता, वैज्ञानिक जिस सवाल को उठाता ही नहीं, वह यह है—आखिर इन बुराइयों की जड़ क्या है? सोवियत रूस का उत्तर है कि कुछ वर्ग इन बुराइयों से बेशुमार मुनाफ़ा कमाते हैं, इसीलिए ये मौजूद हैं। इस तरह सामाजिक बुराइयों से मुनाफा कमाना, सामाजिक बुराइयों का शोषण करना जनता के बहुसंख्यक भाग के आम शोषण का ही नतीजा है। इससे जनता का बहुत बड़ा भाग इन की तरफ झुकता है। इसीलिये, ये फैलती हैं। जनता के आम शोषण का अन्त होने से ही, सोवियत रूस में इनके मूल कारणों का भी अन्त हुआ है। जो इनसे

मुनाफा कमाते थे उनको कड़ा दन्ड दिया गया, उनको नहीं जो इनके शिकार हुये थे; अर्थात् चकले चलाने वालों को, वेश्याओं को नहीं; गैर कानूनी तौर पर शराब बनाने वालों को, शराब पीने वालों को नहीं। साथ ही, सोवियत रूस में काम पाने का अधिकार हर नागरिक का अधिकार बना दिया गया। हरएक के लिये अच्छा रहन-सहन मुमकिन बना दिया गया। नयी आजादी का असर आसानी से दिखाई देने लगा। कानून, पार्टी के प्रचार और जनता की वैज्ञानिक शिक्षा का सहारा लेना सरल बन गया। जनता को पूरी तरह शिक्षित बनाने का प्रबन्ध किया गया। सस्ती व अच्छी पठन सामग्री का प्रबन्ध किया गया। सभी के लिये सुन्दर संगीत, अच्छे से अच्छे सनेमा, संस्कृति-पार्कों और खेल कूद के मैदानों के द्वारा मनोरंजन और थकान मिटाने के भिन्न-भिन्न साधनों की व्यवस्था कर दी गई। पहले की सभी बुराइयां छू-मंतर हो गयीं; क्योंकि अब उनके टिकने को कोई वजह ही नहीं रह गई थी। मनुष्य का जीवन पहली बार रहने के लायक सुखमय जीवन बना। जीवन से कतराने और भागने की अब कोई जरूरत नहीं रह गई थी।

भारत में, हमारे सामने भी यही समस्यायें हैं। भारत में उन्हें दूर करने के लिये अमरीकी तरीके अपनाये जा रहे हैं; उदाहरण के लिये—शराबबन्दी। किन्तु देशवासियों से जीवन को आवश्यक चीजें छीन कर मुनाफाखोर उनके जीवन को तिल-तिल घटाते रहने को तैयार हैं। और यह काम वह समाज के प्रतिष्ठित वर्ग के एक सम्मान प्राप्त सदस्य की हैसियत से करता है। उत्पीड़ितों के क्रोध से पुलिस उनकी और उनके मुनाफों की रक्षा करती है। भुखमरी, गंदी बस्तियों और शिक्षा की कमी से आम जनता के जीवन को कैसी हानि पहुँच रही है, इसे तो वैज्ञानिक भुला देता है। पर, वह सुझावों, डाक्टरी मदद, यहाँ तक कि प्रशंसा के द्वारा पूँजीपति की सहायता के लिये दौड़ पड़ता है; क्योंकि धनी के सिवा अच्छी रकमें दे ही कौन सकता है! जिन लोगों ने भारी

मुनाफे कमाये हैं, उनके अलावा खोजबीन के लिये पैसे खर्च कर ही कौन सकता है? जहाँ तक धर्म की बात है, वह सिर्फ इतनी घोषणा कर देता है कि पीड़ितों को अगले किसी जन्म में उनका हक मिल जायगा। कुछ और तसल्ली देना हुई, तो धर्म कह देता है: ये लोग जरूर ही अपने किसी पिछले जन्म के पापों को भोग रहे हैं। इसका सीधा-अर्थ यह है कि उनकी तरफ नजर ही न उठाई जाय, या उनका और भी डटकर शोषण किया जाय। अपनी शुभेच्छाओं के बावजूद, क्रान्ति के तमाम फलों को सुधारक लोग बिना क्रान्ति किये ही हासिल कर लेना चाहते हैं।

प्रोफेसर डी० डी० कोसाम्बी

पूना

बिना किसी सफाई के

मुझे चेतावनी दी जा चुकी है कि मैं यह पुस्तक न लिखूँ। मुझे यह भी यकीन है कि बहुत से लोगों को इसे पढ़ने को सख्ती से मना किया जायगा।

यह न तो किताब पढ़ने का कोई न्योता है और न कुछ निरुत्साहित करना ही। यह तो तथ्य को केवल सचाई से पेश करना है।

आम तौर से इस पुस्तक में उठाई गई समस्याओं को अनैतिकता या पाप जैसे अस्पष्ट शब्द कहकर, दबा और टाल दिया जाता है। इनमें खास हैं; बुराइयाँ, वेश्यावृत्ति, औरतों का क्रय-विक्रय, गुप्त रोग, गर्भपात, व्यभिचार की सन्तान, तलाक, नवयुवकों की दुराचारी प्रवृत्तियाँ और शराब का गैरकानूनी व्यवसाय।

मैंने भरसक कोशिश की है कि किसी को भी नाराज न करूँ। पर, मैं जानता हूं कि इन पृष्ठों पर लिखी हुई कुछ बातों की सचाई कुछ भावुक पाठकों को चौंका देगी। मैं उनकी क्षमा का भागी हूं। काश, यह किताब सिर्फ एक और **रोमांचक रहस्योद्घाटन** भर होती या पाप के बारे में व्यक्तिगत अनुभव ही पेश करती! पर, ऐसी बहुत सी किताबें निकल चुकी हैं। मौजूदा किताब उनसे बिलकुल भिन्न है।

इस किताब में पेश की गई बातें सम्भवतः लोगों को बुरी न लगें। किन्तु उन्हें पेश करने का उद्देश्य और पुस्तक के असली नतीजे लोगों

के क्रोध और हमले का निशाना बनेंगे। वजह यह है कि इस किताब में अनैतिकता को एक नये तरीके से पेश किया गया है। इस किताब में अनैतिकता की समस्याओं का वैज्ञानिक नजरिये से एक अमली, पूरी तरह समझ में आने वाला तथा एकदम सफल समाधान पेश किया गया है।

इस दावे पर या तो आपको हँसी आयेगी या आप इसे नफ़रत से से टाल देंगे। हर एक नौजवान जानता है कि मानव समाज युगों-युगों से अनैतिक बुराइयों के बोझ से बुरी तरह पीड़ित रहा है। पाप का अन्त करने के लिए, एक बड़ी मात्रा में ईमानदारी से अध्ययन किया गया है। उपदेशों, लेखों और कानूनों का ज्यादा से ज्यादा इस्तेमाल किया गया है। पर, यह सब कोशिशें असफल हुई हैं। युद्ध के दौरान में, हमारे अत्यन्त आगे बढ़े हुये देशों में नैतिक ताक़तों का गम्भीर पतन हुआ है। युद्ध के बाद के काल में तो और भी ज्यादा पतन की संभावनाएँ मौजूद हैं। इससे कोई भी यथार्थवादी व्यक्ति यही नतीजा निकलेगा, जो हमने निकाला है। तो फिर, कौन है वह धृष्ट जो कहे कि जहाँ और सब प्रयत्न विफल हुये हैं, वहाँ यह किताब सफलता प्रदान करेगी।

कम से कम मेरा तो यह दावा नहीं है।

अब हम इस बात को तय करलें कि यह पुस्तक सामाजिक नैतिकता के बारे में होने वाले प्रयोगों का एक बिना नमक-मिर्च लगाया हुआ सही-सही ब्यौरा है। यह प्रयोगों एक बहुत बड़े पैमाने पर असाधारण सफलता से सम्पादित किया जा चुका है। मैंने इसमें किसी भी अपने सिद्धान्त का पैबन्द नहीं लगाया है। जहाँ तक मुझे मालूम है, यह विवरण आम लोगों के सामने कभी भी पेश नहीं किया गया है। जिन अधिकारियों के पास इन तथ्यों का ब्यौरा था, उन्होंने इन्हें प्रकाश

में ही नहीं आने दिया; यहाँ तक कि डाक्टरों और सामाजिक कार्यकर्त्ताओं तक को इनसे परिचित न होने देने के लिये बड़ी सतर्कता बर्ती गई है।

मैं फिर से दोहराऊँ। इस पुस्तक में सिर्फ तथ्य दिये गये हैं और प्रमाणित तथा व्यवहार योग्य ऐसे तरीकों को बताया गया है, जिनके द्वारा मौजूदा समाज से अनैतिकता का नामोनिशान उतनी ही सफलता से मिटाया जा सकता है जितनी सफलता से मध्ययुग की महामारी को मिटाया जा चुका है।

यह खरा दावा उन पाठकों को जरूर असमंजस में डाल देगा जो गुप्त रोगों को जीतने के के लिए तो एक "वैज्ञानिक" कार्यक्रम स्वीकार करने को तैयार हैं, परन्तु परिवार की पवित्रता से सम्बन्धित पापों,—जैसे तलाक, स्त्री-पुरुषों के बीच नैतिक सम्बन्ध, वेश्यावृत्ति या शराब खोरी के जरिये मानव प्रतिष्ठा का विनाश, आदि—के लिये केवल आध्यात्मिक उपायों को ही उपयुक्त मानते हैं। बहुत से लोगों की समझ में तो "अनैतिक" शब्द का अर्थ ही यह है कि वह बात सिर्फ व्यक्ति के आध्यात्मिक जीवन से ही सम्बन्धित है, इसलिये वह तर्क के क्षेत्र से बाहर की चीज है। या दूसरी ओर, ऐसे लोग हैं जो मानते हैं कि अनैतिकता को सिर्फ डाक्टरी दवा-दारू ही समाप्त कर सकती है; मानो सामाजिक बुराई कोई ऐसा रोग हो कि प्रयोगशाला में खोजबीन करने वालों को छूट मिलते ही, वे इसके शमन के लिये एक ऐसा ही अचूक रस तैयार कर लेंगे, जैसे सूजाक के मर्ज को 'पेनीसिलेन' का इंजेक्शन तुरंत ठीक कर देता है।

आज दोनों ही विचारधाराओं को शक्तिशाली समर्थन हासिल है। इनमें से हर एक विचार अनेकों को सही जंचता है। कारण यह है कि दोनों में ही सचाई का कुछ-कुछ अंश है। फिर भी, सभी

ईमानदार और समझदार लोग एक ही नतीजे पर पहुँचेंगे कि हमारे देशों में अमली रूप से न तो तथाकथित डाक्टरी और न शुद्ध धार्मिक तरीके ही पाप को मिटाने में सफल हो रहे हैं। अनैतिकता काबू में नहीं आ रही है। नैतिक पतन इस तेजी से बढ़ रहा है कि प्रजातंत्र के अन्तर्गत पहले कभी नहीं देखा गया था।

पिछले कुछ वर्षों में जो कुछ भी हुआ है, उससे समाज की एक सुन्दर मनोहारी तसवीर बना लेना मुश्किल ही होगा।

'विक्ट्री गर्ल'
और समाजीकृत महिलायें

हरएक चीज को शंका और अविश्वास से देखने वाले लोग नैतिकता सम्बन्धी तमाम महत्वपूर्ण समस्याओं पर कंधे बिचका देते हैं और यह कह कर टाल देते हैं कि पाप का आरम्भ तो मनुष्य के साथ ही, आदम और हव्वा के साथ ही हुआ है। हमें यहाँ उस आदि पाप के आरम्भ के बारे में विभिन्न धार्मिक मतमतान्तरों से वास्ता नहीं है। वर्तमान प्रजातंत्रिक राष्ट्रों को अनैतिकता से लड़ने के लिये जागृत करने का सबसे अधिक श्रेय निश्चय ही एक वैज्ञानिक को है। अमरीका की 'पब्लिक हेल्थ सर्विस' के तत्कालीन सबसे बड़े सर्जन, डा० थामस पैरन ने सन् १९३६ में एक पत्रिका के लिये एक ऐतिहासिक लेख लिखा था। इसे पढ़ कर, लाखों हैरत में पड़ गये थे। अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के एक डाक्टर ने पहली बार गुप्त रोगों के बाबत उस ढोंगपूर्ण

प्रतिबन्ध को तोड़ा था, जो शिक्षित जनता से सचाई को छिपाता था। उसने उन दो रोगों का नाम स्पष्ट लिखा, जिन्हें सदा ही सम्पादकों की कलम छापे में आने से रोकती रही थी, यानी गर्मी और सूजाक का; ताकि हर जवान और बूढ़ा इन नामों को साफ-साफ पढ़ ले।

सभ्य जगत को हतबुद्धि करने वाले, वे तथ्य इस प्रकार हैं: अमरीका में सन् १६३६ में ३० लाख लोग गर्मी से पीड़ित थे। सूजाक के रोगियों की संख्या लगभग ६० लाख थी। प्रति वर्ष ५ लाख व्यक्ति गर्मी और इसके तिगुने सूजाक के शिकार बनते थे। प्रति वर्ष सैकड़ों-हजारों व्यक्ति गर्मी के कारण दिल के रोग से मरते थे। गर्मी के दुष्प्रभाव के कारण, पागल हुये मनुष्यों की परिचर्या और इलाज में करोड़ों डालर खर्च होते थे। इन दो गुप्त रोगों से शारीरिक और मानसिक यातनायें अत्यन्त भयानक रूप धारण कर लेती थीं। कनाडा, ग्रेट ब्रिटेन तथा अन्य बहुत से देशों में हालत ऐसी ही, या इससे भी बदतर थी। डाक्टर पैरन ने साफ़-साफ़ बताया कि ये दोनों ही रोग कुछ थोड़े से लोगों के गुप्त दुराचारों के "नैतिक दण्ड" भर नहीं हैं। उन्होंने बताया कि ये दो ऐसी महामारियाँ हैं, जो ग़रीब-अमीर धर्मी-अधर्मी, काले-गोरे—हर स्तर के प्राणियों को ग्रसती हैं। इनकी वृद्धि इतने वेग से हो रही है कि राष्ट्र के जन-स्वास्थ्य की जड़ों को ही खतरा पैदा हो गया है।

डा० पैरन की आवाज का कुछ पाखंडियों ने ही विरोध किया। पर अनैतिकता पर इस डाक्टरी हमले की सफलता में शक और शुबहा के बावजूद, अधिकतर पादरियों ने डाक्टरों, सामाजिक कार्यकर्ताओं सम्पादकों और विधान सभा के सदस्यों के साथ दृढ़तापूर्वक गुप्त रोगों को जीतने के काम में योग दिया। डा० पैरन की इस घोषणा ने कि

गर्मी का रोग, जो सबसे अधिक लोगों की मौत का कारण बनता है, एक ही पीढ़ी में खतम किया जा सकता है, इन लोगों के उत्साह को और भी बढ़ा दिया।

यह सन् १६३६ में हुआ था। दो वर्षों बाद, आन्दोलन तेजी से बढ़ चला। क़ानून बनाये गये। बहुत सा धन इकट्ठा किया गया। शफ़ाखाने और प्रयोगशालायें खोली गयीं। हजारों की तादाद में इश्तिहार बाँटे गये। हजारों लोगों के खून की जाँच की गई। आक्रमण एक बड़े पैमाने पर आरम्भ होगया।

सन् १६४० में डा० पैरन ने दूसरा लेख लिखा। अब तक गर्मी के मरीजों का मुश्किल से पन्द्रहवाँ ही हिस्सा ठीक हुआ था। सूज़ाक के मरीजों की तादाद पहिले जैसी ही थी। गुप्त रोगों के खिलाफ यह आन्दोलन आशा के मुताबिक सफलता प्राप्त करने में असफल रहा था। शीघ्र ही सरकारी आँकड़ों ने यह भी जाहिर कर दिया कि आन्दोलन का असर एकदम उल्टा भी हो सकता है। सन् १६४२ में अमरीकी सेना में इन रोगों से पीड़ित लोगों की संख्या सन् १६३६ के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा थी।

यकायक फ़ौजी अफसरों ने भी इसका बीड़ा उठा लिया। वे तेजी से इस बुराई का "सफाया" करने में जुट पड़े। पिछले अनुभवों की तरफ से आँखें मूँद कर, उन्होंने पुलिस की ताकत के बल पर पाप को खदेड़ने की ठान ली। लोग हमेशा से पाप का नाश करने के उद्देश्य से बेचारी वेश्या की बलि करते आये थे। तुरन्त ही उन्होंने भी युगों से हमले की शिकार होने वाली वेश्या का पीछा करना शुरू कर दिया। नैतिकता के उन पन्डों ने जो "शर्म! शर्म!", "पाप! पाप!", "दण्ड! दण्ड!" की गुहार मचाने में आनन्द का अनुभव करते हैं, उत्तेजित होकर वेश्याओं की प्रताड़णा शुरू कर दी। कुछ ही

वर्षों पहले गुप्त रोगों को वैज्ञानिक नम्रता से नष्ट करने को सभ्य और कारगर रूप में पेश की गयी, इस योजना से यह एक बिलकुल ही भिन्न तरीका था।

असली दिवालियापन तो तब सामने आया जब कई प्रख्यात व्यक्तियों, विशेषकर जीन टनी, ने भद्र पुरुषों की तरह भावुकतापूर्ण अपीलों की झड़ी लगा दी। उन्होंने आवाजें उठाईं : लोग पाप करना छोड़ दें, इन्द्रियों को भूल जायें और 'सदाचार' नामक पुरातन सद्गुण को ग्रहण करके, रोगों को उखाड़ फेंकें। फौज में तो दरअसल हजारों को प्रोत्साहित किया गया कि वे कुछ अरसे के लिए पुरुषत्व ही त्याग दें और सन्यासी बन जायें। और, इसके पीछे यह स्वतः सिद्ध सिद्धान्त था कि सन्यासियों को कभी गुप्त रोग नहीं होते। इस प्रकार, सुवैज्ञानिक रूप से प्रारम्भ की गई योजना ने मध्ययुगीन अपीलों का रूप धारण कर लिया।

सन् १९४३ में, उत्तरी अमरीका के 'आफिस आफ डिफैन्स, हैल्थ, एण्ड वैलफेअर सरविसेज' (सैनिकों की सुरक्षा, स्वास्थ तथा कल्याण सम्बन्धी दफ्तर) और फौजी अफसरों के बीच खुल्लमखुल्ला आम विवाद छिड़ गया। इस झगड़े ने देश के तमाम लोगों को चौंका दिया। गुप्त रोगों से पीड़ित लोगों की संख्या को देखकर 'सुरक्षा स्वास्थ और कल्याण सम्बन्धी' दफ्तर में तहलका मच गया था। उसने माँग की कि तमाम बड़े केन्द्रों में स्थित, 'कुत्सित गृहों' से स्त्रियों को निकाल बाहर किया जाय। उन्होंने मांग उठाई कि बदनाम, लालबत्ती वाले वर्जित जिलों को सख्ती से बन्द कर दिया जाय। बहुत से पादरी भी मदद के लिये दौड़ पड़े। उन्होंने देखा कि इस गन्दगी के खिलाफ जिसे कि बहुत से लोग बहुत पहले ही खतम हुआ समझने की बातें कर रहे थे, जनता का क्रोध भड़काने में देर नहीं लगती। पर अचम्भे की

बात हुई कि फौजी अधिकारियों ने इस आन्दोलन का कड़ा विरोध किया। कुछ फौजी अधिकारियों की स्पष्ट दलीलों को सुनकर तो सुधारक गण हक्के-बक्के रह गये। फौजी अधिकारियों ने कहा कि 'कुत्सित मुहल्लों' की सफाई करने का मतलब यह होगा कि वेश्यायें सारे नगर पर छा जायेंगी। वैसे खास मुहल्लों में बंधी रहने पर, फौजी-पुलिस सैनिकों को इन मुहल्लों में जाने से रोक सकती है।

सम्पादकों और सामाजिक कार्यकर्त्ताओं के लिये, यह निश्चित करना कठिन हो गया कि इस वाद—विवाद में किसका पक्ष लिया जाय। पर, 'सुरक्षा, स्वास्थ और कल्याण सम्बन्धो' दफ्तर के चार्ल्स पी० टैफ्ट महोदय को अपनी योजना की सदाक़त का पूरा भरोसा था और उन्होंने आंकड़ों का एक ऐसा अजब तख़मीना पेश किया जैसा न तो लोगों ने कभी देखा था, न सुना था। उनके विभाग का कहना था कि घर में बैठी-बैठी एक वेश्या एक रात में पचास फौजियों को रोगी कर सकती है, जबकि वही वेश्या सड़क पर एक रात में आधे दर्जन से ज्यादा ग्राहकों को रोगी नहीं कर सकती। टैफ्ट महोदय को सदाचार वाली दलील में कोई विश्वास नहीं था। उन्होंने फौजी अफसरों को याद दिलाई कि नगर की बुराई को लालबत्ती वाले, 'वर्जित मुहल्लों' में समेटे रहने का एक ही नतीजा होता है— इससे फौजों में पाप का प्रचार होता है, खास तौर से नई उमर के सैनिकों के बीच।

इस वाद-विवाद का एक असली परिणाम निकला था। लाखों सम्मान-प्राप्त व्यक्तियों को यह स्वीकार करने पर मजबूर होना पड़ा, कि वेश्याओं का व्यापार बहुत ही सुव्यवस्थित है। उन्हें यह भी मानना पड़ा कि वेश्याओं के यहाँ जाने वाले अधिकांश सज्जन उन्हीं के पास-पड़ोस में रहने वाले लोग हैं।

अब नैतिकता के पुरोहितों की शब्दावली में एक नया शब्द जुड़ गया था : 'विक्ट्री गर्ल'। अमरीकी नौसेना के दो डाक्टरों ने तो अखबारों में गजब का प्रचार शुरू किया। लैफ्टिनैन्ट कमान्डर विशेनग्रेड ने न्यूयार्क वासियों को बताया कि संसार के इस सबसे बड़े नगर में वेश्या कोई खतरे की चीज नहीं रह गई थी। गुप्त रोगों से पीड़ित चार नाविकों मे से तीन ऐसे थे, जिन्हें यह रोग ग़ैरपेशेवर लड़कियों से लगे थे। उन्होंने सोचा था कि अनिश्चित तौर पर अकस्मात ही मिलने वाली लड़कियों से कोई खतरा नहीं है। लैफ्टिनैन्ट कमान्डर बकले ने फिलाडेल्फिया के आंकड़े देकर बताया कि वहाँ इनकी संख्या और भी बढ़ी-चढ़ी थी। उसने घोषित किया कि पेशेवर औरतों के मुकाबले इन लड़कियों की संख्या चौगुनी थी ये लड़कियाँ कौन थीं? चौदह साल और उससे ऊपर की बालाएँ।

टाइम्स अखबार ने अपने नौर्फोक-स्थित सम्वाददाता के यह आंकड़े छापे : "जब कि पर्ल हार्बर की घटना से पहले नौर्फोक की अधिकांश वेश्यायें पेशेवर औरतें थीं, अब लगभग ८५ से ९० फीसदी तक गैर पेशेवर लड़कियाँ हैं। इनमें से ज्यादातर नई उमर की लड़कियाँ हैं, जो अच्छी तनखाओं वाली नौकरियों के लालच में नौर्फोक में आई थीं। ये लड़कियाँ हर हफ्ते सैकड़ों की तादाद में आती हैं। छोटे-छोटे कस्बों में, खेतों पर और दफ्तरों में क्लर्की वगैरह करने वाली, इन लड़कियों को नौर्फोक में मनचाहा आदमी तजबीज कर लेना आसान पड़ता है।"

जर्नल आफ दि अमरीकन मेडिकल एसोसियेशन ने इन तथ्यों की पुष्टि की : "पुराने किस्म की वेश्या अब पीछे जा पड़ी है। नये किस्म की वेश्या १८ से लेकर २३-२४ साल तक की नई उमर की लड़की है...... कहा जा सकता है कि गुप्त रोगों को लादने और फैलाने वाले हम लोगों में से ही हैं।"

अटलांटिक महासागर के उस पार, 'ब्रिटिश मैडिकल एसोसियेशन' का जर्नल स्वतंत्र रूप से इंगलैंड के बारे में इसी क़िस्म की रिपोर्टें छाप रहा था। गुप्त रोगों से पीड़ित लन्दन निवासियों की संख्या उसने वही छापी थी, जो बकले ने फिलाडेल्फिया के लिये बताई थी। पेशेवर वेश्या से गर्मी पाने वालों की संख्या यदि एक मानी जाय तो, अंग्रेज डाक्टरों के स्पष्ट शब्दों में, गैर पेशेवर वेश्याओं से गर्मी पाने वालों की संख्या चार थी। आस्ट्रेलिया के डाक्टरों ने अपने देश में ऐसी बदचलन लड़कियों की औसत संख्या और भी ज़्यादा बताई। कनाडा के अधिकारियों ने तो बड़ी नम्रता बरती। उन्होंने सार्वजनिक रूप से अपने यहाँ के आँकड़ों का अन्दाज ही नहीं लगाया; पर तरुणों के मुकद्दमे करने वाली अदालतों के कागजों को देखने से पता चलता है कि वहाँ भी नयी उमर की लड़कियाँ एक कोने से दूसरे कोने तक व्यवस्थित रूप से पाप को अपनाती जा रहीं थी।

ऊपर के तथ्यों से एक बात स्पष्ट हो जाती है—यह 'विक्ट्री गर्ल' (विजय बालिका) अनैतिकता और दुराचरण का ही एक स्वरूप थी। इसमें कतई शक नहीं कि युद्ध के दौरान में बड़ी संख्या में आबादी का एक जगह से दूसरी जगह जाना और यहाँ-वहाँ उद्योगों में अव्यवस्थित बढ़ती, अनैतिकता को फैलाने में काफी मददगार रही है। लेकिन एक नये खतरे, सद्गुणों और शिष्टता के परे एक नयी प्रवृत्ति और एक नयी तरह की बदचलन लड़कियों के अस्तित्व में आने का जो गुल-गपाड़ा मचाया जा रहा था, उसे वास्तविक तथ्यों ने झूठा साबित कर दिया। हिकमैन पावेल की **नाइन्टी टाइम्स गिल्टी** (नब्बे गुने अपराधी) और कर्टनी रायली कूपर की **डिजाइन्स इन स्कार्लेट** (सुर्ख कसीदे) दोनों ही किताबें सन् १९३९ में छपीं थीं। इन दोनों में अनैतिकता के बारे में जाँच-पड़ताल की गई थी कि उपरोक्त प्रवृत्ति तो सन् १९२५ से मौजूद है। सन् १९४४ मे, स्वास्थ्य और शिक्षा

सम्बन्धी युद्ध कालीन क्लाड पेपर की उपसमित ने अपनी रिपोर्ट में बतलाया कि तरुणों में दुराचार सम्बन्धी अपराधों में पिछले दिनों जो भयानक वृद्धि हुई है, वह नये युद्ध का ही परिणाम नहीं है। उसने बतलाया कि यह उस प्रक्रिया का परिणाम है जो पहले महायुद्ध के बाद ही शुरू हो गयी थी; वही प्रक्रिया जिसने अच्छे और बुरे आदमियों के बीच के सामाजिक भेद को तेजी से तोड़ना शुरू कर दिया था।

ऊपर की बातों से दो नतीजे निकलते हैं। पहला तो यह कि गुप्त रोगों पर डाक्टरी हमला असफल रहा था। डाक्टर पैरन की यह धारणा कि शिक्षा के प्रसार और शफाखानों की सहायता से गर्मी को एक ही पीढ़ी में नष्ट किया जा सकता है, अब मानने योग्य बात नहीं रही थी। कितने ही प्रगतिशील पादरियों ने पहले से ही इस नतीजे की घोषणा कर दी थी। इतवार के दिन स्कूलों में दिये जाने वाले आचार-विचार सम्बन्धी धार्मिक उपदेशों की बात छोड़िये। यह सीधी-सादी और जानी-मानी बात है कि गुप्त रोगों को अनैतिकता की पूरी समस्या से जुदा करना सम्भव नहीं है। जिस प्रकार नेक चलनी की शिक्षा देकर गुप्त रोगों को खतम नहीं किया जा सकता, उसी तरह तमाम सुनियोजित डाक्टरी योजनायें भी तब तक नहीं सफल हो सकतीं जब तक लाखों-करोड़ों इंसान स्वच्छन्द यौन-सम्बन्धों के लिये कीमत चुकाने में कोई भी नैतिक हिचक महसूस नहीं करते।

दूसरा नतीजा जरा कम स्पष्ट है। गुप्त रोगों के खिलाफ जिहाद बोलने वाले लोग एक अजीब क़िस्म के एकतरफेपने के शिकार होते हैं। वे इन रोगों की जड़ औरतों और लड़कियों को घोषित करते हैं और उसके लिये बड़ी चौकस दलीलें देते हैं। वे आपको जोड़-बाकी तक करके, बताते है कि एक रात मे वेश्या कितनी बार पुरुषत्व को खराब

कर सकती है। पर, जब ऐन्द्रिक-भोग के दूसरे सहयोगी अर्थात् पुरुष की बात आती है तो वे आँखें बचाकर, टाल जाते हैं। रोगों की शिकार, गैरजिम्मेदार, बदचलन लड़कियों पर दाँत पीसते हुये, अंधे सुधारक हाथ उठा-उठा कर कड़ी कार्यवाई की माँग करते हैं। औरतों का नाम लीजिये कि उनकी 'सफ़ाई' के आन्दोलनों की तैयारियाँ होने लगती हैं। परन्तु पुरुष! —उनकी तो आंकड़ों में गणना भर करना काफ़ी है। खदेड़ना, गिरफ़्तार करना, सजा देना और सुधारना है तो लड़कियों को ही। पुरुषों की तो सिर्फ चिकित्सा होती है, कभी-कभी चेतावनी दे दी जाती है; कभी रोग से बचाव का कुछ सामान और कभी उपदेश भी दे दिया जाता है।

विज्ञान-साहित्य के क्षेत्र में भी जहाँ आम तौर से निष्पक्षता की उम्मीद की जाती है, हमें इसी एकतरफेपने के दर्शन होते है। चिकित्सक लोग हमेशा यही कहते हुये सुने जाते हैं कि औरतें रोग लगाती हैं और उनसे पुरुषों को लग जाता है।

सामाजिक अनैतिकता को खतम करने का एक दृष्टिकोण एक फूटे हुये घंटे के स्वर की तरह है, जो किसी को भी सहमत नहीं कर सकता। इसे आधार माना गया तो हम किसी नतीजे पर न पहुँचेंगे। अनैतिकता—यदि हम इस शब्द से केवल गुप्त रोगों के खतरे का ही अर्थ लगायें तो भी, —अब एक ऐसी समस्या बन गयी है जिससे बड़े गम्भीर सामाजिक दुष्परिणामों की आशंका की जा सकती है। और, इस समस्या को हल करने मे हमारे वैज्ञानिक और धार्मिक नेताओं ने अगर किसी भी दिशा में कामयाबी हासिल की है तो सिर्फ इसे और ज्यादा उलझाने में ही।

निश्चय ही नैतिकता सम्बन्धी समस्याओं के बहुत से 'पंडितों' को जड़मति क़रार दिया जा सकता है। उनका अपना खुद का एक मर्ज़ है—

जड़मतिवाद, जो उनकी आत्मा का एक असाध्य रोग है और जो धूर्तता तथा अन्धविश्वास के मानसिक सूक्ष्म जीवाणुओं से पैदा होता है।

शब्द-कोषों में बहुधा जड़मति शब्द का अर्थ लिखा होता है—वह व्यक्ति जो विचारों और आदर्शों से परे है। उपन्यासकार गोर्की ने, जो जड़मतियों को मानवी सुख के सबसे घातक शत्रु समझते थे, इन लोगों के सम्बन्ध में एक ऐसी कलम से लिखा है जो मानो अग्नि-वर्षण करती हो।

गोर्की ने लिखा है: "जिसे 'कानून की रूढ़' और 'परम्परा' कहते हैं वह सभी जड़मतियों के भेजे में घड़ी की तरह का एक ऐसा सादा यंत्र पैदा कर देती है, जिसकी कमानी के हिलने-डुलने से ही जड़तापूर्ण विचारों के पहिये चलने लगते हैं"—अपने इस आक्रमण के अन्त में, गोर्की ने कहा: "हर एक जड़मति का नारा होता है—जैसा जो कुछ अब तक रहा है, वैसा ही हमेशा बना रहेगा। मरी मछली की तरह, जड़मति भी दिमाग़ की तरफ से नीचे को सड़ना शुरू करते हैं!"

कड़वी बात? भला उनको पाप से क्या लेना-देना? पर, अफ़सोस कि उत्तर बहुत ही साफ़ है। प्रजातन्त्र के अन्तर्गत नैतिक समस्याओं को हल करने में हमारी असफलता के कारण हमारे बीच सुधारकों की संख्या बहुत ज्यादा बढ़ गयी है, जो सभाओं में भाषण देते हुये तो पाप पर जोरदार हमला बोलते हैं पर अलग जाकर, धीरे से कंधे बिचकाकर मुस्कराते हुए कहते हैं: "अजी वेश्यावृत्ति जैसी अभी तक कायम रही है, वैसी ही हमेशा रहेगी!" अनैतिकता सम्बन्धी अपने विचारों को वे नयी डाक्टरी खोज-बीनों का जामा तो पहिना देते हैं, फिर भी उनकी आत्म-सुधार की बातों में उतनी ही नीरसता और निरर्थकता रहती है जितनी कि एक घड़ी की टिक्-टिक् में। वे हमें इससे आगे

नहीं लेजा पाते। यही है—शुद्ध जड़मतिवाद, मूर्खतापूर्वक बुरे बीते जमाने को कलेजे से लगाये हुये आत्म-संतोष करने की दशा!

एक शब्द, सड़ी-गली दशा।

पर संभवतः, आज हम सड़ांध को किसी भी चोले में बर्दाश्त नहीं कर सकते। हमारी पीढ़ी इतिहास में अपने किस्म की एक अनोखी पीढ़ी है। एक विराट पैमाने पर, आज हम पुरातन के सभी दुखों को नष्ट करने के काम में जुटे हुये हैं—उस पुरातन के जिसमें मानव जाति युद्ध और गरीबी के बन्धनों से शताब्दियों तक जकड़ी रही है। अब समूची मानव जाति बड़ी तेज रफ्तार से अपने लिये सचमुच ही सुन्दर और महान् भविष्य का निर्माण कर रही है।

अनैतिकता के बारे में, इन जड़मतियों का कहना है कि सामाजिक भ्रष्टाचार हमारे बीच सदा से मौजूद रहा है और अनन्तकाल तक मौजूद रहेगा। पर यह बात कितनी झूठ है, तभी मालूम हो जाता है जब हम गुलाम-प्रथा की बुराइयों की बाबत सोचते हैं। मनुष्यों का गुलामों के रूप में खरीदा और बेचा जाना हजारों वर्षों से कायम था। और बुद्धि के पीछे लट्ठ लिये घूमने वाले, ये जड़मति इसका यह कह कर समर्थन भी करते चले आये थे कि यह तो सनातन है। फिर भी लगभग एक शताब्दी के अन्दर, तमाम, सभ्य राष्ट्रों ने गुलाम प्रथा को जड़ से उखाड़ फेंका। तदुपरान्त 'टाइफ़स' (एक प्रकार का बुखार जिसमें सारे शरीर पर चिकत्ते पड़ जाते थे) जैसी महामारियों को भी खतम कर दिया गया, जिन्हें जड़मति "सनातन" घोषित किया करते थे। आज तो राष्ट्र-संघ के अन्य विशेषज्ञ संसार से अकाल को देश निकाला करने की योजनायें बना रहे हैं। युगों-युगों से दुनियाँ के लाखों-करोड़ों इन्सान गुलामी, बीमारी और भुखमरी की भट्ठी मे भुनते

रहे हैं और ये भरे पेट वाले तोंदियल, स्वस्थ, जड़मति सदा यही सलाह देते रहे कि ये बुराइयाँ तो सनातन हैं।

गोर्की के इन शब्दों को मैं यहाँ फिर दोहराऊँगा; "ज़रा देर के लिये तो ईमानदार बनें और सचाई को देखें।"

जिन दिनों गुप्त रोगों के खिलाफ अमरीकी जिहाद अपनी पूरी तेज़ी पर था, उन्हीं दिनों सार्वजनिक सुरक्षा विभाग के फिलिप एस. ब्रौटन महोदय ने एक छोटी सी पुस्तिका लिखी: **वेश्यावृत्ति और युद्ध**। इसका खूब प्रचार हुआ। 'पब्लिक एफेयर्स कमिटी' नामक संस्था इसकी प्रकाशक थी और इसमें दी गयीं बातें "इन समस्याओं से सम्बन्धित तमाम विभागों द्वारा जाँच ली गई थीं।" अस्तु पुस्तिका में लिखी सभी बातें अधिकारपूर्ण थीं। अमरीकी सेना से भरे एक कस्बे में हर दूसरी जगहों की तरह ही बदचलनी की असाधारण बढ़ती का वर्णन करते हुये, ब्रौटन महाशय ने लिखा था: "यह कोई ऐसा व्यवसाय नहीं कि जिसे चलाने के लिये राष्ट्रीय पैमाने पर एक आन्दोलन की जरूरत हो। वह स्वयं ही फैलने लगता है, जिस तरह शहद के पीछे मक्खियाँ दौड़ती हैं और जहाज के पीछे जलपक्षी उड़ चलते हैं। इतिहास में हर एक सेना को इसका सामना करना ही पड़ा है। हर बन्दरगाह, हर व्यवसाय की बढ़ती के ज़माने में यही हुआ है। और इसी के साथ-साथ रोग भी आये हैं।"

इस गुहार-पुकार को दुहराने के बाद भी बुराइयाँ और गुप्त रोग तो सनातन हैं, लेखक ने यह कहकर कि जनता इनको कैसे दूर कर सकती है हजारों शब्दों द्वारा अपने ही मत का खंडन किया है। मैंने ब्रौटन साहब का मत इसलिये उद्धृत किया है कि उनका नज़रिया अर्द्ध-सरकारी है और अनैतिकता के प्रति प्रचलित बहुधा सर्वमान्य, पराजयवादी और सतही नज़रिये को पेश करता है। श्री ब्रौटन की

बातें सरासर झूठ हैं।

इतिहास में सबसे बड़ी सेनाओं में से एक वेश्यावृत्ति से बिलकुल मुक्त है। अब तक के सबसे बड़े औद्योगिक उत्थान की विशेषता व्यभिचार की बढ़ती नहीं, बल्कि उसका खात्मा ही है। पिछले बीस वर्षों में कितने ही ऐसे औद्योगिक नगर और विशाल बन्दरगाह बड़ी तेजी से बने हैं जहाँ अनैतिकता को बड़ी तो क्या, एक छोटी समस्या के रूप में भी पनपने का मौक़ा नहीं मिला।

दरअसल ऐसा देश मौजूद है, जहाँ बीस करोड़ जनता के समाज में वेश्यावृति और गुप्त रोगों को अमली तौर पर नेस्तनाबूत कर दिया गया है। वह देश है—सोवियत समाजवादी प्रजातंत्र संघ।

लार्ड तथा लेडी पैस्फील्ड (बियट्रिस एवं सिडनी वैब) तथा क्वेन्टिन रेनोल्ड्स और दर्जनों दूसरे चिकित्सा-विशेषज्ञों,—जिन्होंने अमरीका, ब्रिटेन फ्रांस और जर्मनी के विज्ञान सम्बन्धी अखबारों में अपनी रिपोर्टें छापी हैं,—साथ ही तमाम दूसरे निष्पक्ष प्रेक्षकों ने भी एक मत से स्वीकार किया है कि सोवियत रूस में पिछले बीस वर्षों में अनैतिकता की सभी गम्भीर समस्याएँ आश्चर्यजनक सफलता के साथ हल कर ली गई हैं। इन समस्याओं में व्यभिचार और शराबख़ोरी की समस्याएँ भी शामिल हैं। ध्यान देने की बात तो यह है कि यह सफलता इसके बावजूद हासिल की गई है कि बीस बरस पहले रूस की जनता व्यभिचार और शराबख़ोरी में इतनी डूबी हुई थी, जितनी कि हाल के इतिहास में शायद ही किसी दूसरे महान देश की जनता डूबी हो।

पूर्वी मोर्चे पर हिटलर के हमले के कुछ ही दिनों बाद अमरीकी नौसेना के कमान्डर नॉरमन साहब ने—जो उन दिनों मॉस्को में 'हैरीमैन मिशन' के एक सदस्य थे और अमरीकी दूतावास से सम्बन्धित स्वास्थ

विभाग के अफ़सर थे—प्रेस संवाददाताओं को बताया था : लाल सेना और लाल हवाई बेड़ा गुप्त रोगों से क़रीब-क़रीब मुक्त है। संसार की और किसी सेना के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता।" इस वक्तव्य को बहुत थोड़े अख़बारों ने छापा था। मित्र-राष्ट्रों के गुप्त रोग-विरोधी आन्दोलनों के नेता तो इसे पढ़ कर चुप्पी साध गये। लगभग तीन बरस बाद, प्रोफेसर वी० वी० लेबेडेन्को सोवियत 'रैड क्रॉस' संगठन के प्रतिनिधि बनकर अमरीका आये। असोशियेटेड प्रेस ने उनसे मुलाक़ात की। प्रोफेसर लेबेडैन्को के एक वक्तव्य ने तो रिपोर्टरों को आश्चर्य में ही डाल दिया। उन्होंने बताया : "रूसी नौजवानों की नयी पीढ़ी को यह जानने का मौक़ा ही नहीं मिला कि वेश्यावृत्ति का मतलब क्या होता है।" इस बात को सुनकर—लोगों में बड़ी दिलचस्पी पैदा हुई, साथ ही बहुतों को इसकी सच्चाई में भी बहुत शक हुआ। पर जनता की तरफ़ से तमाम प्रश्नों के उठने पर भी, अमरीका में इस विषय को तुर्त-फुर्त दबा दिया गया।

पाँच साल पहिले, मुझे सोवियत के चन्द विशेषज्ञों के साथ अनैतिकता और शराबखोरी की समस्या पर बातें करने का मौका मिला था। उनके वक्तव्यों की ईमानदारी में भरोसा करने के सुस्पष्ट कारणों की वजह से, मैंने उनसे साफ़-साफ़ पूछा : "अच्छा बताइये वेश्यावृत्ति, व्यभिचारों, गुप्त रोगों, नौजवानों की दुराचारी प्रवृत्तियों और शराबखोरी आदि को सोवियत सरकार ने कैसे दूर किया था?"

वे उत्तर नहीं दे पा रहे थे। ये सोवियत नागरिक सभी नवयुवक थे। पहले-पहल उन्होंने वेश्यायें देखी भी थीं तो न्यूयॉर्क और टोरोन्टो की सड़कों पर! उन्होंने साफ़-साफ़ कहा : "इन समस्याओं को सोवियत रूस में बहुत पहिले हल कर लिया गया था, कम से कम दस बरस पहले। तब हम लोग बच्चे थे। हमें इतना तो याद आता है कि हमारे चाचा

ताक इस सम्बन्ध में बनाये गये नियमों पर बड़ी गरमागरम बातें किया करते थे। पर, उनका विवरण हमें याद नहीं है। इन लोगों के लिये तो यह एक गुजरे जमाने की बात बन चुकी है।"

उन दिनों कनाडा और सोवियत रूस के सम्बन्ध मित्रतापूर्ण तो नहीं ही थे। अनैतिकता के खिलाफ़ सोवियत के संघर्ष की पूरी कहानी को खोद निकालने में असफल होने के बाद, पता यह पड़ा कि अब तक अंग्रेजी में इस सम्बन्ध में पूरी बातें छपी ही नहीं हैं। अन्त में, व्यक्तिगत स्रोतों से कुछ बातों का विस्तार में पता चला। इन स्रोतों का सोवियत सरकार से ताल्लुक नहीं था। ये विशेषज्ञों द्वारा पेश किये गये अधिकृत तथ्य थे। जन स्वास्थ विभाग के जन कमिसार के गुप्त रोगों सम्बन्धी सलाहकार और योरुप में प्रमुख माने जाने वाले वैज्ञानिक—प्रोफेसर वी० एम० ब्रॉनर —ने वेश्यावृत्ति और गुप्त रोगों के बारे में काफ़ी सामग्री इकट्ठी की थी।

इन, और इनके बाद की रिपोर्टों, में मिलने वाली कथा ही इस पुस्तक की विषय वस्तु है।

किन्तु अमरीका, कनाडा और भारत में इस पुस्तक के जो संस्करण छपे हैं, उनसे यह संस्करण भिन्न है। उत्तरी अमरीका के बारे में इन संस्करणों में जो बातें कही गई थीं वे पुरानी पड़ गई थीं इसलिये उन्हें हटा दिया गया है और नई हाल की बातें जोड़ दी गई हैं। मैं और मेरी पत्नी कुछ ही दिनों पहले सोवियत रूस गये थे। वहाँ की हालत को हमने अपनी आँखों से देखा। पुस्तक के पहले संस्करण में जो रद्दोबदल किये गये हैं उनमें से अधिकांश का कारण यही हमारी यात्रा थी। ये नई बातें आपको इस संस्करण में मिलेंगी।[1]

अस्तु आगे आप जो कुछ इस पुस्तक में पढ़ेंगे वह सरकारी दस्तावेजों

से इकट्ठी की गई और अपनी आँखों देखी हुई सचाई की निष्पक्ष रिपोर्ट ही है।

१. इस पुस्तक का पहला अंग्रेजी संस्करण सितम्बर सन् १९५० में निकला था। प्रस्तुत अनुवाद उसके तीसरे संशोधित संस्करण से किया गया है, जो गत दिसम्बर सन् १९५२ में निकला था।

—प्रकाशक

बुराई के लिये पीले टिकट की व्यवस्था

आज सोवियत यूनियन कहाने वाले भाग पर आधुनिक सोवियत शासन का अधिकार सन् १९१७ की क्रांति के दौरान में हुआ था। देश को आर्थिक और भौतिक तबाही के साथ-साथ कम्युनिस्टों ने जिस नैतिक अधः पतन की विरासत पाई थी वह इतनी भयानक थी कि हमें यकायक विश्वास नहीं होता। रूस में बुराई का आधार थी वेश्याओं की वह संगठित व्यवस्था, जिसे जार सरकार ने पाला-पोसा और बढ़ावा दिया था। तब संसार में इस शर्मनाक व्यवस्था को कहा जाता था—'पीले टिकट की व्यवस्था'।

जार के रूस में सभी नागरिकों के पास रजिस्ट्रेशन और शिनाख़्त सम्बन्धी एक सर्टिफ़िकेट होता था जिसे आमतौर से पासपोर्ट कहते थे। असल में, आबादी पर कड़ी निगरानी रखने में इससे जारशाही पुलिस को मदद मिलती थी। इस पासपोर्ट के बिना किसी एक जगह से दूसरी जगह जाना ख़तरे से खाली नहीं था। इसके बिना हर वक़्त गिरफ़्तारी का ख़तरा बना रहता था। इसलिए, यह पासपोर्ट बड़ा कीमती था। मानो ज़िन्दा रहने का परमिट हो! पर उनकी संख्या भी कम नहीं थी जिन्हें इसको वापिस कर देने की इजाज़त मिल जाती थी, या वापिस करने पर मजबूर होना पड़ता था। यह वे महिलाएँ थीं जो वेश्यावृत्ति को अपने जीवन का पेशा बना लेती थीं। जारशाही शासन के अन्तर्गत यह पेशा राष्ट्र के लोगों के हित के लिये आवश्यक समझा जाता था। समाज में किसी महिला की स्थिति और उसकी अनैतिक कार्यवाइयों को निश्चित करने वाले थे सरकारी क़ानून।

कानून यह था कि वह औरत जो वेश्या का पेशा करे अपनी नागरिकता त्याग दे और उस पासपोर्ट के बदले अपनी रजिस्ट्री कराके, यह बदनाम 'पीला टिकट' हासिल कर ले। यह टिकट खुल्लमखुल्ला पुलिस अधिकारियों द्वारा बांटे जाते थे। टिकट में लिखा रहता था कि इसे हासिल करने वाली को पुलिस के स्थानीय नियमों के अन्तर्गत वेश्या का काम करने का सरकारी लाइसेंस हासिल है। उसे अपना धंधा चलाने की सुविधा मिल जाती थी। पर पीले टिकट वाली महिला को नागरिक अधिकारों से वंचित रहना पड़ता था। पीला टिकट उसे मानव से नीचे दर्जे का प्राणी घोषित कर देता था। सबसे भयानक बात तो यह थी कि एक बार पीला टिकट ले लेने वाली महिला जीवन भर के लिए इस बुराई में फस जाती थी। बच निकलने का कोई रास्ता नहीं था। जारशाही के अफ़सर किसी भी महिला का नागरिक टिकट लेकर उसे पीला टिकट दे देने के लिये तैयार रहते थे। पर, कानून इस बात की इजाजत नहीं देता था कि वह फिर कभी अपना इरादा बदल सके। पीला टिकट उतना ही स्थाई होता था जितना कि मध्ययुग में तपे हुये लाल लोहे की सलाखों से चोरों के माथे पर लगाया जाने वाला दाग़।

रूस भर में इन औरतों के रहने और काम करने के लम्बे चौड़े नियम बना दिये गये थे। जरूरी नहीं कि हम उनका "काम" यहाँ विस्तार से वर्णन करें। एक बार पेशा अख़्तियार कर लेने पर औरत को जिन्दगी भर के लिए कोई भला काम करने को मनाही थी। नागरिकता के पासपोर्ट के बिना नौकरी पा सकना नामुमकिन था। जारशाही हुकूमत के अन्तर्गत इस बात की क़तई कोशिश नहीं की गई कि बदचलन औरतों और लड़कियों को सुधारा जाय, उल्टे, क़ानून के जरिये इस तरह की कोशिशें न करने की कड़ी ताक़ीद कर दी गई थी। वास्तव में क़ानून का कहना था कि या तो ये तमाम औरतें इस पेशे से मजबूरन बंधी रहें या फ़ौजदारी अदालतें उन्हें कड़ी सजा दें।

शिष्टता के नाते, हम यहाँ ज़ारशाही के इन घिनौने नियमों का विस्तार से वर्णन नहीं करेंगे। पर, इतना ज़रूर कि इस तरह की औरतें समाज का आवश्यक अंग मानी जाती थीं। अधिकांश मुहल्लों की पीले टिकट वाली औरतों को किन्हीं खास घरों में रहना पड़ता था। इन घरों को सरकारी तौर पर "व्यभिचार के अड्डे" कहा जाता था। जहाँ यह नियम नहीं था, वहाँ इनके रहने का क्षेत्र अलग थे।

बहुधा किसी बड़े मकान के दरवाज़े पर जिसमें बहुत से लोग रहते हों, नामों की तख़्ती लगी रहती थी ; इस तख़्ती में बदचलन औरतों का नाम भी होता था। पर, पुलिस की ताक़ीद थी कि अपने नाम के सामने वह वेश्या शब्द ज़रूर लिखवाएँ। सामाजिक पतन की इससे ज़्यादा गम्भीर दशा की कल्पना कर सकना मुश्किल है। सन् १९१७ की क्राँति के पहले रूस भर में बुराई को यह सामाजिक मान्यता मिली हुई थी। पेशेवर औरतें अपने नाम के सामने "वेश्या" लिखें, वास्तव में इसके पीछे एक खास उद्देश्य था : कोई औरत यदि कुछ दिनों के लिये ग़रीबी की वजह से मजबूर होकर अनैतिकता के गढ़े में लुढ़क पड़े तो पुलिस और बदनाम पीले टिकट की व्यवस्था की वजह से वह किसी भी तरह बच कर निकल न पाये।

रूस में अनैतिकता की रोक थाम की यह व्यवस्था एक बहुत व्यापक पैमाने पर थी। ज़ाहिरा तौर पर, इसका उद्देश्य यह बताया जाता था कि अनैतिकता को फैलने से रोका जा रहा है। पर, इस सरकारी ढकोसले की असलियत किसी से छिपी नहीं थी। दरअसल व्यभिचार की "रोक थाम" के तमाम कानूनों का उद्देश्य वेश्याओं के बाज़ार के लिये काफ़ी तादाद में औरतें जुटाना ही था। इस व्यवस्था का एक खास लक्षण यह भी था कि तमाम बदचलन लड़कियाँ और स्त्रियाँ अलग-अलग दर्जों में बांट दी गई थीं—सबसे कीमती, ऊँचे दर्जे की रईसों और धनी व्यापारियों

के लिये कम उम्र और आकर्षक लड़कियों से लेकर सबसे नीचे दर्जे की चोरों और जुवारियों के मुहल्लों में बसने वालियों तक सभी पीली टिकट वाली औरतें कानूनी तौर पर पुलिस की निगरानी में रहती थीं। व्यवस्था इस बात की भी थी कि समय-समय पर उनकी डाक्टरी परीक्षा की जाय और उनके रहने के स्थानों की पुलिस समय-समय पर तलाशी लेती रहे। किन्तु, अमल में इससे ऊँचे दर्जे के ग्राहकों को असुविधा होती थी। इसीलिए पुलिस इन प्रभावशाली लोगों के कोप से बचने के लिये ज़्यादातर नीचे दर्जे की वेश्याओं को ही तंग किया करती थी।

इस व्यवस्था के परिणाम स्वरूप व्यभिचार ने जो रूप धारण किया उस पर एकाएकी विश्वास नहीं होता। व्यभिचार के इन अड्डों पर कभी-कभी औरतों की कमी पड़ जाती। या फ़ौजी अधिकारी शिकायत करते कि फ़ौजी दस्तों में गर्मी का रोग फैल गया है। तब कानून की पाबन्दी के नाम पर, पुलिस लगातार छापे मारने लगती। मजदूर बस्तियों की तमाम सड़कों, मकानों और मनोरंजन के स्थानों की अंधाधुंध तलाशियाँ होतीं। पेशेवर वेश्याओं को गिरफ्तार करने के साथ-साथ, कुछ दूसरी सुन्दर अच्छे घराने की, लड़कियों को भी गिरफ़्तार कर लिया जाता। इन बेगुनाह लड़कियों को अदालतों में पेश किया जाता और उन पर बिना पीला टिकट लिए पेशा करने का आरोप लगाया जाता। इस गुनाह का जुर्माना होता था ५०० रूबल। इतनी बड़ी रक़म मुश्किल से ही कभी कोई दे पाती। लिहाज़ा, कानून में दूसरा बन्दोबस्त था। अपराधी नागरिकता का पासपोर्ट वापिस कर दें और उसकी जगह पीला टिकट ले लें। ये छापे इतनी होशियारी से मारे जाते थे कि पुलिस अफ़सर असली वेश्याओं और नई लड़कियों के अलावा, ग़रीब सम्मान प्राप्त महिलाओं को भी पकड़ लाते थे। कभी-कभी इनमें वे औरतें भी शामिल होती थीं, जिनकी गोदी में नन्हें-नन्हें बच्चे होते या जो गर्भवती होती थीं। मजिस्ट्रेट करीब सभी को बड़ी उदारता से रिहा

कर देता था। अगर नहीं रिहा किया जाता तो सिर्फ उन औरतों को जिन्हें फांसना होता था। इस तरह "औरतें इकट्ठी करने" की पुलिस की इस घृणास्पद कार्यवाही को क़ानूनी जामा पहना दिया जाता था।

ध्यान देने की बात है कि जारशाही अदालतों में औरतों की स्थिति बहुत नाजुक थी। यूँ तो यह आमतौर से सभी औरतों के लिये सही है पर जो अनैतिकता से जीवन बसर करतीं उनकी हालत तो बेहद ख़राब थी। काउण्ट टाल्सटाय के उपन्यास रिज़रक्शन (पुनरजीवन) में भी एक ऐसी नारी का हृदय बेधक चित्रण है, जो व्यभिचार के जाल में फँस जाती है। टाल्सटाय ने दिखाया है कि किस तरह एक सामंती उच्च वर्ग का सदस्य भी जारशाही के अफ़सरों द्वारा स्त्रियों पर होने वाले इस निर्मम अत्याचार के विरुद्ध कुछ भी कर सकने में असमर्थ रहा। सच पूछो तो पीला टिकट नर्क का टिकट था। पुलिस की निगरानी से बचने की इजाज़त क़ानून सिर्फ दो सूरत में ही देता था। पहली कोई ऐसी अचानक बीमारी लग गई हो कि वह आदमी के काम की न रह गई हो, दूसरी—मौत।

इन हालतों में गुप्त रोग फैल रहे थे। टाल्सटाय जैसे उपन्यासकारों की रचनाओं से उत्तेजित होकर, और उच्च—वर्ग के लोगों में गर्मी के बढ़ने से घबराकर कभी—कभी प्रतिष्ठित-चिकित्सक लोग जार के क़ानून के रोग सम्बन्धी धाराओं के सख्ती से लागू किये जाने की माँग उठते। नये क़ानून पास होते। नया आन्दोलन शुरू करने का ढोंग किया जाता। मामलों की जाँच-पड़ताल के लिये पुलिस द्वारा रखे गये डाक्टरों के वेतन की दर जाँच पड़ताल किये जाने वाले लोगों की संख्या के अनुसार होती। कभी-कभी डाक्टर निरा नौसिखिया होता था। या फिर डाक्टरों का एक दल बैठाया जाता और हरेक डाक्टर को अलग-

अलग तनखा दी जाती। पुलिस उनके सामने कभी-कभी चार चार सौ प्रति घंटे के हिसाब से औरतें परीक्षा के लिये घेर लाती। उनके बिना कपड़े उतरवाये ही जाँच-पड़ताल पूरी हो जाती। जाहिर है, यह जाँच-पड़ताल सिर्फ नाम मात्र के लिये होती। और, चूँकि कोई खौफनाक मर्ज पकड़े जाने पर इन औरतों को इलाज के लिये बहुत बड़ी रक़म खर्च करने का डर रहता था, इसलिये उन्होंने बचाव का सीधा रास्ता निकाल लिया था; वे पहले ही पुलिस और डाक्टरों की जेबें गरम कर देतीं।

इसका मतलब यह नहीं कि पीले टिकट की इस घृणित व्यवस्था के अन्त करने, का रूसी चिकित्सा विशेषज्ञों ने कोई उपाय ही करने की कोशिश नहीं की। दरअसल, क्रांति से पहले के रूस में उन सभी "उपायों" को जाँचा और परखा जा चुका था, जिन्हें हमारे आधुनिक विशेषज्ञ अब खोज रहे हैं। पर, वे विशेषज्ञ इस नतीजे पर पहुँचे थे कि ये सभी उपाय ढकोसले मात्र हैं जो असल समस्या से कतराते हैं। आज से तीस वर्ष पहले डा० अब्राहम फ्लैक्सनर की पुस्तक योरप में वेश्यावृत्ति प्रकाशित हुई थी। इस विषय से सम्बंधित तमाम सभी दलीलें इस पुस्तक में पेश की जा चुकी हैं। फ्लैक्सनर की अकाट्य दलील थी कि वेश्यावृत्ति की रोक-थाम की तमाम कोशिशें मूर्खता के अलावा और कुछ नहीं हैं। उनका कहना था कि एक लम्बे अरसे तक के लिये गुप्त रोगों की बढ़ती को न तो वेश्याओं को अलग बसा कर और न वेश्याओं का दमन करके ही रोका जा सकता है। व्यभिचारिणी औरतों और उनके ग्राहकों की डाक्टरी जाँच-पड़ताल तब तक नामुमकिन थी जब तक तमाम डाक्टरों की अच्छी-खासी फ़ौज न खड़ी कर ली जाय। ब्लड-टेस्ट और दवा-दारू के जरिये गर्मी और सूजाक को रोकने के लिये कम से कम उतने शफ़ाखानों की जरूरत थी जितने कि वहाँ गैस बत्तियों के स्टेशन थे।

गुप्त रोगों के बारे में इस असलियत को जार-सरकार के अधिकारी

अच्छी तरह जानते थे। उन्होंने न तो कुछ किया, न कुछ कर ही सकते थे। वे यह भी जानते थे कि व्यभिचार पर किसी तरह के सरकारी नियंत्रण का नतीजा यही होगा कि शासन-संस्थाओं में भ्रष्टाचार बढ़ेगा। इसलिये इस भ्रष्टाचार को उन्होंने क़ानूनी दर्जा दे दिया। पीले टिकट की व्यवस्था के अन्तर्गत अपना पेशा चला सकने की सुविधा के बदले प्रत्येक वेश्या अपनी आमदनी का एक हिस्सा जिलाधीश या दूसरे सरकारी अफ़सरों को देती थी।

आज शायद हम यह सब बर्दाश्त न करें। पर, एक बात में सन् १९१७ के रूस और हमारे यहाँ अनैतिकता की समस्या एक सी है। अनैतिकता बढ़ती पर थी ज़ारशाही हुकूमत के न्याय-विभाग के सरकारी आंकड़ों के मुताबिक, पहले महायुद्ध से पहले के २० सालों में व्यभिचार और अपराध लगातार बढ़ती पर थे। हत्याओं और हिंसात्मक अपराधों में पचास फ़ीसदी बढ़ती हो गई थी। इससे भी तिगुनी तेज़ी से यौन-अपराधों की बढ़ती हुई। पीले टिकट की व्यवस्था से ये घटे नहीं। उल्टे, इस व्यवस्था के फैलाव के अनुपात में ही इन अपराधों की भी बढ़ती हुई। सन् १९१३ में, अकेले सन्टपीतर्स बुर्ग (अब लेनिनग्राद) में, सरकारी लाइसेंस प्राप्त अनैतिक महिलाओं की संख्या ६० हज़ार थी। दुराचारों के साथ ही साथ पियक्कड़ों, ख़ास तौर से नौजवान पियक्कड़ों की संख्या में भी बेतहाशा वृद्धि हुई थी। दस साल के अन्दर ही नवयुवक दुराचारियों की संख्या दुगनी हो गई थी। हालांकि ज़ारशाही अदालतें गम्भीर अपराध करने वाले नवयुवकों के मामले ही लेती थीं; उनके आंकड़ों में नई उम्र वालों के दुराचार को नहीं गिना जाता था। क्रान्ति से ठीक पहले हर १० में से ८ रूसी वेश्यायें २१ साल से कम उम्र की थीं। आधी से ज़्यादा ऐसी थीं, जिन्होंने अट्ठारह साल की उम्र से पहले ही इस पेशे को अपना लिया था। हर दस में से चार ऐसी थीं जिन्होंने सोलह वर्ष की उम्र से ही अनैतिक

जीवन शुरू कर दिया था और तमाम तो चौदह साल की होने के पहले ही अवारा बन गई थीं।

इन तथ्यों को यह कह कर टाला नहीं जा सकता कि ज़ारशाही में तो लोगों को मानव नहीं बल्कि पशु का जीवन बिताना पड़ता था। आज ऐसे ही तथ्य हमारे देशों में भी मौजूद हैं। हमारी "विक्ट्री गर्ल" भी नई उमर की ही लड़की होती है। सामाजिक इतिहास बताता है कि जब कभी भी नैतिक पतन बढ़ता है तो कम उम्र वाले दुराचारियों की संख्या भी बढ़ जाती है।

इधर कुछ दिनों से हमारी चिन्ता और भी बढ़ गई है। डाक्टरों ने अपनी कोशिशें दुगनी कर दी हैं। पुरोहित-पादरी उपदेश और चेतावनियाँ दे रहे हैं। राजनीतिक नेता विशेषज्ञों की कमेटियाँ बना रहे हैं। यही सब कुछ सन् १६१० में भी हुआ था, जब साम्राज्य में अनाचार और अपराधों की बढ़ती से घबराकर लोगों ने ज़ार सरकार पर भारी दबाव डाला था कि वह इन्हें रोके। उच्च वर्ग के ईमानदार सदस्यों और सम्मान प्राप्त पेशे के लोगों को विदेशी आगन्तुकों के सामने लज्जा से सर झुका लेना पड़ता था, जबकि वे बिना किसी हिचक के बताते कि तमाम सभ्य लोगों को 'पीले टिकट की व्यवस्था' कितनी घिनौनी मालूम होती थी। क्रान्ति से सात साल पहले, सुधारों के आन्दोलन ने इतना ज़ोर पकड़ा था कि अनाचार के ख़िलाफ़ संगठित रूप से संघर्ष चलाने के लिये ज़ार को एक कांग्रेस बुलानी पड़ी थी। इस कांग्रेस में बहस का मुख्य विषय था—अनाचार सम्बन्धी "कानूनों का अंत करना" अर्थात् सरकार द्वारा अनाचार का नियन्त्रण बन्द करना। रूस के मज़दूर संगठनों ने भी इस कांग्रेस को इतना महत्व दिया था कि इसमें अपने कुछ चुने नुमाइन्दे भेजे थे। पुलिस के दमन के बावजूद, प्रतिनिधियों की बात सुनी गई थी। उनकी बातें बहुत ही संक्षिप्त थीं। उन्होंने

ज़ारशाही, समाज-व्यवस्था की वे धज्जियाँ उड़ाई थीं कि सुनने वाले मुँह बाये रह गये। उन्होंने ज़ारशाही के आर्थिक और राजनीतिक भ्रष्टाचार, को ही अनैतिकता की बढ़ती का मूल कारण घोषित किया था और भविष्यवाणी की थी कि उसके रहते वेश्यावृत्ति और गुप्त रोगों की समस्या को हल करने का शासक वर्ग का हर प्रयत्न असफल होगा।

वाद-विवाद में इस भविष्यवाणी पर विचार-विनियम नहीं हुआ था। डर था, वैसा करने पर कहीं समूची कांग्रेस को ही साइबेरिया की जेलों की हवा न खानी पड़े। अस्तु, जीत पुलिस अधिकारियों की ही हुई। उनका कहना था कि दूसरे देशों के अनियंत्रित अनाचार के मुक़ाबिले 'पीले टिकट की व्यवस्था' कहीं उत्तम थी। उनकी दलील थी, "भले घरानों' की बहू-बेटियों पर अनैतिकता का असर पड़े, उससे कहीं अच्छा था कि "निचले वर्गों" की हजारों लाखों औरतें जिन्दगी भर के लिये अनाचार का पेशा करती रहें। पर उनकी लम्बी-चौड़ी और टालू दलीलें दृष्टता भरे कुछ शब्दों के अलावा और कुछ नहीं थीं। रूसी साम्राज्य में चूँकि अनाचार के लगातार और सरकारी तौर पर फलने फूलने की पूरी छूट थी, इसलिये सरकार के लिये वह बड़े फ़ायदे की चीज़ थी। असलियत तो यह है कि अनाचार की "रोक-थाम" के नाम पर जो लम्बी-चौड़ी रक़में रूसी महिलाओं से क़ानून के बल पर ऐंठी जाती थीं वे ज़ारशाही की भ्रष्ट हुकूमत के पेट में पहुँच जाती थीं। चूँकि ज़ारशाही पुलिस की डिक्टेटरशिप पर क़ायम थी, इसीलिये उच्च अधिकारियों ने वेश्यावृत्ति से होने वाली आमदनी को रोकना ठीक भी न समझा इस तरह क़ानूनों का अन्त करने के लिये बुलाई गई कांग्रेस का अन्त अनाचार का पेशा करने वाली, "निचले वर्गों" की औरतों की भयानक अनैतिकता के बारे में ढोंग भरे फैसलों से हुआ था। गिरजाधीशों ने इन फैसलों को अपना 'जड़मति वादी' आशीर्वाद भी दे दिया कि मनुष्य की पाप-प्रवृत्ति तो सनातन है।

संक्षेप में, कान्फ्रेन्स ने इस सिद्धान्त को मान लिया कि अनैतिकता तब तक क़ायम रहेगी जब तक इन्सान धरती पर है—मौजूद है। और अनैतिकता फैलाने की जिम्मेदार औरतें ही हैं।

इस सम्बन्ध में, हमें यहाँ उस वाद-विवाद पर भी ग़ौर करना चाहिये जो कुछ दिनों से अमरीका में चल रहा है। वाद-विवाद इस धारणा को लेकर है कि सामाजिक-समस्या के रूप में गुप्त रोग को भी दो जातियों में रखा जा सकता है। काली और गोरी। कॉर्नेल युनिवर्सिटी मेडिकल कॉलेज के 'पब्लिक प्रिवेन्टिव मैडिसन विभाग, के सुप्रसिद्ध सदस्य डाक्टर डब्लू० जी० स्मिली ने 'अमेरिकन मैडिकल एसोसिएशन' के (जून सन् १९४३ के) जर्नल में एक महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित किया अमरीकी फ़ौज के कुछ चुने हुए गर्मी के मरीजों के बारे में अपनी परीक्षाओं का जिक्र करते हुए, उन्होंने कहा :

"ये तथ्य बताते हैं कि गर्मी की बढ़ती को रोकने के लिये अमरीका में जितना भी प्रचार हुआ है, वह बहुत ही ग़लत रहा है। कहावत मशहूर है : हर दस में से एक आदमी को गर्मी होगी। पर, यह झूठ है। हमारे देश के अधिकांश भाग में गोरे आदमियों को गर्मी बहुत कम है; जिन लोगों को है भी, वे अधिकतर गोरी जाति के सबसे निचले वर्ग के हैं। गोरे लोगों में अधिकांश के लिये गर्मी अज्ञानियों, लापरवाहों, अपराधियों और समाज से बहिष्कृत लोगों की ही बीमारी है। वास्तव में यह एक सामाजिक बीमारी है।"

इसके बाद, डा० स्मिली ने नीग्रो हब्शी लोगों के बीच गर्मी के रोग का जिक्र किया : "चूँकि गोरों के मुक़ाबिले नीग्रो लोगों में गर्मी दस गुनी से भी ज़्यादा है, इसलिये शासकों को अपनी योजनाओं में उन लोगों के बीच गर्मी को रोकने का कम से कम दस गुना अधिक प्रबन्ध

करना चाहिये। इन प्रयत्नों के परिणामस्वरूप गोरे लोगों में भी गर्मी के रोग की कमी हो जायेगी।"

इस तर्क दलील को नीग्रो लोगों पर एक आक्रमण भी माना जा सकता था। क्योंकि इसमें आम नीग्रो लोगों के साथ अज्ञानी, लापरवाह, अपराधी और समाज से वहिष्कृत गोरों का जिक्र किया गया है, जैसे दोनों समान हों—खैर, हम डा० स्मिली के इरादे कुछ और ही माने लेते हैं। यही सही कि वह आंकड़ों के आधार पर पेश किये गये एक अकाट्य तथ्य की ओर डाक्टरों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। वह आगे कहते हैं :-

"सरकारी स्वास्थ विभाग के अधिकारियों के बीच यह प्रवृत्ति रही है कि नीग्रो लोगों में गर्मी की अधिकता को या तो नजरन्दाज करें या उसकी ओर ध्यान ही न दें जितनी ही जल्दी इस सत्य को मानकर हालत काबू में लाने के लिये उचित क़दम उठाये जायेंगे उतनी ही जल्दी नीग्रो जाति तथा समूचे राष्ट्र के स्वास्थ के लिये भला होगा।"

इन डाक्टर महोदय का उद्देश्य तो निसंदेह प्रशंसनीय है, पर वे और ऊपरी तौर से सही लगने वाले उनके तर्क का समर्थन करने वाले दूसरे लोग उन सरकारी अधिकारियों से कहीं बड़े अपराध के भागी हैं जिनकी आलोचना की गई है। यह दलील तथ्यों को इस तरह नजरन्दाज करती है कि वैज्ञानिक के लिये अक्षम्य है। यह यथार्थ को नजरन्दाज करती है।

गोरों के मुकाबिले नीग्रो लोगों में रोग की बढ़ती इतनी ज़्यादा है, क्यों? क्या इसका कारण, जैसा डा० स्मिली ने बताया है, जाति भेद है? गोरों में भी 'समाज से वहिष्कृत गोरों' पर ही गुप्त रोगों का हमला अधिक क्यों होता है?

किसी भी अनुभवी समाज-सेवी के लिए इसका उत्तर सहज ही है। नीग्रो लोगों के बीच गर्मी को जो नज़रन्दाज़ किया गया है, उसकी एक खास वजह है। वह है वैसा न करने पर नीग्रो लोगों को अमरीका में कैसा जीवन बिताना पड़ता है उसकी असलियत खुल जायगी। अमरीका के बहुसंख्यक नीग्रो आर्थिक और राजनीतिक उत्पीड़न की चक्की में पिस रहे हैं। यह उत्पीड़न ज़ारशाही उत्पीड़न से किसी भी बात में कम नहीं है। नीग्रो लोगों और समाज से बहिष्कृत गोरों में गर्मी के रोग की अधिकता दोनों की वजह एक ही है। इस वजह का जाति-भेद से कोई सम्बन्ध नहीं। वजह है ग़रीबी।

डा० स्मिली इस नग्न-सत्य पर नम्र आँकड़ों और "तथ्यों" का पर्दा डाल रहे हैं, ठीक उन लोगों की तरह जो जानबूझ कर या अनजाने ही अनैतिकता की बुनियादी सचाइयों को छिपाना चाहते हैं। डा० स्मिली कहते हैं, "गर्मी वास्तव में एक सामाजिक बीमारी है।" इसका मतलब क्या है? जो भी मतलब आप चाहें लगा लें! आर्थिक मंदी के दिनों में भी ऐसे ही वाक्यों का प्रयोग किया गया था। इन वाक्यों का प्रयोग करने वाले, ये तथाकथित वैज्ञानिक थे जो बेकार लोगों के मामले की जाँच-पड़ताल में तटस्थता का दावा करते थे। और सरकार से बेकारी के दिनों में सहायता के रूप में कुछ पेन्शन पाने वाले बड़े नक्कू साह बनकर, "समाजशास्त्र" के इन अध्येताओं ने दावा किया था कि "बेकारी वास्तव में एक सामाजिक घटना है।" उन्होंने हास्यास्पद सिद्धान्त गढ़े कि कितनी तरह के लोग "बेकार" हो सकते हैं। और इस तरह उन्होंने प्रतिक्रियावादियों की कुचालों का ही साथ दिया, जो अपने तथाकथित "विज्ञान" के बल पर हूवरवाद की तरह कहने लगे: "जिसमें शक्ति होगी वह बेकार रह ही नहीं सकता। कामचोर लोग ही सरकार से बेकारी-भत्ता चाहते हैं।"

निःसन्देह गर्मी एक सामाजिक बीमारी है। इसी तरह वेश्यावृत्ति भी सामाजिक बुराई है। इसका अर्थ यह है कि अनैतिकता और उससे सम्बन्धित तमाम समस्याओं की जड़ समाज की बुनियादी खराबियों में ही है।

अमरीका के नीग्रो लोगों के साथ साथ अपराधी और समाज से बहिष्कृत गोरों को जोड़कर डा० स्मिली ने वैज्ञानिक तथ्यों की सीमा को भंग किया है। और इस तरह जाने या बिना जाने, उन्होंने जातियों के बीच नफ़रत फैलाने वालों के हाथ में एक शक्तिशाली हथियार सौंप दिया है। गर्मी की समस्या का ऐसा "विश्लेषण" और भी कुत्सित हो जाता है। क्योंकि इस बीमारी का सम्बन्ध इन्द्रियों से है और यही सफेद झूठ कि नीग्रो जाति गोरी जाति से कम नैतिक होती है, नीग्रो-विरोधी प्रचार की आधार शिला है। इसको लेकर दक्षिणी अमरीका के फासिस्ट गोरे नीग्रो लोगों पर वहशियाने हमलों का संगठन करते हैं। क्या नीग्रो लोगों और क्या गोरों, दक्षिण अमरीका में नैतिकता की नीग्रो जाति में नहीं बल्कि उन पर थोपे जाने वाले अमानुषिक दमन से ही पैदा होती है। यह दमन कालों और गोरों दोनों को ही पस्तहिम्मती के गड्ढे में ढकेल देता है। पर डा० स्मिली तो हमसे यह मनवाने पर तुले हुये हैं कि नीग्रो लोगों को गर्मी से बरी कर देने पर गोरे भी उससे मुक्त हो जायेंगे। मतलब यह कि गोरों में गर्मी का रोग फैलाने की जिम्मेदारी नीग्रो लोगों पर ही है। ये विचार, किसी दूसरे से नहीं, गोबिल्स और उसके छुट भैयों से ही उधार लिये हैं।

तो, इस "सामाजिक बीमारी" का दूसरे देशों में रूप क्या है।

कनाडा में, जहाँ नीग्रो आबादी बहुत कम है और जहाँ अमरीका के मुक़ाबिले गोरों और कालों के बीच आर्थिक भेद-भाव बहुत कम है,

उनमें गर्मी के रोग की बढ़ती का अन्दाज़ कभी अलग-अलग आंकड़ों के आधार पर नहीं लगाया गया है। मैंने कनाडा के डाक्टरों और सामाजिक कार्यकर्ताओं से इस सम्बन्ध में पूछताछ की है। कनाडा का औसत नीग्रो ग़रीब ज़रूर है, पर दरिद्रता से वह इतना ज़्यादा पीड़ित नहीं है, जितने कि अमेरीका के लाखों नीग्रो परिवार। रही गुप्त रोगों की बात, सो कनाडा के गोरों और नीग्रों लोगों में कोई खास अन्तर नहीं दिखाई पड़ता।

परन्तु रेड इन्डियनों में ज़रूर उन ज़िलों में गर्मी का रोग बहुत ज़्यादा है जहाँ शोषण ज़्यादा है। तपेदिक के बारे में कनाडा के आँकड़े और भी दिलचस्प है। इस बीमारी को लेकर कनाडा के अधिकारियों ने बहुत पहले ही गोरों और रेड इण्डियनों के बीच भेद बना रखा है। गोरों के मुकाबिले, इन्डियनों में तपेदिक के मरीजों की संख्या बहुत ज़्यादा है। कनाडा के अधिकारी सच्चाई को नज़रन्दाज़ करने के अपराधी नहीं हैं। उनका इस सिद्धान्त में तनिक भी विश्वास नहीं है कि तपेदिक का मर्ज़ गोरों के बजाय इण्डियनों को ज़्यादा सताता है, "क्योंकि वे इण्डियन हैं।" वे मानते हैं कि तपेदिक एक "सामाजिक बीमारी" है। पर वे इसके "सामाजिक" होने के कारण इस मर्ज़ से पीड़ितों को असहनीय दरिद्रता और इस दरिद्रता के सहायक गन्दे भोजन, गन्दे मकान, शिक्षा और चिकित्सा की कमी आदि को ही बताते हैं। कनाडा के विभिन्न क्षेत्रों में रेड इन्डियनों में भी तपेदिक के मरीजों की संख्या विभिन्न है। डा० ई० यल० रौस तथा ए० एल० पेन की हाल की जाँच पड़ताल से पता चला है कि रेड इण्डियनों के ही रहने के के खास संरक्षित क्षेत्रों के आस-पास तो तपेदिक से मरने वाले इन्डियनों की संख्या गोरों के मुकाबिले बीस गुनी ज्यादा है। वैसे औसत संख्या दस गुनी से ज़्यादा है।

इन डाक्टरों ने अपना मत निम्नलिखित शब्दों में प्रकट किया है।

"आमतौर से कहा जाता है कि रेड इण्डियनों के शरीर में तपेदिक के मर्ज़ को दूर रखने की क्षमता बहुत कम होती है। पर, यह जानना काफ़ी दिलचस्प है कि उनमें से तमाम ही रोगी स्वस्थ हो जाते हैं। यदि इन्डियनों को गोरों के बराबर सुविधायें मिलें तो उनका भी तपेदिक से बचाव हो सकता है। उन पर दवाइयाँ उतनी ही कारगर साबित होती हैं जितनी कि गोरों पर। कनाडा के रेड इन्डियनों पर सरकार द्वारा लादी गई ग़रीबी, गंदगी और अज्ञान का जो वर्णन इन डाक्टरों ने किया है। उसे पढ़कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

अमरीका में नीग्रो लोगों के बीच गर्मी के मरीज़ों की संख्या गोरों से दस गुनी ज्यादा है। कनाडा में इन्डियनों के बीच टी० बी० के मरीज़ों की संख्या गोरों के मुकाबिले दस से बीस गुनी तक अधिक है। दोनों ही रोग वास्तव में सामाजिक रोग हैं। इसका अर्थ सचमुच स्पष्ट है।

अर्थ यह है कि अमरीका के नीग्रो और कनाडा के रेड इण्डियन अपने अपने देशों में समाज के एक ही स्तर पर हैं। वे अपने अपने यहाँ के "सबसे निचले वर्गों" के लोग हैं। दोनों ही आर्थिक खाई की तलहटी में पड़े रहने को मजबूर हैं। बड़ी से बड़ी सूझ-बूझ वाले योजना कारों के द्वारा बनाये गये तपेदिक और गुप्त रोगों के शफ़ाखाने भी इस सामाजिक सत्य को अनदेखा नहीं कर सकते।

लगभग एक पीढ़ी पहले, वेश्यावृत्ति सम्बन्धी कॉंग्रेस के अवसर पर, रूस के मजदूर कार्य-कर्ताओं ने उस समय उनके देश में पाये जाने वाले इसी सत्य को पेश करने की कोशिश की थी। पर, ज़ार के साम्राज्य में नीग्रो जैसे दूसरी जाति के लोग नहीं बसते थे—जिनकी बलि का बकरा बनाया जाता और सत्य पर पर्दा डाला जाता। कॉंग्रेस के संचालकों ने

सामाजिक रोगों के आर्थिक पहलू पर विचार करने से ही इन्कार कर दिया था। दोनों हाथ उठा कर, वे चीख़ पड़े थे: "निचले वर्ग" की औरतें और मनुष्य का सनातन पाप-प्रवृत्ति ही इसका कारण है।

गोर्की के शब्दों में कहा जाय तो ज़ारशाही और उसके समर्थक मरी मछलियों की तरह दिमाग़ की ओर से नीचे को सड़ रहे थे।

वंधनरहित प्रेम और वैज्ञानिक नैतिकता

१९१७ की नवम्बर क्रांति ने ज़ार कालीन जीवन की असलियत को उखाड़ कर रख दिया। लड़खड़ाती हुई अर्धसामन्ती व्यवस्था को उसने चूर चूर कर दिया। सदियों से प्रतिष्ठित, मगर खोखले, रीति रिवाजों को उसने उखाड़ फेंका। कुछ दिनों के लिये तो उसने रूस की दीर्घकालीन आर्थिक, राजनैतिक एवं सामाजिक विषमता को और भी ज़्यादा बढ़ा दिया। सोवियत सरकार अनैतिकता पर कारगर हमला बोलने में कुछ दिन तक तो एकदम असमर्थ रही।

पर क्रांति के आरम्भकाल से ही कम्युनिस्ट नेता मानते चले आये थे कि कोई भी समाज-व्यवस्था, जो सबको सच्ची आज़ादी देने की बात करे, ऐसी नैतिकता को बरदाश्त नहीं कर सकती जिसकी आधार शिला असंख्य औरतों की गुलामी हो। जहाँ जहाँ सोवियत सत्ता क़ायम हुई शासन-प्रबन्ध की बागडोर पुलिस के हाथों से जनता के हाथ में आती गई। जो पहला क़ानून पास किया गया वह यह था कि पीले-टिकट की व्यवस्था का अन्त किया जाय। १९१७ के बाद रूस की

व्यभिचारिणी स्त्रियों ने अधिकारियों को नज़राने देना बंद कर दिया। यह परिवर्तन अवश्यम्भावी था। क्रान्ति को सफल बनाने का श्रेय संगठित मज़दूर-वर्ग को था। इस क्रांति का लक्ष्य भी मज़दूर-वर्ग का हित ही था। ग़रीब किसान भी इस क्रांति के समर्थक थे। और चूँकि रूस की बहुसंख्यक वेश्यायें गाँवों और क़स्बों की निर्धन औरतें थीं, इसलिए नई सरकार कैसे असहायों के अमानुषिक शोषण के जारी रहने को सहन कर सकती थी, और उसे बंद करने का प्रण किया।

इस प्रकार, पीले कार्ड की व्यवस्था का अन्त हुआ। सभी महिलाओं को नागरिकता का हक मिला। पर यह सब केवल भावना मूलक था।

क्रांतिकारियों के बीच कुछ ऐसे राजनीतिक आदर्शवादी भी मौजूद थे जो कहते थे कि अनैतिक स्त्रियों को, उनके नेक पड़ोसियों के समान ही वोट डालने के अधिकार दे देने के अर्थ होंगे उन्हें मनुष्योचित आत्म सम्मान प्राप्त हो जाना। लेकिन उनके ये भ्रम टूटने में अधिक दिन न लगे। पुरानी राज्य व्यवस्था के पतन के बाद रूसी जीवन में जो अस्तव्यस्तता एक लम्बे काल तक रही उसके भयंकर परिणाम सामने आये—व्यभिचार व दुराचार अनेक रूपों में प्रगट हुये—अल्प-वयस्क वेश्यावृत्ति भी बढ़ी—दरअसल, नवम्बर की घटनाओं के बाद तो ये चीज़ें अपनी चरम सीमा तक पहुँच गईं।

यह पता लगते देर न लगी कि क्रांति ने जिस स्वाधीनता को जन्म दिया है उसके भिन्न भिन्न और अजीबोगरीब अर्थ लगाये जा रहे हैं। कम्युनिस्ट नारा कहता था "तुम्हें अपनी बेड़ियों के अलावा इस क्रांति से और कुछ नहीं खोना है"। कार्लमार्क्स का यह प्रसिद्ध नारा वास्तव में आर्थिक शोषण की बेड़ियों के बारे में था। अनेक रूसियों ने, विशेष रूप से नवयुवकों और बुद्धि जीवियों ने, इस नारे का अर्थ यह लगाया,

"तुम्हें प्रतिबन्धों के अलावा इस क्रांति से और कुछ नहीं खोना है।" इन लोगों ने सोचा कि ज़ारशाही के ध्वंस के साथ साथ पूँजीवादी सदाचार सम्बन्धी नियमों को उखाड़ फेंकना भी अच्छा होगा।

जिस प्रकार वे सोचते थे कि चुटकी बजाते ही लेनिन ऐसा सोशलिस्ट समाज कायम कर देंगे जिसमें हाथ भर बढ़ाना पड़ेगा कि हर चीज़ स्वयं मुट्ठी में आ जायगी। उसी प्रकार उन्होंने रूसी महिलाओं और बालिकाओं को यह समझाना शुरू किया कि प्रेम की समस्या उतनी ही आसान है जितना खाना और पीना।

"बंधनरहित प्रेम!" का यह सिद्धान्त निस्सन्देह बहुत पुराना है। आज भी हमारे बहुत से नवयुवक इस सिद्धान्त के हामी हैं। लफ़्फ़ाज़ी से रंगा-चुना यह सिद्धांत कुछ रूसियों को भी बहुत भाया। उन्होंने तो यहाँ तक कह डाला कि व्यभिचार को समाप्त करने का एक मात्र उपाय है योनि-सम्बन्धी तमाम प्रतिबन्धों को ख़त्म कर देना।

अनैतिकता के सम्बन्ध में यह दृष्टिकोण निहायत बेतुके ढंग से पेश किया जाने लगा। जो देखने में बहुत सीधासादा मालूम पड़ता था "जब भूख लगे तब खाना खा लो, जब प्यास लगे तब पानी पी लो। इसी तरह जब काम सम्बन्धी इच्छा जगे, तब जो मिले उससे प्रेम कर लो। अनैतिकता को फिर स्थान कहाँ।"

परन्तु यह कहते हुए इन लोगों ने यह सोचने की ज़रूरत न समझी कि इससे तो नैतिकता के ही ख़त्म हो जाने की सम्भावना है।

अधिकांश रूसी बुद्धिजीवी नैतिकता सम्बन्धी हर बात को पूँजीवादी गुलामी कहना पसन्द करते थे। वे सोचते थे कि ज़ार-कालीन जीवन का यह एक ऐसा पक्ष है जिसे नई समाज व्यवस्था से सहज ही मिटाया जा

सकता है। इन लोगों को न तो जारशाही समाज-व्यवस्था से कोई दिलचस्पी थी और न सोवियत समाज-व्यवस्था से। वे तो केवल मजदूर वर्ग और किसान औरतों का "उद्धार" करना चाहते थे।

यह तो थी उनकी कथनी। पर उनकी करनी दूसरी ही थी। उनकी इच्छा थी कि प्रेम-सम्बन्धों से हर किस्म का बन्धन हटा लिया जाय। स्वप्नलोक में विचरने वाले कवियों से इस बात को छीन लीजिए और परखिये इसे नैतिकता सम्बन्धी कसौटी पर। देखिये, आपको क्या दिखाई पड़ता है। आपको दिखाई पड़ेगा : सब स्त्रियों के लिये प्रतिबन्धहीन वेश्यावृत्ति।

सोवियत नेताओं के सिद्धांतों और कार्यक्रम में इस 'बन्धनहीन प्रेम' के लिये कोई स्थान नहीं था। उल्टे, सोवियत नेता जानते थे कि व्यक्तिगत स्वाधीनता की आड़ में नैतिकता सम्बन्धी सिद्धान्तों का नाश समाजवादी प्रगति के आड़े आयेगा। वे यह भी देखते थे कि सोवियत सत्ता को उखाड़ फेंकने की तैयारियाँ करने वाली वैदेशिक शक्तियाँ प्रेम की इस स्वाधीनता का ढोल पीट रही हैं और प्रचार कर रही हैं कि रूस में तो "औरतों का समाजीकरण" हो गया है। उस समय का सोवियत विरोधी प्रचार यह तान अलाप रहा था : बोलशेविक नेताओं की नीति तो यह है कि कोई भी मर्द किसी भी औरत को इस्तेमाल कर सकता है; कि "एक की बीबी बहुतों की बीबी', है; कि रूस से विवाह प्रथा को उठा ही दिया गया है; कि बच्चों को सरकारी अस्पतालों में बिना उनके मां बाप का पता बताये पाला जाता है, इत्यादि इत्यादि।

मैक्सिम गोर्की, जो अपने जीवनकाल में जारशाही ढोंग ढकोसले के पक्के विरोधी और शोषित जनता के सदा समर्थक रहे थे, कुछ दिनों तक सोवियत व्यवस्था के भी विरोधी रहे। नई शासन व्यवस्था का विरोध करने का मुख्य कारण उनका यह भय था कि लाखों-करोड़ों किसानों

मजदूरों को मुक्त करने में कहीं व्यक्ति के निजी अधिकारों को धक्का न लगे। इतिहास में, "व्यक्ति की स्वतंत्रता" के लिए लड़ने वालों में गोर्की का स्थान प्रमुख है। पर हमारे आज के कुछ वाक् प्रवीण नेताओं की तरह उन्होंने इक्के दुक्के लोगों—समाज के सफेदपोशों की हिफ़ाजत के लिये शोरगुल नहीं मचाया। स्वाधीनता से उनका अर्थ था सभी के लिए लाखों करोड़ों के लिए—आम जनता के लिए—स्वाधीनता।

हालांकि उन्होंने दोष उन्हीं लोगों को दिया जो दोषी थे—सोवियत नेताओं को नहीं। फिर भी नैतिकता सम्बन्धी नई धारा की कड़े शब्दों में उन्होंने आलोचना की। १६२० में कही हुई उनकी यह बात आज भी सच उतरती है।

"प्रेम के बारे में मैं लम्बी चौड़ी बातें नहीं बघारूँगा" अपने एक प्रसिद्ध लेख में उन्होंने लिखा था। "हाँ एक बात मैं जरूर कहना चाहूंगा। वह यह कि योनि-सम्बन्धी मामलों में नई पीढ़ी के लोग, मेरे विचार से, अति सरलता के दोषी हैं। कुछ दिनों के बाद उन्हें अपने अपराध का भुगतान करना ही पड़ेगा।"

बन्धनरहित प्रेम के प्रचारकों पर सरकारी तौर पर हमला बोला लेनिन ने। महिला क्रान्तिकारिणी क्लारा जैठकिन से लेनिन की बातचीत हो रही थी। क्लारा जैठकिन ने लेनिन का ध्यान इस "क्रान्तिकारी" विचारधारा की ओर दिलाया कि प्यास की तरह ही कामेच्छा भी शरीर की एक स्वाभाविक इच्छा होती है। प्यास की तरह उसे में उसी वक़्त बुझा लेना चाहिये जब वह पैदा हो। सोवियत सत्ता के प्रवर्तक लेनिन ने इसका उत्तर क्या दिया?

उन्होंने कहा—"प्यास बुझा लेनी चाहिये।"

और फिर ढोंगभरी नैतिकता की खिल्ली उड़ाते हुए उन्होंने इस तथाकथित क्रांतिकारी विचारधारा पर करारा हमला किया और कहा—"परन्तु क्या साधारण परिस्थिति में एक स्वस्थ मनुष्य गन्दी नाली के पनाले का पानी पी लेगा ? क्या वह उस गिलास से पानी पी लेगा जिसके किनारों पर तमाम होंठों की झूठन लगी हुई हो ? इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण एक और पहलू, सामाजिक पहलू, भी है। पानी पीना एक व्यक्तिगत चीज है। प्यार में दो जीवों का सम्बन्ध निहित है, और एक तीसरे, नए जीव की उत्पत्ति होती है। यही वह चीज है जो प्यार को सामाजिक महत्व देती है, जो समाज की ओर व्यक्ति के कर्तव्य को निर्धारित करती है। एक कम्युनिस्ट होने के नाते मुझे पानी के गिलास वाले सिद्धान्त से कतई हमदर्दी नहीं है। हालांकि इसे "प्रेम की प्यास बुझाना" कहा जाता है। जो भी हो, प्रेम की यह स्वच्छन्दता न तो नई चीज है, न कम्युनिस्ट ही इसके हामी हैं। तुम्हें याद होगा कि पिछली शताब्दी के मध्यकाल में इसी सिद्धांत का "हृदय की मुक्ति" के नाम से, रोमांटिक साहित्य में प्रचार किया जाता था। पर अमली तौर से यह सिद्धान्त शरीर की इच्छा पूर्ति का सिद्धान्त बन गया। जहाँ तक प्रचार की बात है, वह आज से कहीं ज्यादा मंजा हुआ था; अमल की बाबत मैं नहीं कह सकता"।

जब लेनिन से पूछा गया कि योनि सम्बन्धी स्वच्छन्दता का वे किस हद तक विरोध करेंगे तो उन्होंने कहा "मेरी आलोचना का आशय सन्यासवाद का प्रचार करना नहीं है, कतई नहीं। कम्युनिज़्म सन्यासवाद की स्थापना नहीं करेगा। वह स्थापना करेगा सुखी जीवन की, शक्तिशाली जीवन की। सन्तोषपूर्ण प्रेम-जीवन इस उद्देश्य में सहायक होगा। मेरे विचार से योनि सम्बन्धी मामलों पर आजकल जैसा जोर दिया जा रहा है वह जीवन को सुख और शक्ति देने वाला नहीं है। बल्कि सुख और शक्ति छीन लेने वाला है। महान परिवर्तन के इस युग में यह बात बुरी

है, बहुत ही बुरी है। युवा पुरुषों और स्त्रियों को खास तौर से जीवन के सुख और शक्ति की बहुत ही जरूरत है। स्वास्थ्यप्रद खेल कूद बहुमुखी बौद्धिक क्रियायें, शिक्षा, अध्ययन, खोजबीन...... नई उमर के लोगों के लिये ये चीजें योनि-समस्याओं पर अनन्तकालीन सिद्धान्तों और विवादों से ज्यादा फायदे की, तथाकथित "जीवन की पूर्ण अभिव्यक्ति" से कहीं ज्यादा फायदे की होंगी। स्वस्थ शरीर तो स्वस्थ मस्तिष्क।"

लेनिन की बातचीत से यह उद्धरण योनि सम्बन्धी समस्याओं पर सोवियत नेतृत्व के रवैये को स्पष्ट कर देता है। लेनिन के इन शब्दों को लेकर बाद में जो लम्बे वादविवाद हुए उनके उद्धरण देने की यहाँ जरूरत नहीं है। वास्तव में सोवियत कार्यक्रम रूस के आर्थिक और राजनीतिक जीवन के पुनर्संगठन तक ही सीमित नहीं था। वह इससे कहीं ज्यादा व्यापक और विस्तृत था।

सोवियत सरकार का साहसपूर्ण लक्ष्य न सिर्फ मनुष्य के दिन प्रतिदिन के जीवन को बदलना था, बल्कि मनुष्य के स्वभाव को भी बदलना था। यह लक्ष्य बड़े अनूठे ढंग से मास्को स्पोर्ट्स क्लब के इस नारे में प्रकट होता है।

हम मानव समाज का पुनर्संगठन न सिर्फ आर्थिक आधार पर कर रहे बल्कि मनुष्य जाति को ही वैज्ञानिक सिद्धान्तों के सहारे सत्पथ पर ला रहे हैं।

हम इस नारे के पहले हिस्से को छोड़ भी दें—तो भी अपनी समाज व्यवस्था में आर्थिक परिवर्तन की जरूरत को हम लोग स्वीकार कर चुके हैं। किन्तु "मानव जाति को वैज्ञानिक नियमों के सहारे सुधारना" तो एकदम नई प्रस्तावना है। इन आठ शब्दों में वे तमाम दार्शनिक और नैतिक विचार निहित हैं जिन पर सदियों से वाद-विवाद होता चला आया है। स्पोर्ट क्लबों के नारों में यह एकदम अनूठी चीज है।

सबसे पहले तो यह कि उपरोक्त नारा मानव जाति में सुधार की आवश्यकता को मानता है।

दूसरे वह इस बात को मानता है कि मानव जाति को सुधारा जा सकता है।

और अन्त में वह यह अनूठा विचार पेश करता है कि मानव स्वभाव को वैज्ञानिक नियमों के सहारे सुधारा जा सकता है। अर्थात ऐसे तरीकों से सुधारा जा सकता है जो ठीक तरह से आयोजित किये गए हों और जिनके असफल होने की आशंका नहीं हो। और यह सचाई है कि इतिहास में जब कभी भी ऐसे नैतिकता सम्बन्धी बड़े से बड़े सुधारों को प्रयोग में लाया गया है, उनके मूल में यही तीन बातें काम करती थीं जिनका जिक्र हम ऊपर कर चुके हैं।

हमें यहाँ दार्शनिकता से मतलब नहीं। हमें तो सचाई से प्रयोजन है। और यह एक सच्ची बात है कि इतिहास का नैतिकता सम्बन्धी सब से बड़ा प्रयोग उपरोक्त तीन बातों पर अडिग विश्वास की शिला पर आधारित था।

हमारी निजी धारणाएँ कुछ भी क्यों न हों, हमें कुछ देर के लिए तो सच्ची बातों को मानना ही पड़ेगा। और किसी कारण से

न सही, सोवियत रूस में इन्द्रिय रोगों, व्यभिचार और शराबखोरी का अन्त क्यों कर हुआ यह जानने की उत्सुकता के आधार पर ही हमें ईमानदारी की बात मान लेनी चाहिये।

हम इस विचार को किस प्रकार हृदय में बैठा लें कि वैज्ञानिक सिद्धांतों के सहारे मानव जाति को सुधारा जा सकता है?

हम देख चुके हैं कि हमारे देश में अनैतिकता के खिलाफ डाक्टरी आन्दोलन बड़े जोर-शोर से चलाये गये। लेकिन कोई महत्वपूर्ण परिणाम नहीं निकला। केवल इन्द्रिय-रोग को जीतने के प्रयत्नों तक सीमित रहने पर भी उनसे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। इस असफलता के साथ-साथ एक बात और भी है। हमारे जनवादी देशों के किसी भी जिम्मेदार वैज्ञानिक ने यह कहने का दुःसाहस नहीं किया कि अनैतिकता की इस समस्या के हल के लिए कोई वैज्ञानिक खोज की है। फिर, वैज्ञानिक उपायों में सोवियत नेताओं का आशावाद कहां से उमड़ पड़ा?

सोवियत वैज्ञानिकों ने पहले तो अनैतिकता को एक समझ में आने वाली बात बना दिया। दूसरे, उन्होंने पाप पर से रहस्य का पर्दा हटा दिया।

पूँजीवाद ने प्रेम को सम्मानपूर्ण स्थान दिया।

कामेच्छा मनुष्य के लिये एक स्वाभाविक चीज है। एक अर्थ में इसकी तुलना भूख और प्यास से की जा सकती है; इसे तृप्त करने की जरूरत महसूस होती है। सोवियत रूस के जीव-विज्ञानियों, मस्तिष्क विज्ञानियों, और शरीर-विज्ञानियों ने "पानी के गिलास" वाले सिद्धान्त-अर्थात शुष्क भौतिकवादी सिद्धान्त-को अच्छी तरह परखा। वे इस नतीजे पर पहुँचे कि 'प्यास' कामेच्छा से मूलतः भिन्न है। जन्म के समय कामेच्छा नहीं होती। कौमार्य-अवस्था प्राप्त होने पर ही वह पूरी तरह विकसित होती है। कामेच्छा जागृत होने के साथ साथ किसी भी लड़के या लड़की के शरीर और मस्तिष्क में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन होते जाते हैं। मनुष्यों में इस इच्छा की आनन्दमयी तृप्ति मस्तिष्क, विचारों, धारणाओं और स्वप्नों के प्रभाव से और अधिक बढ़ती जाती है। भूख और प्यास को लगातार बुझाते रहना शरीर धारण करने के लिये नितान्त जरूरी होता है। किन्तु कामेच्छा की तृप्ति इतनी जरूरी नहीं। इसकी तरफ मनुष्य के लिये इन्द्रिय संभोग का भौतिक उद्देश्य उसे स्वयं जीवित रहने की इच्छा से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। योनि-सम्बन्धों के परिणामस्वरूप लोग माता पिता बनते हैं। वे नये जीव को जन्म देते हैं। वे मानव जाति का सृजन हैं। इसी प्रकार यह भी सर्वविदित है कि सम्भोग से परम आनन्द प्राप्त होता है। यह आनन्द इतना जटिल और मस्तिष्क द्वारा रंग-बिरंगा बना दिया जाता है कि सम्भवतः इसकी तुलना "पानी पी लेने" या "खाना खा लेने" से नहीं की जा सकती।

इसी बात को लेकर सोवियत—वैज्ञानिकों ने पुराने नीति—वेत्ताओं से आगे कदम बढ़ाया। उन्होंने इस बात को मानने से इन्कार कर दिया कि मानव-विकास के इतिहास में योनि-सम्बन्ध अपरिवर्तित रहे हैं। उन्होंने यह भी मानने से साफ़ इंकार कर दिया कि योनि-समस्या को कभी न हल होने वाली समस्या मान लिया जाय। पुराने विचारों को चुनौती देने वाला उन्होंने एक नया विचार पेश किया: आज के समाज में मनुष्यों के योनि सम्बन्ध पुरातन के योनि-सम्बन्ध से उतने ही भिन्न हैं जितने कि हमारे सहृदयता पूर्ण व्यवहार पशुओं के व्यवहार से भिन्न हैं।

उन्होंने, "प्रेम" शब्द की एक नई व्याख्या पेश की। उन्होंने प्रेम को भोग-लालसा के संतोष का साधन कहकर ही इति नहीं कर दी। प्रेम को भोग लालसा की तृप्ति का सिर्फ़ साधन मानने की बजाय उन्होंने ऊँचे उठकर-ऐतिहासिक तथ्यों के सहारे यह घोषणा की कि जिस प्रेम की आज हम बात करते हैं वह मानव समाज के महान प्रगतिशील व क्रांतिकारी विकास का द्योतक है। उन्होंने कहा कि प्रेम के सम्बन्ध में सही समझदारी और उसका अनवरत विकास ही वह आधार शिला है जिस पर एक सच्चे नैतिक समाज का निर्माण हो सकता है।

यह बात कुछ असंगतिपूर्ण लगती है कि वैज्ञानिक-गण प्रेम के सम्बन्ध में अपना सिद्धान्त गढ़ें। बात कम मनोरंजक भी नहीं। हमारे लिये सम्भवतः कल्पना करना भी कठिन होगा कि ऐन्थ्रोपोलौजी जैसे जटिल विषय के नीरस प्रोफ़ेसर महोदय इस सम्बन्ध में क्या मत पेश करेंगे। लीजिये, हम सोवियत वैज्ञानिकों की विस्तृत खोजबीनों के

बुनियादी सारांशों तक ही अपने को सीमित कर लें......।

आरम्भ में, आदिकाल के मनुष्यों के जीवन में कामेच्छा का स्थान पशुओं के मुकाबले कुछ ही ऊँचा था। इन्द्रिय भोग की लालसा पुरुष का मुख्य गुण था। स्त्री केवल इस इच्छा को तृप्त करने और बच्चे पैदा करने का साधन थी। उस काल के मनुष्यों को जीव-विज्ञान सम्बन्धी बातों का ज्ञान शून्य के बराबर था। तब तक यह मालूम नहीं था कि स्त्री कैसे गर्भधारण करती है। इसलिए इस बात को मानने की गुन्जाइश ही नहीं थी कि सन्तानोत्पत्ति में स्त्री-पुरुष का समान उत्तरदायित्व होता है। इसीलिये उस काल के समाज का एक विशेष लक्षण था : सामूहिक विवाह। इस प्रथा का अर्थ स्वयं ही स्पष्ट है। एक समूह की स्त्रियाँ समय समय पर उस समूह के सब या अधिकांश पुरुषों से सम्भोग करती थीं। प्रागैतिहासिक काल का आदि मनुष्य उन रोमानी अनुभूतियों से जरा भी नहीं छू गया था।—जिनकी कल्पना करके बाद में रोमानी कथायें रची गईं। उसकी स्त्री उसके लिये बच्चे पैदा करने वाली थी। वह सिर्फ उसका हुक्म बजा लाने वाली थी।

धीरे धीरे व्यवस्थाहीन समाज से बर्बर समाज का विकास हुआ। इस समाज के अभ्युदय के साथ ही जोड़ों के विवाह अर्थात् एक पुरुष और एक स्त्री के यौनि-सम्बन्ध पर आधारित विवाह शुरू हुये। इस प्रथा की आधारशिला जीव-विज्ञान की प्रारम्भिक जानकारी थी। यह जानकारी कि एक पुरुष और एक स्त्री के सम्भोग से शिशु का जन्म होता है। अस्तु यह शिशु न केवल स्त्री से बल्कि पुरुष से भी जन्मा था। किन्तु बहुतों की सम्पत्ति के बजाय केवल एक पुरुष की सम्पत्ति बन जाने पर भी स्त्री की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। स्त्री पूर्ण रूप से पुरुष की दासी बनी रही; और बहुत सी असभ्य जातियों में उसे कठिन से कठिन काम करना पड़ता था।

बर्बर समाज के गर्भ से प्रारम्भिक सभ्यताओं का जन्म हुआ। इस बात को न तो सोवियत विद्यार्थी, न ही दूसरे देशों के अधिकारी मानते हैं कि योनि-सम्बन्धों में परिवर्तनों के प्रभाववश ही मानव जाति बर्बरता से ऊपर उठ पाई। कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण कारण इस परिवर्तन में निहित थे। उन पर विचार करने के लिये यहाँ स्थान नहीं है। हाँ यह तो स्पष्ट है कि विकासमान सभ्यता के असली प्रभाव अत्यन्त सरल थे। बर्बर जातियों की अपेक्षा सभ्य मानव-जाति अनाज, मकान, वस्त्रों तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं का अधिक मात्रा में उत्पादन कर सकी। यद्यपि यह बात सही है कि बहुसंख्यक लोग अब भी गरीब और मेहनत-मजदूरी करने वाले थे। फिर भी, इन प्रारम्भिक सभ्यताओं से कुछ लोगों को तो जरूर ही आराम से जीवन बिताने का मौका मिला। तरह-तरह की बातें सोची जा सकीं और जीवन के रहस्य के बारे में पता लगाने का इन लोगों को मौका मिला।

स्वाभाविक ही था कि पहले-पहल जिन रहस्यों ने मनुष्य के मस्तिष्क को उलझा दिया था उनमें से एक काम-रहस्य भी था। वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है कि पुरातन मानव ने कामवासना और धर्म को परस्पर सम्बन्धित कर रक्खा था। कुछ देवताओं और देवियों—वीनस, सीरीज एस्टार्य, आइसिस व माइलिन्ता आदि सभी को कामसूत्र में बंधे पाते हैं।

आदिकाल से ही हमारी धार्मिक मान्यतायें इस बात को कहती रही हैं कि जमीन के उपजाऊपन से, सूर्य की किरणों तथा अन्य साधारण प्राकृतिक बातों से और काम सम्बन्धी जटिल किन्तु सुखद अनुभूतियों तथा मातृत्व के गहन रहस्य को एक सजीव जोड़ते आये हैं। इन बातों को आज के बहुत से लोग जानते हैं। बिना धर्म की दुहाई दिये वे इस बात को स्वीकार करते हैं कि आज के और पुरातन के धर्म की रूपरेखा में काफी समानता के बावजूद भी पुरातन धर्म की अनेक आध्यात्मिक बातें और पूजा

पाठ के तरीक़े बहुत भिन्न थे। पुरातन धर्म और वर्तमान धर्म की रूपरेखाओं में कितना भारी अन्तर है यह वेश्यावृत्ति से सम्बन्धित ऐतिहासिक तथ्य स्पष्ट कर देते हैं। महापुरातन काल की वेश्या देव-मन्दिर की गणिका होती थी।

मानव इतिहास के बर्बर और अर्ध-सभ्य समाजों के धर्मों की मान्यता थी कि तमाम औरतें आत्मार्पण एक बार या अनेक बार पुरोहितों या दूसरों के सामने अवश्य करें। जो औरत इससे इन्कार करती उसका दंड यह माना जाता था कि वह आजीवन निस्सन्तान रहेगी; कि उस पर दैवी प्रकोप होगा। उदाहरण के लिये बेबीलोन में गरीब हो या अमीर हर औरत को एक बार 'वीनस' के मंदिर में अवश्य जाना पड़ता था। उसे मंदिर के बगीचे में तब तक खड़ा रहना पड़ता था जब तक उसी की जाति का कोई अजनबी आकर उसके साथ सम्भोग न करे। समकालीन इतिहासकार सबूत छोड़ गये हैं कि कभी कभी बहुत ही सुशील इच्छारहित महिलाओं को भी बरसों इस बात में लग जाते कि वे किसी पुजारी को रिझायें और वह उनके साथ सम्भोग करके उनके लिये मुक्ति का द्वार खोले। यह भी जानी-मानी बात है कि अधिक काल तक यह परम्परा धर्म के आवरण में ढँकी न रह सकी। मंदिरों को कायम रखने और पुरोहितों के खानपान के बन्दोबस्त के लिये हर "भक्त" को मंदिर में चांदी का एक चमकता हुआ पवित्र सिक्का छोड़ आना पड़ता था। इस प्रथा के परिणाम-स्वरूप बहुत ही गंदे और कुत्सित विचारों का जन्म हुआ। ऐसे लोगों की कमी न थी जो देवताओं को इस सरल उपाय से प्रसन्न करने के लिये सदा तैयार रहते। दूसरे, कुछ महिलाओं को पता चला कि अपनी दूसरी भाग्यहीन बहिनों के समान वे बारम्बार मंदिर में जा सकती हैं और हर बार कोई न कोई उदार पूजक उन्हें चांदी का सिक्का देने को तैयार रहता है।

परिणाम स्वरूप पतित पुरोहितों ने तय किया कि इस तरह इकट्ठा

होने वाले पैसे में हम लोग भी हिस्सा बांट करें। और धीरे-धीरे मंदिर में देव-पूजा का स्थान व्यभिचार ने ले लिया। लोग मंदिर में केवल इस इरादे से जाते कि अपनी लिप्सा को बुझायें। औरतें और मंदिर के पुरोहित रकमें सीधी करने में लग गये। मंदिर, मंदिर न रहे, व्यभिचार के अड्डे बन गये।

एक सामाजिक कुरीति के रूप में व्यभिचार की इस प्रकार स्थापना हुई। आधा व्यवसाय, आधी धर्मपरायणता,—सदियों तक इसका यही रूप रहा। भारत मे तो इसका यह रूप कहीं कहीं अब भी पाया जाता है। वहाँ देव-नर्तकियाँ युगों पुरानी देव-दासियों के समान अब भी मन्दिरों में नाचती हैं; और, कोई भी ग्राहक अच्छी रक़म देकर उन्हें अपना सकता है।

ईसाई मजहब ने जैसा कि सर्व विदित है तमाम पश्चिमी देशों से इस तरह की प्रथा को समाप्त किया। पर व्यभिचार का अन्त इससे भी नहीं हुआ। हुआ यह कि बदचलन औरतों के अड्डे गिरजाघर से हटकर दूर घनी बस्तियों में बन गये। इसका पूर्वाभास यूनान के प्राचीन इतिहास में भी मिलता है। यूनान के प्राचीन इतिहास के प्रति कवियों और विद्वानों की श्रद्धा व भक्ति का मैं आदर करता हूं। पौराणिक हैलिनयकी सभ्यता की प्रशंसा करने के बाद जब हम उस युग के जीवन के तथ्य सामने रखते हैं तो हमें सहम जाना पड़ता है। पर उस काल के वास्तविक तथ्यों को नजदीक से देखने पर हमे पता चलेगा कि उस काल की जैसी प्रशंसा गाई जाती है वह कुछ असंयत भी है। सुप्रसिद्ध दार्शनिक डेमोस्थनीज को प्रेरणा देने वाली महिला 'लैस' स्वयं एक व्यभिचारिणी थी। इसी प्रकार की व्यभिचारिणी 'असपासिया' भी थी जिसे पेरीक्लीज हृदय से पूजता था। ये महिलाएँ बहुत ही ऊँचे दर्जे की वेश्याएँ थीं। पर उनकी सुन्दरता और बुद्धि के बारे में कही गयी तमाम बातें इस सच्चाई

पर पर्दा नहीं डाल सकतीं। क्या 'सैस' और क्या 'असपाशिया',—सभी "प्रेम" धन से करती थीं। उनके नम्बर सबसे आगे इसलिए हैं क्योंकि उनमें ज़्यादा से ज़्यादा पैसा खींचने की चतुराई मौजूद थी। पर जिन लोगों को चतुराई भरी बातों में मज़ा नहीं आता था यानी जो नाच-गाना ज़्यादा पसन्द करते थे उनके लिए मंझले दर्जे की वेश्यायें (एल्यूट्रिडी) थीं। ग़रीबों के लिये सबसे निचले दर्जे की वेश्यायें (विक्टेरियाड) थीं।

यह था यूनान में महिलाओं का क्रम-विभाजन। यद्यपि इस व्यभिचार पर धर्म की छाप लेशमात्र भी नहीं थी, तथापि इसे ज़रा भी बुरा नहीं समझा जाता था। व्यभिचार की ऐसी ही व्यवस्था रोम के प्राचीन गौरवपूर्ण दिनों में भी थी। वहाँ के सुप्रसिद्ध "बाथ" (हरम) आजकल के 'कुत्सित गृहों' से ज़्यादा भिन्न न थे। थोड़ा सा फ़र्क यही था कि "बाथ" बहुत ही सजे-बजे होते थे और उनके आस पास सफ़ाई ज़्यादा रहती थी।

देखा जाय तो ईसाई मज़हब ने इस क्षेत्र में जो असली तबदीलियाँ कीं उनसे अच्छाई के बजाय बुराई ज़्यादा हुई। सच है कि वेश्या के घर को गिरजाघर से सदा के लिये दूर कर देने से एक नैतिक विजय हुई। पर, गन्दगी और ग़रीबी में आकर ये वेश्यायें सामाजिक बीमारियों की जड़ बन गईं। यदि किसी भी दिशा में उनकी तरक्की हुई तो उनकी संख्या में। समाज में वेश्याओं को बुरी नज़र से मध्य युग की कई शताब्दियों तक के देखे जाने का उन पर कोई ख़ास असर नहीं पड़ा। सच पूछो तो धर्मयुद्धों (क्रूसेड्स) के दिनों में भी व्यभिचार का ख़ूब बोल-बाला था। यद्यपि चार्ल्स दि बोल्ड की सेना अधर्मी पूर्वी देशों के ख़िलाफ़ धर्मयुद्ध छेड़ने निकली थी, कहा यह जाता है कि उसके साथ चार हज़ार महिलाएँ संगिनी के रूप में थीं। बड़े बड़े खेल-कूदों, त्योहारों और उत्सवों के अवसर पर व्यभिचार इतने व्यापक पैमाने पर फैलता कि

लिख सकना कठिन है। चिकित्सा के इतिहास में हमें उसकी अच्छी खासी झांकी मिल जाती है।

अस्तु यह जानना अच्छा ही होगा कि जिस व्यभिचार को इतने बड़े पैमाने पर बरदाश्त किया जाता था वह सामाजिक-समस्या कैसे बन गया।

बारहवीं सताब्दी के मध्य में लिसबन के विरुद्ध धर्मयुद्ध चलाने वाले जर्मन और अंग्रेज राव-राजाओं की चिन्ताओं का ठिकाना न रहा, जब उन्हें मालूम हुआ कि उनकी सेनायें तो अपनी "संगिनियों" से ही उलझी हुई हैं। उन्होंने फ़ौरन ही कड़ा नियम जारी कर दिया कि फौज का वेश्याओं से कोई सम्बन्ध न रहे। उदाहरण के लिये, इतिहास प्रसिद्ध फ्रैड्रिक प्रथम की घोषणा निम्नलिखित थी :—

"किसी के क्वार्टर में औरत न पाई जाय। अगर किसी ने औरत रखने की जुर्रत की तो उसके हथियार उससे छीन लिये जायेंगे और उसे अधर्मी क़रार दे दिया जायगा। औरत की नाक काट ली जायगी"।

"संगिनियों" की इस दुर्गति से व्यभिचार को खत्म करने में उतनी ही सफलता मिली जितनी 'नाइटों' (युद्ध-प्रेमी वीरों) की बेइज्जती करके या ईसामसीह के नाराज होने का डर दिखाकर मिली थी। अर्थात् बिल्कुल नहीं। एक बात जरूर हुई। फ्रैड्रिक की दण्ड योजना की बार बार नकल की गई पर व्यर्थ। बाद के पाँच सौ सालों में योरप के जल्लादों ने न जाने कितनी बदकिस्मत औरतों की नाकें काट डाली होंगी।

जो भी हो, इस स्थिति का सामना उन औरतों को नहीं करना पड़ा जो धनिकों की कृपा पात्र थीं। शान्ति-काल में तो इन महिलाओं ने मन-माना ऐश किया। 'दुविजेवा' नामक पादरी ने अपनी एक रिपोर्ट

में (लगभग ११८० के) बताया है कि बहुधा फ्रांस की महारानी और राजघराने की दूसरी महिलायें खूबसूरत वेश्याओं को ऊँचे घराने की महिलायें समझ बैठती थीं। बाद में उन्हें पश्चाताप होता था। इसी कारण लुई तेरहवें ने क़ानून बना दिया कि वेश्याएँ चूनर न ओढ़ें। ताकि लोगों को यह समझने में दिक़्क़त न हो कि कौन वेश्या है और कौन नहीं।

दो सौ साल बाद, जब फौजों से व्यभिचार खत्म होता दिखाई न दिया तो योरुप के युद्ध-शास्त्रियों ने एक नया नियम बनाया। यह नियम कहीं-कहीं तो तब से कायम रहता आया है और आज भी कायम है। इसका नाम था : व्यभिचार नियन्त्रण कानून। मुमकिन है कुछ और लोगों ने भी पहले इसे शुरू किया हो। पर जहाँ तक हमे मालूम है सम्राट फ्रैड्रिक द्वितीय ने १३८० में अपने सेनापति को आदेश दिया कि शाही सेना के साथ लगी हर व्यभिचारिणी औरत से साप्ताहिक फ़ीस वसूल की जाय। बाद में अंग्रेज, फ्रांसीसी, इटालवी तथा डच शासकों ने अपने भिन्न भिन्न अफ़सरों को इसी तरह का काम सौंपा। सौ बरस से कुछ ही पहले नीदरलैंड पर जब ड्यूक आफ आल्वा ने चढ़ाई की तो उसकी फौज के साथ वेश्यायें बड़ा ठाट-बाट से थीं। कई सौ वेश्यायें तो शाहज़ादियों के से कपड़े पहने थीं और हर एक के पास सवारी के लिये एक अच्छा घोड़ा था। बाकी पैदल थीं। फौजियों की तरह कतार बाँधे वे भी हाथ में झंडे लिए चल रही थीं। वेश्याओं के हर दस्ते के हाथ में उन्हीं फौजी टुकड़ियों का झण्डा था जिनसे उनका सम्बन्ध था। ड्यूक ने हुक्म जारी कर दिया था कि जो भी फौजी नियत फ़ीस दे उसे हर औरत को मंजूर करना पड़ेगा और उसके साथ सम्भोग करना पड़ेगा।

योरप के तमाम देशों में—जिनमें इंगलैंड भी शामिल है—वेश्यावृत्ति का ऐसा ही इतिहास रहा है। रोमन-विजेताओं का अनुकरण करते हुए

ब्रिटिश-अधिकारियों ने व्यभिचार को पहले-पहल कुछ खास मकानों तक सीमित रखने का प्रयत्न किया। हेनरी प्रथम के काल में ये मकान, 'टेम्स' नदी के दक्षिणी किनारे पर बसे थे, व्यभिचार सम्बन्धी उच्छृंखलता के ये ही अड्डे थे। हेनरी द्वितीय ने जरूरत महसूस की कि इन मकानों पर नियंत्रण रक्खा जाय। जैसे कि गिरजाघर की छुट्टी के दिन में इन मकानों को बन्द रहना पड़ता था। किसी भी विवाहित महिला या पुजारिन को इन मकानों में घुसने की इजाजत न थी। अपनी मर्जी के खिलाफ भी कोई महिला वहाँ न रोकी जा सकती थी। साथ ही एक विचित्र क़ानून यह भी था कि जो वेश्या मर्द के साथ पूरी रात न बिताये, उसको फ़ीस न दी जाय।

मध्य योरप के विकसित होते हुए विशाल नगरों में व्यभिचार का खूब बोल बाला था। स्थानीय सेनायें और व्यापारी इसके पोषक थे।

इस कथन की प्रमाणिकता के साक्षी उस जमाने के दस्तावेज आज भी मौजूद हैं। घटना के लिखित प्रमाण मौजूद हैं कि सन् १४१४ में सम्राट 'सिजिसमण्ड' आठ सौ घुड़सवारों सहित स्विटजरलैंड के 'बर्न' नगर में ठहरे। उनके स्वागत में 'बर्न' के नगरपालों ने तमाम वेश्या-गृहों को तीन दिन के लिये उनके हवाले कर दिया था। सम्राट और उनके साथियों ने न केवल इस अवसर का पूरा-पूरा लाभ उठाया; नगरपालों को सम्राट ने लिखित रूप से धन्यवाद भी दिया।

यह ध्यान देने की बात है कि जो परिस्थिति आज हमे बड़ी घृणास्पद मालूम होती है वह उस समय पूरी तरह नैतिक मानी जाती थी। मध्य युग में वेश्यागमन जीवन का एक आवश्यक अंग माना जाता था। बाद में जरूर व्यभिचार के इस खुल्लमखुल्ला पोषण को बुरी नजर से देखा जाने लगा। इतिहास बताता है कि किसी भी समाज की सभ्यता की नाप-जोख

उस समाज में अनैतिकता के प्रति रवैये से होती है।

इस सम्बन्ध में यह बता देना जरूरी है कि युद्ध से पहले के काल में जापान में कई हजार वेश्यागृह थे। इन वेश्यागृहों की निगरानी जापानी सरकार खुद करती थी। कुछ वेश्यागृहों को तो जापानी सरकार खुद चलाती थी। युद्ध के बाद वहाँ काफी परिवर्तन हो गये हैं। लेकिन वहाँ की एक बात अब भी बड़ी अनोखी है: उच्च और मध्यम आर्थिक स्तर वाले लोगों मे से कुछ उन स्त्रियों से भी विवाह कर लेते हैं जो वर्षों तक आम लोगों के सुख-भोग का साधन रह चुकी होती हैं; इससे उनकी इज़्ज़त में कोई बट्टा नहीं लगता। हिटलरी जर्मनी में नैतिक पतन भयानक रूप में था चौतरफ़ा विकृत काम वासना का राज्य था। वेश्यागृह बड़े संगठित रूप से चलाये जाते थे। बड़े से बड़े अखबारों में काम-वासना उभाड़ने वाले विज्ञापन भरे रहते थे। यह भी एक अकाट्य सत्य है कि पश्चिमी जर्मनी और जापान में—खासतौर से जहाँ अमरीकी आधिपत्य कायम है—जनता को अमरीकी "नैतिकता" का जो नज़्ज़ारा देखने को मिला है, उससे वह सिहर उठी है। अमरीकी फ़ौजी दस्तों के व्यवहार के खिलाफ़, उनमें इन्द्रिय रोगों की बढ़ती के खिलाफ़, न सिर्फ जर्मनी और जापान के, बल्कि खुद अमरीका के पादरियों और डाक्टरों ने रोष प्रकट किया है

जापानी नैतिकता के बारे में बहुत सी ऊलजलूल और बेहूदा बातें भी प्रचारित की गई हैं। प्रशांत-युद्ध (Pacific War) के समय कुछ मित्र-राष्ट्रीय अफ़सरों ने तो बड़ी संजीदगी से यह तक कह डाला कि सुप्रसिद्ध "गीशा बालायें" दरअसल वेश्यायें नहीं थीं। हमारे यहाँ की स्टेज-द्वार की कैन्टीन-बालाओं की तरह वे सम्मानित महिलाएँ थीं। जापानी नैतिकता के सम्बन्ध में सभी बातें विस्तार से 'कौस' की

पुस्तक दास जेस्यलेख्तलेबेन दर जापानेर* में मौजूद हैं। सभी वेश्या-गृहों को आमतौर से योशीवारा कहते थे। यूँ अलग-अलग वर्गों के वेश्यागृहों के अलग-अलग नाम थे। बहुधा इन घरों का नियन्त्रण राज्य की ओर से होता था; कभी-कभी मठों-मन्दिरों की ओर से भी। वहाँ की प्रथा सदियों पुरानी है और अपने वर्तमान रूप में मध्य युग के नैतिक नियमों की अनूठी मिसाल है।

जापनी सरकार छोटी-छोटी लड़कियों को इस पेशे के लिये खरीद लेती थी और उन्हें इसी पेशे की शिक्षा देती थी। कर्ज़ से लदे व भुखमरी के शिकार किसान अपनी लड़कियों को बेचने के लिये तैयार हो जाते। लड़की का रंग–रूप और उसकी चतुराई इस बात का फैसला कर देती कि वह किस वर्ग के लोगों के लिये उपयुक्त है। "सबसे अच्छी" कुमारियों को ज़्यादा से ज़्यादा शिक्षा दी जाती। उन्हें पढ़ना-लिखना कविता लिखना और गाना गाना, नृत्यकला और तहज़ीब की शिक्षा दी जाती। वेश्या बन जाने पर भी उसकी शिक्षा दीक्षा जारी रहती। हाँ पुरानी वेश्यायें ही उसकी शिक्षिका का काम करतीं। एक क़ानून से वेश्या का काम शुरू करने की उनको तब तक मुमानियत थी जब तक वे १४ साल की न हो जायें। एक दूसरे क़ानून से वे वेश्या गृह छोड़ भी सकती थीं, बशर्ते कोई उन्हें खरीद ले और वे उसकी पत्नी बन जायें।

अपने यहाँ की तरह जापानी भाषा में 'रण्डी' जैसा कोई अपमान सूचक शब्द नहीं। वहाँ वेश्या को "थोड़ी देर के लिये बीबी" या "घण्टे भर की बीबी" कहा जाता है। प्रसिद्ध जापानी कविताओं में ऐसी औरतों का जिक्र अक्सर आया है जिन्हें 'दलदल में कमल' कहा गया है।

---

* देखिये आर० हर्तज़े द्वारा इस पुस्तक की विवेचना। भाग ६, शीर्षक 'योशीवारा'।

वर्तमान टोकियो की योशीवारा वास्तव में "पंक से पूरित कुण्ड" ही थी किन्तु कवित्वमय भाषा में उसे 'सुख के सरोवर' की योशीवारा कहा गया। यह स्थान नगर का ही एक अंग था। परन्तु नगर और इसके बीच कुछ खाईयाँ थीं। नगर से इस स्थान पर पहुँचने के लिये एक पुल बना हुआ था जिसके द्वार पर लिखा हुआ था, "बसन्त का वह स्वप्नलोक जहाँ की सड़कों पर नये-नये मनोहर प्रसून खिले हैं।" सन् १८७२ में योशीवारा सम्बन्धी क़ानूनों में नये परिवर्तन हुए। बड़े-बड़े वेश्यागृह बनाने की इजाजत मिली। सफ़ाई सम्बन्धी नये नियम बने धनी-मानी लोगों और फौजी अफ़सरों के मनोरञ्जन के वेश्यागृह छोटे-मोटे महलों की होड़ लेते थे। टोकियो के इन वेश्यागृहों के नमूने जापान में लगभग सब जगह मौजूद हैं। जापान का यह लाल रोशनी वाला क्षेत्र दुनियाँ में अपना सानी नहीं रखता था। विस्तार और व्यापार की दृष्टि से दुनियाँ में उनकी टक्कर के दूसरे वेश्यागृह नहीं हैं। हजारों की तादाद में बड़ी खूबसूरती से रँगी-चुनी लड़कियाँ रँग-बिरंगे बारीक पर्दों के पीछे क़तार बाँधे बैठी रहतीं। पश्चिम के यात्री को वे अभागी विक्टोरिया-युग की "स्वर्ण पिंजड़े की चिड़ियों" की याद दिलातीं। सबसे उत्तम वेश्यागृहों में सबसे उत्तम "पिंजड़े" होते।

पिछले कुछ दिनों से सड़क पर गुजरने वालों को ये लड़कियाँ दिखलाई नहीं देतीं। अब उनके स्थान में उनके फ़ोटो बाहर लटके रहते हैं।

इन वेश्यागृहों में जाने वालों को कई छोटे मोटे अनुष्ठान पूरे करने पड़ते थे। फलस्वरूप अनेक पश्चिमी आगन्तुक इन्हें सिर्फ मनोरंजन-गृह समझ बैठते थे। "घंटे भर की बीबी" का सौदा चाय पीने के उस कमरे में बैठकर पटाया जाता था जो बहुत ही सौम्य और पवित्र मालूम होता।

ऊँचे दर्जे के वेश्यागृहों में आगन्तुकों की सुविधा के लिये इन कमरों में वेश्याओं के चित्र लटके रहते थे। कुछ वेश्यागृहों के अपने विशेष चिन्ह होते जो दरवाजे पर लटकी लालटेनों पर अंकित होते। हाँ, सस्ते वेश्या-गृहों मे ये सब ताम-झाम नहीं थे। जापानी गाँवों की वेश्यायें दरिद्रता के उसी स्तर पर थीं जिस पर यौरप या अमरीका के गाँवों की। "गीशा" आमतौर से उन वेश्याओं को कहते थे जो औसत दर्जे की वेश्याओं से ज़्यादा चतुर और शिक्षित होती थीं। अस्तु, जापान में यूनानी और मध्यकालीन व्यभिचार-व्यवस्था, दोनों के ही लक्षण मौजूद थे।

यौरप में मध्ययुग के अन्तिम चरण में वेश्यावृत्ति के खिलाफ संघर्ष तेज होता हुआ दिखाई पड़ता है। इस काल में वेश्यावृत्ति को कड़े शब्दों में अनैतिक घोषित किया गया। अनेक वैज्ञानिकों ने पता लगाने की कोशिश की है कि ऐसा क्योंकर हुआ। उन्होंने इसके भिन्न-भिन्न कारण बताये हैं। कुछ ने कहा है कि किसी अदृश्य शक्ति ने लोगों के मन में नैतिक भाव जगा दिये। कुछ का कहना है कि इसका कारण शिक्षा का प्रचार, धर्म का प्रसार, और इन्द्रिय-रोगों को रोकने की आवश्यकता थी, इत्यादि इत्यादि। सोवियत वैज्ञानिकों के अनुसार इसका कारण कुछ और ही था। उनका कथन है कि अनैतिकता के विरुद्ध सामाजिक प्रतिरोध के साथ साथ वह 'प्रेम' भी एक प्रबल शक्ति थी जिसके कारण यह परिवर्तन हुआ।

प्रश्न उठता है: उस अनुभूति के "शुरू होने" की बात विज्ञान क्योंकर कर सकता है जो मानव स्वभाव का एक बुनियादी लक्षण है? क्या अनन्त काल से ही पुरुष और स्त्री एक दूसरे के प्रेम-पाश से जकड़े नहीं रहे हैं?

सोवियत अधिकारियों का उत्तर है कि प्रेम, जिस रूप में कि हम आज उसे जानते हैं, मनुष्य-जीवन में अभी हाल की ही चीज़ है। इससे

भी विचित्र उनका यह दावा है कि सामन्तवाद के खिलाफ़ वर्तमान पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था के विजयी संघर्ष ने ही स्थायी प्रेम को जन्म दिया। व्यभिचार के स्तर से ऊपर उठाकर उसने प्रेम को सम्मानपूर्ण स्थान दिया। प्रेम को उसने एक ऐसे नैतिक सम्बन्धों की संज्ञा ही बना दिया जो व्यभिचार से मोर्चा ले सके।

इन अनूठे तथ्य को जान लेने से हमें उन तरीक़ों को समझने में मदद मिलेगी जिनके ज़रिये सोवियत अधिकारियों ने व्यभिचार पर विजय प्राप्त की। उनके विशेषज्ञों की खोज बीनों को समझना कोई मुश्किल काम नहीं।

हम देख चुके हैं कि एक पुरुष और एक स्त्री के विवाह की प्रथा बर्बर समाज में ही शुरू हो चुकी थी। सभ्यता के विकास के साथ-साथ इस विवाह प्रथा में अत्यन्त महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये। सोवियत वैज्ञानिक भी उस तथ्य की पुष्टि करते हैं जिसे इतिहासकार बहुत अरसे से बताते आये हैं कि एक पत्नीव्रत प्रथा के साथ-साथ वेश्यावृत्ति भी सब कहीं चलती रही। पर सोवियत विशेषज्ञ इससे और आगे बढ़ते हैं। यूनानी और रोमन सभ्यताओं का अध्ययन करके वे इस बात का अकाट्य सबूत पेश करते हैं कि एक पत्नीवृत का आधार साधारणतः आर्थिक उद्देश्य था। क़ानून ने एक पत्नी-प्रथा की स्थापना इस उद्देश्य से की कि पति का तमाम धन उसकी मृत्यु के बाद कुछ थोड़े से लोगों में ही विभाजित हो—खासतौर से उसकी क़ानूनी-पत्नी की सन्तानों में ही। यह अमली क़दम इसलिये उठाया गया था कि धनी वर्गों के लोगों की सम्पत्ति उनके पुत्र और पुत्रियों के हाथों में ही केन्द्रित रहे। इसलिये कि वह सम्पत्ति उनके ग़ैरक़ानूनी पुत्र-पुत्रियों के हाथ में पड़कर बारहबाँट न हो जाये।

एक पत्नीव्रत प्रथा की शुरुआत इसलिये नहीं हुई थी कि पति और पत्नी अपने प्रेम को चिरस्थायी बनाना चाहते थे—जैसा कि कभी कभी

हम यह विश्वास कर बैठते हैं। यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि यूनान और रोम के सभ्य माने जाने वाले पुरुष बहुधा उस स्त्री से विवाह करना पसन्द नहीं करते थे जिससे वे प्रेम करते थे। बल्कि उनका प्रेम उच्च वर्ग की उन महिलाओं से होता जो उनकी रुचि को तृप्त तो करती थीं किन्तु जिनसे विवाह न किया जा सकता था।

उस युग के धनी पुरुषों के लिये विवाह एक ऐसी वैध आवश्यकता थी जिसके बल पर उन्होंने अपने बाप-दादों की सम्पत्ति और समाज में सम्मान का स्थान प्राप्त किया था और उनके आधार पर ही वे अपनी कानूनी पत्नी से उत्पन्न सन्तान के बीच अपनी सम्पत्ति बाँट सके थे। ग़रीबों को विवाह कर लेने से पत्नी के रूप में एक दासी और बच्चे पैदा करने वाली औरत मिल जाती थी। किन्तु ये सभी पुरुष अपनी भोग लालसा की तृप्ति के लिये उन औरतों के पास जाते जिनसे वे विवाहित नहीं थे। इसे ज़रा भी अनैतिक नहीं समझा जाता था।

जैसा कि स्पष्ट है, एक पत्नी प्रथा की सीमाओं में केवल औरत बँधी हुई थी। पति के लिये कानूनी और नैतिक अधिकार था कि वह विवाह के अलावा सभी तरह के स्त्री सम्बन्धों को वर्त सकता था। बशर्ते कि इस तरह के सम्बन्ध के वह खरे दाम चुका सके। पत्नी को ऐसा कोई अधिकार हासिल नहीं था। अपने पति को छोड़ किसी दूसरे पुरुष से सम्भोग करने वाली स्त्री के लिये कड़े से कड़े दण्ड की व्यवस्था थी। अपने पति के अलावा यदि स्त्री किसी और से सम्बन्ध करे तो उसे अनैतिक क़रार दे दिया जाता था। इसका मोटा कारण यह था कि मुमकिन है वह किसी दूसरे आदमी से पुत्र को जन्म दे। और यह पुत्र उसके पति की जायदाद का हक़दार बन बैठे। हर पुरुष के लिए यह सब अनैतिक न था—न तो चार्ल्स दि बोल्ड और न सम्राट सिजिसमंड के लिए। भले ही वे हफ्तों वेश्यागृह में बिता दें। यह ठीक उसी तरह

अनैतिक न था जैसे यूनानी कवियों के लिए 'सैस' जैसी महिलाओं की प्रशंसा में गीत गाना अनैतिक न था। जो चीज हमें और आश्चर्य में डाल देती है वह यह कि पुरातन काल और मध्ययुग में वैश्या के जीवन को समाज जरा भी नीची नजरों से नहीं देखता था। इसके विपरीत वैश्या वृति समाज के लिए अत्यन्त आवश्यक मानी जाती थी।

सम्पत्ति के क़ानूनी अधिकार पर आधारित नैतिकता की इस व्यवस्था को लगभग दो हजार वर्ष पहले ईसाई समाज ने ज्यों का त्यों अपना लिया। इस व्यवस्था का सबसे खुलासा रूप वह है जिसे इतिहास की किताबों में 'सम्राट का दैवी अधिकार' कहा जाता है। जमीन और धन के उत्तराधिकार की सीमा समूची राजनीतिक सत्ता के उत्तराधिकार तक पहुँच गई। अन्त में इसी उत्तराधिकार पर सामन्तवाद का सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक ढांचा खड़ा किया गया। सम्राट का पुत्र अपने पिता के ताज का हकदार होता। सामन्त अपनी गद्दी को अपने बेटे को सुपुर्द करता। दीवान का बेटा दीवान होता। गरीब किसान को अपने बाप की टूटी फूटी झोपड़ी ही मिलती। मध्य युग में औद्योगिक कारीगरों के विवाह सम्बन्धी और जन्म सम्बन्धी क़ानूनों को कुशल कारीगरों के संगठन—जो "गिल्ड" कहलाते थे—बनाते थे। न सिर्फ बन्दिश यह थी कि कोई अपने सामाजिक वर्ग को छोड़कर दूसरे वर्ग में विवाह न करे; बल्कि प्रेम पर आधारित विवाह कर सकना भी कल्पना से परे था। किसी भी लड़की का विवाह उसकी वर्ग स्थिति के आधीन होता था। स्थिति को देखकर आम तौर से "बिचवानी" उसका ब्याह तय करते। कभी-कभी सरकारी ओहदेदार भी इन ब्याहों को तय करते। शायद ही कभी किसी लड़की की इच्छा जानने की कोशिश की जाती। उसकी राय ले लेना केवल ऊपरी चीज थी। आम तौर से अपने पति का मुँह वह अपने ब्याह के दिन ही देख पाती।

अस्तु, इस काल में उस महत्वपूर्ण अनुभूति को, जिसे हम 'प्रेम' कहते हैं, कोई कानूनी मानता नहीं दी जाती थी।

व्याह के मौके पर पत्नी बनने वाली लड़की को कड़ी हिदायत दी जाती कि वह बड़ी भक्ति से आजीवन केवल एक पुरुष को—अपने पति को—प्यार करे। व्याह की कानूनी और धार्मिक कार्रवाई को इस बात को गारंटी माना जाता। समाज हालांकि इस बात को जानता था कि पत्नी अपने पति के अलावा किसी दूसरे मर्द से प्यार कर सकती है। पर इस प्यार को जाहिर न करने की कड़ी ताकीद की जाती थी। उधर, उसके पति की बेलगाम लिप्सा को बढ़ाने और तुष्ट करने वाली अनैतिक महिलाओं की फौज ज्यों की त्यों बरकरार रहती।

किन्तु, मध्य युग में ही स्त्री के प्रेम को शक्ति और स्त्री प्रेम की पवित्रता की उपासना भी बढ़ी। कवियों और सितार बजा कर भीख मांगने वालों ने स्त्री प्रेम की गौरव गाथाएं गानी शुरू कीं। इस तरह उस प्रवृत्ति का जन्म हुआ जिसे हम 'साहसी वीर भाव' (अंग्रेजी में "शिवेलरी") कहते हैं। विक्टोरिया-कालीन साहित्य को पढ़कर हमारा युवक वर्ग इस शब्द का जो अर्थ लगाता है उससे यह एक दम भिन्न था। यह "दुष्ट पुरुषों के बलात्कार से पवित्र स्त्रियत्व की वीरतापूर्ण रक्षा" नहीं था। वास्तव में यह विवाह के बन्धन को तोड़कर सच्चा प्रेम करने की स्त्री की क्षमता का परिचायक था। खुले शब्दों में यह पुरुषों का उन स्त्रियों से प्रेम था जो सचमुच उन पर जान देती थीं, भले ही वे किसी और की पत्नी क्यों न रही हों।

हमारी आज की समझदारी के मुताबिक यह रीति व्यभिचार को न्यायपूर्ण ठहराने वाली अर्थात अनैतिक मालूम होती है। पर बात ऐसी नहीं है। उसे हम अपने आज के सामाजिक मापदंडों से नहीं तोल सकते। वास्तव में वह एक शक्तिशाली नैतिक-जागरण की प्रतीक थी। उसने

राज्य अथवा धर्म द्वारा सर पर लादे गए पुरुष के विरुद्ध अपनी रुचि के पुरुष को प्यार करने के स्त्री के अधिकार का प्रश्न सामने ला खड़ा किया।

साथ ही साहसी वीर भाव ने पुरुषों में भी एक नई चेतना का संचार किया। इसने उन्हें प्रेम की आध्यात्मिक शक्ति के प्रति जागरूक बनाया। 'बिचवानियों' के जरिए कराये गए ब्याहों का पर्दाफाश तो इसने किया ही, व्यभिचार की कुरूपता को भी इसने उघाड़ कर रख दिया। अब अपने सच्चे प्रेमी से प्यार करना स्त्री के लिए "वीरतापूर्ण" कार्य था। इस तरह वह अपने प्रेम करने के अधिकार को व्यक्त करती थी। यह कार्य नैतिक भी था। क्योंकि अब यह भी साबित हो गया था कि सच्चे प्रेम के उपासक पुरुष भी मौजूद हैं। मध्ययुग की यह एक बहुत बड़ी देन थी कारण कि एक पुरुष और एक स्त्री जो सचमुच एक दूसरे को प्यार करते थे, विवाह के बन्धन को तोड़कर एक दूसरे के बन जाते। उनका यह सम्बन्ध इतनी बलवती प्रेम की भावनाओं से प्रेरित होता कि वह आजीवन अटूट बना रहता। प्रेम से बंध जाने पर ये दोनों प्राणी बिना किसी कानूनी या दूसरे बन्धन के मृत्यु-पर्यन्त एक दूसरे के प्रति वफादार बने रहते।

वीरता की इस भावना का उद्देश्य स्त्रियों को उस कानूनी, किन्तु अनैतिक, विवाह के बन्धन से मुक्त करना था जिसमें स्त्री अपनी बिना मरजी के किसी भी पुरुष के साथ बाँध दी जाती थी। किन्तु इससे भी अधिक महत्व का एक दूसरा उद्देश्य था। यह उद्देश्य था उन पुरुषों को नैतिकता की शिक्षा देना जो विवाह की खीझ व्यभिचार के दरवाजे पर ठंडी करते थे।

मध्ययुग का कविता-साहित्य प्रेम की इसी भावना की प्रशंसा से सराबोर है। साथ ही, उस काल का इतिहास इन कवियों के राजकीय दमन के उदाहरणों से भी भरा-पूरा है। एक नई नैतिक व्यवस्था के रूप में

यह साहसी वीर भाव यकायक नहीं फूट पड़ा था। सदियों तक यह भी भोग-लालसा में भीगा रहा। तत्कालीन धर्म के ठेकेदारों को इस पर लगातार हमले बोलते रहने का इसी कारण नैतिक आधार भी मिल गया।

परन्तु इस प्रकार के प्रेम के विरोध का वास्तविक कारण कुछ और ही था। नई आर्थिक शक्तियाँ सामन्तवाद की जड़ें हिला रहीं थीं। पूंजीवाद और पूंजीवाद की जनवादी विचार-धारा का विकास हो रहा था। 'बिचवानियों' के जरिए तय किए गए ब्याह, उत्तराधिकार के नियम, और व्यभिचार—ये थे सामन्तवाद के पाये। विवाह से परे प्रेम की भावना ने सामन्ती समाज-व्यवस्था की नींव को और भी कमजोर करना शुरू कर दिया। यही कारण था कि जो कवि ऐसे प्रेम की गाथा गाते उन्हें हमेशा अपनी जीभ काट लिये जाने या चौरस्ते पर फांसी लगा दिए जाने का भय सताता रहता।

किन्तु इस नए नैतिक प्रेम की भावना का दमन व्यर्थ साबित हुआ। समय आया कि शेक्सपियर इस समस्या को निडर होकर लन्दन के रंग-मंच पर पेश कर सका। हमारे स्कूलों में यद्यपि यह नहीं बताया जाता कि शेक्सपियर के नाटक रोमियो एन्ड जूलियट की पृष्ठ-भूमि क्या थी। किन्तु यह एक ठोस सत्य है कि यह नाटक एक राजनीतिक नाटक है। नाटक की विषय वस्तु पुरानी जरूर है। किन्तु आज भी वह नाटक अत्यन्त भावपूर्ण दुखान्त नाटक बना हुआ है। इस नाटक ने प्रेम के लिये विवाह करने की नैतिक समस्या को सामने ला खड़ा किया। बड़े ही कलात्मक ढंग से शेक्सपियर ने दिखाया कि रोमियो और जूलियट, दोनों ही प्रेमी, अपने प्रेम की रक्षा के लिये प्राणों की बाजी लगा देते हैं। किन्तु नाटक की नवीनता यह बात नहीं थी। शेक्सपियर के पहले के कवि भी पुरुषों और वेश्याओं के बीच, दूसरे पुरुषों की पत्नियों से प्रेम के गीत गा चुके थे। रोमियो एण्ड जूलियट में नवीनता यह थी कि

उसने दो सच्चे प्रेमियों की विवाह-इच्छा को इतनी सहृदयता से चित्रित किया कि दर्शकगण रो पड़ते हैं।

इस प्रकार के विवाह के लिये पुरुष और स्त्री के अधिकार को आज हम बिना ज्यादा मीन-मेख मान लेते हैं। किन्तु इतिहासकार सोवियत वैज्ञानिकों के मतानुसार प्रेम के लिये विवाह करना उस काल के लिये एक क्रांतिकारी भावना थी। उनका कहना है कि मध्ययुग में विवाह एक राजनीतिक क्रिया थी। विवाह का उद्देश्य नवाबजादों से लेकर सामन्तों तक की शक्ति का सिक्का बिठाना था। और इस क्रिया को सरल बनाने वाली थी औरत—चाहे वह किसी सामन्त के प्राचीर में क़ैद शाहज़ादी हो चाहे झोंपड़ी में तड़फने वाली किसान की गरीब लड़की। उस काल की विवाह-प्रथा एक ओर तो वैश्यावृत्ति को पुरुषों के लिये आवश्यक बताकर व्यभिचार को खुली छूट देती थी। दूसरी ओर वह विवाहित स्त्रियों को अपने सच्चे प्रेमी के प्रति प्रेम प्रकट करने से रोकती थी। सोवियत वैज्ञानिकों की नैतिकता सम्बन्धी खोजबीन का एक अनूठा तथ्य यह है कि प्रेम पर आधारित विवाह-सम्बन्ध समाज में तभी सम्भव हुआ जब पूंजीवाद ने सामन्तवाद को उखाड़ फेंका। मुक्त प्रतिद्वन्दिता (फ्री ऐंटरप्राइज) का नैतिकता पर गहरा असर पड़ा। पहली बार व्यक्ति की स्वतन्त्रता के प्रश्न को, एक बुनियादी नैतिक उसूल को, जनवाद ने उठाया। पहली बार यह उसूल सामने आया कि प्रत्येक मनुष्य अपने सभी क्रिया-कलापों में स्वतन्त्र है; वह अपनी मर्जी का नौकरी पेशा चुन सकता है, जैसे चाहे वैसे कपड़े पहन सकता है, समाज में उसका स्थान नीचा हो या ऊँचा वह जितना चाहे उतना पैसा पैदा कर सकता है, जहाँ चाहे वहाँ जाकर रह सकता है इत्यादि। ये विचार उन दोनों के लिये बड़े क्रांतिकारी विचार थे। इन विचारों के प्रभाव से ही ईसाई धर्म में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये। यद्यपि ऐसे धर्मशास्त्री मौजूद हैं जो कहेंगे कि ईसामसीह के आदेशों में भी स्वतन्त्रता का प्रमुख स्थान है, कि कोई भी व्यक्ति ऐसा काम करने के लिये

मजबूर नहीं किया जा सकता जिसके लिये उसकी आत्मा गवाही न देती हो, परन्तु मध्य युग में ये विचार निस्सन्देह धर्म विरोधी माने जाते थे। सामन्तवाद और गिरजा दोनों ही इन विचारों के आदि से अन्त तक विरोधी थे। कारण यह कि दोनों ही मनुष्य के जन्मकाल से मृत्यु तक जबरदस्ती काम कराने के सिद्धान्त पर टिके हुये थे। ज्यों-ज्यों पुरानी व्यवस्था ढहती गई त्यों-त्यों कानून, धर्म और नैतिकता में महत्वपूर्ण परिवर्तन होते गये।

पूंजीवाद के अन्तर्गत ही इतिहास में पहली बार यह सम्भव हुआ कि विवाह सच्ची नैतिकता पर आधारित हुआ, अनैतिक जोर-जबरदस्ती की बेड़ियों से विवाह प्रथा मुक्त हुई। पहले, विवाह मोल भाव की चीज थे। बड़े-बड़े राव राजे जो कहते, वही होता। परन्तु जनवाद ने सीधा प्रश्न उठाया; जब समाज में सभी सम्बन्ध भिन्न-भिन्न दलों की निजी इच्छा पर आधारित होते हैं तो विवाह के सम्बन्ध पर— जिसके द्वारा दो प्राणी एक दूसरे से बंधते हैं—हम कैसे प्रतिबन्ध लगा सकते हैं? यह अत्यन्त पवित्र सम्बन्ध होता है। इसमें दो शरीर और दो प्रेमी जीवन भर के लिये एक दूसरे के हो जाते हैं। इसीलिये मनुष्यों का यह नैतिक कर्तव्य है कि वे प्रेम के लिये विवाह करें। और प्रत्येक ऐसा विवाह जो पुरुष और स्त्री के आपसी प्रेम पर आधारित नहीं होता; अनैतिक विवाह होता है।

ऊपर कही गई बात हमें बहुत सीधी-सादी मालूम होती है। हम लोगों को ऐसे पुरुष और ऐसी स्त्री से घृणा करना सिखाया गया है जिनका विवाह प्रेम के अलावा किसी और लोभ-लालसा पर आधारित हो। इसीलिये हम उन जनवादी नैतिक विचारों के क्रांतिकारी तत्व को यकायक नहीं समझ पाते जिन्होंने पहले के तमाम रूढ़िवादी नैतिक विचारों से लोहा लिया।

सोवियत विशेषज्ञों ने कहा : पूंजीवादी जनवाद ने इन्द्रिय सम्बन्धों में जो सुधार किये उनका असर विवाह पर इतना ज्यादा नहीं पड़ा जितना कि स्त्री की सामाजिक स्थिति पर; इस बात को कानूनी और नैतिक मान्यता दी गई कि स्त्री को भी प्रेम करने का अधिकार है और इससे उसकी इज्जत में बट्टा नहीं लगेगा।

यह ऐसा ऐतिहासिक तथ्य है जिसे हमारे नीति शास्त्रियों ने कभी पेश नहीं किया। इस तथ्य को वे समझते हैं, इसमें भी शंका है।

सोवियत वैज्ञानिकों ने इसे इतना महत्व दिया कि इसे उन्होंने अपने तमाम नैतिक आदर्शों की आधार शिला बनाया।

क्यों?

इसलिये कि पहले तो यह इस धारणा की धज्जियां उड़ा देता है कि प्रेम, विवाह और नैतिकता युग युग से अपरिवर्तित रहे हैं। इतिहास साबित करता है कि नैतिकता-सम्बन्धी आदर्शों में न सिर्फ समय-समय पर परिवर्तन हुये हैं बल्कि पूंजीवाद और जनवाद के विकास ने उन्हें एकदम बदल दिया है।

सामन्तवाद के अन्तर्गत इस बात की कल्पना कर सकना भी कठिन था कि प्रेम के लिये विवाह करना नैतिक रूप से सही है। आज तो हमारे लिये यह कल्पना कर सकना कठिन हो गया है कि प्रेम के अलावा और किसी इच्छा से विवाह करना नैतिक रूप से सही है। सामन्तवाद के दिनों में समाज के बड़े-बड़े ठेकेदार व्यभिचार के स्थानों को खुल्लम-खुल्ला प्रशंसा करते और उन्हें बढ़ावा देते थे। इसे अनुचित भी नहीं समझा जाता था; न तो समाज और न धर्म ही इसे अनुचित ठहराता था। किन्तु जनवाद की जड़ें मजबूत हो जाने के बाद व्यभिचार का संगठित अस्तित्व समाज के लिये असहनीय हो गया।

दरअसल किसी भी चीज में इतना परिवर्तन नहीं हुआ है जितना प्रेम, भोग, नैतिक आदर्शों और पाप के सम्बन्ध में मनुष्यों के विचारों और अमल में।

इतिहास के तथ्यों से एक दूसरा निष्कर्ष जो निकलता है वह यह कि हम किसी भी दृष्टिकोण से क्यों न सोचें नैतिकता में बहुत बड़ा सुधार हुआ है। इस सम्बन्ध में एक ईमानदार वैज्ञानिक और एक ईमानदार पादरी की एक ही राय होगी,—भले ही वैज्ञानिक केवल इस बात की दुहाई दे कि फ्रांसीसी क्रांति के पहले योरप में सिफलिस के मरीजों की संख्या बेशुमार थी और पादरी केवल इस बात पर आँसू बहाते कि मध्य युग में करोड़ों औरतों को नरक की जिन्दगी बितानी पड़ती थी। पर इसमें सन्देह नहीं कि मानव जाति में पहले के मुकाबले अनैतिकता की मात्रा अब कम है।

हमारा अन्तिम निष्कर्ष समाज में स्त्रियों की वर्तमान स्थिति के बारे में है। जैसा कि हम देख चुके हैं, पूंजीवादी जनवाद ने ही पहले-पहल स्त्रियों को अधिकार दिया कि वे प्रेम कर सकती हैं और उनकी इज़्ज़त में बट्टा नहीं लगेगा। उन्हें इस बात का अधिकार मिला कि वे प्रेम के लिये विवाह करें। सोवियत वैज्ञानिक जब इस ऐतिहासिक तथ्य की जाँच पड़ताल कर रहे थे तभी वे इसकी कमजोरी को भी पकड़ सके। प्रेम के लिये विवाह करने का स्त्री का अधिकार ऐसी चीज नहीं है जिसे कानूनी हिदायतों से सम्भव बनाया जा सके। कानून तो सिर्फ इस बात की रोक-थाम कर सकता है कि अपनी मर्जी के खिलाफ किसी भी औरत का विवाह न किया जाय; दरअसल, करीब करीब सभी सभ्य देशों में यह कानून है भी। किन्तु कोई भी कानून इस बात की गारन्टी नहीं कर सकता कि प्रत्येक स्त्री वास्तव में सच्चे प्रेम के लिये विवाह करने के लिये स्वतन्त्र होगी। इस स्वतन्त्रता के लिये स्त्री की पूर्ण सामाजिक, राजनैतिक

और आर्थिक स्वतन्त्रता की जरूरत होती है। इसके लिये जरूरत होती है इस बात की कि स्त्रियों को भी पुरुषों के समान अधिकार हासिल हों।

क्या यह अधिकार उन्हें हासिल हैं।

नवम्बर क्रान्ति के बाद यह दिखाई देने लगा था कि सोवियत सरकार के घोषणा पत्रों में तो स्त्रियों के समानाधिकार की बात की ही गई है, किन्तु यह कोरी कागजी बात है क्योंकि अमल में वे इन अधिकारों को नहीं पा रही थीं। अपने अनुभवों के आधार पर इस असमानता के एक पक्ष को तो हम समझ लेते हैं। सन १९२० के लगभग गोर्की और लेनिन ने जिस "बन्धन रहित प्रेम" पर करारा हमला किया था उसका उद्देश्य महिलाओं को—जो कि "पानी का गिलास" थीं—उच्छृंखल इन्द्रिय भोग को पुरुषों के ही समान-जो 'पीने वाले" थे-पूरी छूट देना था। इस तरह की स्वतंत्रता वास्तव में बड़ी घृणास्पद थी। अपने को कितनी ही बड़ी क्रान्तिकारिणी बघारने वाली क्यों न हों, जिन रूसी महिलाओं ने भी उच्छृंखल इन्द्रिय भोग का रस लेने को चेष्टा की, जिन्दगी का एक मोटा सत्य उनके सामने आ खड़ा हुआ।

तमाम कानूनों और नैतिक आदर्शों से बड़ा शरीर-विज्ञान सम्बन्धी यह तथ्य है कि पुरुष और स्त्री समान नहीं हैं। शारीरिक तत्व में स्त्री पुरुष से ज़्यादा बढ़ी चढ़ी हैं। भोग-लालसा को तृप्त करने में पुरुष और स्त्री दोनों को ही क्षणिक इन्द्रिय सुख का अनुभव होता है। किन्तु शिशु को जन्म देने, मानव जाति को आगे बढ़ाने, मनुष्य परिवार के विकास को सम्भव बनाने का महान कार्य केवल स्त्री कर सकती है।

और वास्तविक जीवन में इस महान कार्य के उपलक्ष में समाज स्त्री का आदर किस तरह करता है? मातृत्व पर कड़े प्रतिबन्ध लगाकर।

मातृत्व की दशा में स्त्री को नौकरी छोड़नी पड़ती है। उसे ही समूची शारीरिक वेदना बर्दाश्त करनी पड़ती है। शिशु की देख-रेख का उसी पर

दारोमदार होता है। सोवियत रूस में अनैतिकता की समस्या के हल होने के पूर्वकाल में जो स्थिति थी वैसी ही हमारे देशों में आज है : बच्चों की देख-रेख से स्त्री के फुरसत पाने का एक ही उपाय था कि इस बोझ को वह अपने पति पर झोंक दे। विवाह के बाद स्त्री पराधीन हो जाती है। ऐसी कोई बंदिश पुरुष के लिये नहीं है।

ऐसी परिस्थितियों में पुरुष और स्त्री के बीच समानता की बात कोरी गप्प है। यद्यपि यह सच है, कि जनवाद और पूंजीवाद ने स्त्री को उस स्थिति से मुक्त किया 'जिसके अन्तर्गत उसे ऐसे पुरुष से विवाह करना पड़ता था जिसके लिये उसके हृदय में प्रेमभाव की मात्रा नाम को भी न होती थी, पर जिसे दूसरे लोग सामन्ती वसूलों के मुताबिक उसके लिये चुन देते थे। किन्तु बहुसंख्यक स्त्रियों के लिये, जो अपनी मर्जी का पति चाहती थीं, अनेकों अमली, सामाजिक और आर्थिक प्रतिबन्ध बने रहे। विवाह के अवसर पर उन्हें अपनी स्वाधीनता की काफी कुर्बानी करनी पड़ती। स्त्रियों का "उद्धार" करने वालों के प्रयत्न विफल रहे। क्योंकि जिन बेड़ियों में आज स्त्री जकड़ी हुई है वे आर्थिक बेड़ियां हैं; शारीरिक तत्व सम्बन्धी रुकावट इन बेड़ियों को और भी मजबूत बना देती है।

यह बहुत दिलचस्प बात है कि हिटलरी जर्मनी के नीति शास्त्री स्त्री की इस असमानता के गौरवगान गाते नहीं अघाये। हमारे यहाँ के प्रतिक्रियावादी भी इसी नारे की नकल टीपते हैं: "औरतों को चाहिये ही क्या?..........बच्चे, चूल्हा चक्की और भगवान की पूजा।"

हिटलर द्वारा इस सड़े गले सामन्ती आदर्श की पुनरावृत्ति के बहुत साल पहले ही सोवियत अधिकारी इसके खोखलेपन को दिखा चुके थे। वे दिखा चुके थे कि यह स्त्री को पुरुष के समान अधिकार देने से इन्कार करना है। उन्होंने कहा : आज की दुनिया में अनैतिकता की जड़ यही है।

-:o:-

अनूठा प्रश्न-पत्र

"रूसी जनता के जीवन के पुनर्निर्माण का कार्य लेनिन और उनके अनुयाइयों ने रूसी पुरुष से नहीं, रूसी स्त्री के जीवन से शुरू किया।"

सोवियत रूस के अपने अध्ययन सोवियत कम्युनिज्म—एक नई सभ्यता, में लार्ड और लेडी पैसफील्ड इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं। उन्हें पता चला कि सोवियत नेताओं ने कभी अपने आपको स्त्रियों का "उद्धारक" घोषित नहीं किया। उन्होंने अपने आप को स्त्रियों के इन्हीं हकों के संघर्ष तक सीमित नहीं रक्खा कि स्त्रियां ऊँची या नीची जैसी चाहें 'स्कर्ट' पहन सकती हैं, कि वे चाहें तो बाजार में सिगरेट भी पी सकती हैं, कि कानून की नजर में वे पुरुष के समान ही हैं। उन्होंने स्त्रियों के इन हकों की भर्त्सना की कि वे जिस पुरुष से चाहें सम्बन्ध स्थापित कर सकती हैं। उन्होंने पुरुषों के भी इन हकों की भर्त्सना की। यह जानना जरूरी है कि सोवियत रूस में स्त्रियों की स्वाधीनता के लिये जो कार्यक्रम बनाया गया वह केवल "स्त्रियों के हित का" नहीं, समूची मानव जाति के हित का था।

सोवियत वैज्ञानिकों ने यह मत पेश किया कि मानव जाति को सुधार सकना तब तक असम्भव है जब तक पुरुष और स्त्री के बीच असमानता मौजूद है। अनैतिकता और व्यभिचार पर आक्रमण करते हुये उन्होंने पुरुष और स्त्री के बीच भेद नहीं किया। सोवियत रूस से बाहर के बहुत कम लोग इस बात को जानते हैं कि लगभग २५ वर्ष पहले ही लेनिन ने घोषणा की थी कि स्त्री की असमानता को खत्म करना आज की दुनियां के सामने एक महत्वपूर्ण समस्या है। सचाई तो यह है कि सोवियत रूस के उन विशाल जन क्षेत्रों में जहाँ इस्लाम धर्म का बोल बाला था,

स्त्रियों की स्वाधीनता का प्रश्न दूसरे सभी राजनीतिक प्रश्नों से ज़्यादा महत्वपूर्ण माना गया।

नीचे हम संक्षेप में उन कानूनों का ब्योरा दे रहे हैं जो सोवियत सरकार ने इस सम्बन्ध में बनाये :

(१) औरतों को वोट देने और सरकारी संस्थाओं के लिये चुने जाने का हक़ मिला। तमाम सभ्य देशों में इस हक़ को माना तो जाता है, मगर अमल में उसका इस्तेमाल नहीं होता।

हमारे यहां की औरतें वोट तो दे सकती हैं, किन्तु कानून बनाने और उसे लागू करने का हक़ केवल पुरुषों को है।

(२) तमाम नागरिक अधिकार और कानूनी प्रतिबन्ध पुरुष और स्त्री पर समान रूप से लागू हों। इतिहास में पहली बार अदालतों के सामने पुरुष और स्त्री को समान अधिकार और समान जिम्मेदारी मिली।

(३) उस पुरुष के लिये, भले ही वह पिता क्यों न हो, जो किसी स्त्री का उसकी मर्जी के खिलाफ विवाह करता है, कड़ी से कड़ी सज़ा की व्यवस्था की गई। यह कानून कोई नया क्रान्तिकारी कानून नहीं था। क्रान्तिकारी बात सिर्फ इतनी थी कि इसे सख्ती से लागू किया गया। हमारे देशों में ऐसे क़ानूनों को बहुधा तभी अमल में लाया जाता है जब स्त्री के साथ जोर-जबर्दस्ती की जाती है।

(४) बीसियों ऐसे नियम और कानून बने जिनसे स्त्रियों को आर्थिक स्वाधीनता को गारंटी हुई।

हमारे देशों में हालत यह है कि औरत के नौकरी करने के हक़ को—भले ही वह विवाहित हो या अविवाहित—कानूनी मान्यता नहीं दी गई; औरतें चाहें तो नौकरी करें चाहे न करें। सोवियत रूस में इसकी कानूनी गारंटी की गई है। ऊपर से देखने में यह बेजरूरत भेद मालूम होता है। कम से कम युद्ध काल में तो हमने देखा कि औरतों के लिये नौकरियों का

बाजार खुल गया था। किन्तु यह परिस्थिति उत्पन्न हुई पुरुषों की कमी के कारण। अब यह आन्दोलन जोर पकड़ रहा है कि औरतें नौकरियाँ छोड़कर घर का काम धन्धा सम्भालें। भय है कि युद्ध समाप्त होने के बाद पुरुषों और स्त्रियों के लिये काफी नौकरियाँ न मिल सकेंगी। यहाँ भी यही भावना काम कर रही है कि बेकारी बढ़ने पर स्त्रियों के बजाय पुरुषों को काम मिलना चाहिये। हमारे मजदूर संगठन भी इस संघर्ष में असफल रहे हैं कि स्त्रियों को "समान काम के लिये समान वेतन" मिले। इस मांग को भी कहीं कहीं ही और वह भी बड़ी मुश्किल से माना गया है कि औद्योगिक केन्द्रों में काम करने वाली स्त्रियों को अपने बच्चे दिन भर शिशुशाला में छोड़ने की सुविधा मिले।

नई पीढ़ी की रूसी महिलाओं में काम-धन्धे की तरफ एक नया नज़-रिया है। काम-धन्धे के लिये पुरुष और स्त्रियों के लिये समान सुविधायें प्रस्तुत करते समय सोवियत अधिकारियों का ध्यान जिन बातों पर था उनमें से मुख्य आर्थिक उन्नति नहीं, नैतिक उन्नति थी। वहाँ के वैज्ञानिक और विशेषज्ञ भली भांति जानते थे कि औरतों के 'उद्धार' की तमाम बातें तब तक थोथी गप्पें ही रहेंगी जब तक औरत को औरत होने के आर्थिक दण्ड से मुक्त नहीं किया जाता। पर वे यह भी जानते थे कि औरतों की आर्थिक स्थिति को कोई कानून बनाकर चटपट नहीं बदला जा सकता। इस दरम्यान में अनैतिकता की तमाम समस्यायें ज्यों की त्यों कायम रहीं।

क्रान्ति के चार साल बाद, सन् १९२१ में, रूसी अधिकारियों को मालूम हुआ कि व्यभिचार में निश्चित वृद्धि हुई है। इसका कारण देश का आन्तरिक संकट था जो विदेशी आक्रमणकारियों के खिलाफ लम्बी लड़ाई के फलस्वरूप पैदा हो गया था। इसके अलावा, आर्थिक निर्माण की योजनायें अभी तक शुरू नहीं हुई थीं। बेरोजगारी बुरी तरह फैल रही थी। बेकारों में दो-तिहाई संख्या औरतों की थी। युद्ध से ध्वस्त देश में इन औरतों की स्थिति बड़ी ही दयनीय हो गई थी। दो साल तक

अनैतिकता में लगातार वृद्धि होती रही।

सोवियत वैज्ञानिकों ने दुराचार के खिलाफ आम हमला बोला सन् १९२३ में।

उनके पहले ही हमले ने बड़ी सनसनी पैदा कर दी। इससे पहले कभी कोई ऐसी चीज नहीं हुई थी। एक प्रश्न-पत्र को छपवाया गया। इस प्रश्न-पत्र को बड़े गुप्त रूप से हजारों औरतों और लड़कियों के बीच घुमाया गया। यह प्रश्न-पत्र डाक्टरों, मस्तिष्क वैज्ञानिकों, मजदूर संगठनों के नेताओं तथा दूसरे विशेषज्ञों ने तैयार किया था।

यहाँ प्रश्नों की सूची पेश करना सम्भव नहीं। प्रश्नों के पीछे एक महान् उद्देश्य था। वह यह पता लगाना था कि किन परिस्थियों में स्त्री अपना शरीर बेचने के लिये तैयार हो जाती है।

इस बात का पता लगाने का कि महिलायें क्योंकर अनैतिक हो जाती हैं एक व्यापक पैमाने पर यह पहला प्रयत्न था। सदियों से यह जटिल प्रश्न पूछा जा रहा था। ऐसे साहित्य की कमी नहीं जो सुप्रसिद्ध वैश्याओं के "दर्द भरे बयानों" से भरा पूरा हो। पर आमतौर से ऐसा साहित्य बनावटी और झूठा होता है। चिकित्सकों और मस्तिष्क वैज्ञानिकों ने निरन्तर इस बात का पता लगाने का प्रयत्न किया है कि पाप का प्रारम्भ कैसे होता है। सोवियत रूस में इस प्रश्न का उत्तर दिया गया,—कुछ गिने-चुने बदचलन पुरुष-स्त्रियों से इक्के-दुक्के सवाल पूछकर या उनका मस्तिष्क विश्लेषण करके नहीं, बल्कि समाज के हर स्तर की हर उम्र की और भिन्न भिन्न स्वभाव वाली अनगिनत महिलाओं से प्रश्न पूछकर। सभी उत्तर लिखित थे। उत्तर बड़े गुप्त रूप से दिये गये थे।

इस अनूठे प्रश्न-पत्र ने कई पुरानी धारणाओं की चिन्दी-चिन्दी कर दी, सबसे ज्यादा ताज्जुब पड़ताल करनेवालों को जिस बात से हुआ कि ये उत्तर बिल्कुल स्पष्ट होते थे और यह इसलिये सम्भव हुआ क्योंकि उत्तर

देने वाले को पूरा विश्वास दिला दिया जाता कि उसके उत्तर गुप्त ही रहेंगे।

औसत आदमी को सबसे ज्यादा चौंका देने वाली बात यह थी कि आमतौर से पेशेवर अनैतिक महिलाओं की संख्या और दूसरी तमाम महिलाओं की संख्या में कोई खास अन्तर नहीं था। विवाहित और अविवाहित, दोनों ही तरह की, बेशुमार महिलाओं ने बताया कि किन्हीं खास परिस्थितियों में सभी ने एक न एक मौके पर प्रेम-भावना से परे, दूसरे स्वार्थों के कारण अनुचित इन्द्रिय-भोग किया था।

कुछ ने अनैतिकता सम्बन्धी एक ही तजुर्बे का उल्लेख किया। कुछ ने बहुतों का। कुछ ने अपने उत्तरों में बताया कि उन्होंने कई बार व्यभिचार ही अपनी रोटी का जरिया बनाया था। पर उन पर "वैश्या" का दाग न लगने पाया था। अपनी दूसरी बहिनों के अनुभवों से परिचित कुछ महिलाओं का कहना था कि जब ये अपने को पेशेवर वैश्या नहीं कहती तो हम अपने को क्यों कहें। जिन महिलाओं ने माना कि व्यभिचार को ही उन्होंने अपने जीवन का आधार बनाया है उनमें से ज्यादा से ज्यादा ने यही कहा कि ईमानदारी से कमाया पैसा उनके और उन पर निर्भर लोगों के लिये बहुत कम था। इसीलिये उन्हें व्यभिचार को अपना सम्बल बनाना पड़ा।

इस सम्बन्ध में अधिक विवेचना हम आगे प्रस्तुत करेंगे। सोवियत विशेषज्ञों ने जो निस्कर्ष निकाले वे हमारे देश में प्रचलित वैज्ञानिक और नैतिक विचारों से भिन्न हैं। इसलिये यहाँ रुक कर देख लेना जरुरी है कि अब तक इस क्षेत्र में क्या किया गया था।

प्रश्न है : वैश्या कहते किसे हैं?

यह शब्द बहुधा उन महिलाओं तक सीमित रहा है जो नकद रकम के लिये अपने शरीर को भिन्न-भिन्न पुरुषों को बार बार बेचती हैं।

किन्तु जब से नई सामाजिक जांच-पड़ताल शुरू हुई है तब से यह परिभाषा अपर्याप्त समझी जाने लगी है। हमारे विशेषज्ञों का तो यह मत है कि इन्द्रिय-रोगों को जो महिलायें फैलाती हैं उनमें से दो-तिहाई ऐसी हैं जिन्हें हम खुल्लम खुल्ला वेश्या नहीं कह सकते। इन गैरपेशा अनैतिक महिलाओं के अनेक-वर्गों में से ही हमारी "विक्ट्री गर्ल" भी है। दूसरे छोर पर वे मनोवैज्ञानिक हैं जिन्होंने अनैतिकता की परिभाषा यह पेश करने की कोशिश की है कि प्रेम में बन्धे दो प्रेमियों के इन्द्रिय-सम्बन्ध के अलावा बाकी सभी इन्द्रिय-सम्बन्ध अनैतिक हैं। यहाँ भी तथ्य हम को घपले में डाल देते हैं। इस महाद्वीप पर और सोवियत रूस में हुई जांच-पड़तालें बताती हैं कि ऐसी महिलाओं की संख्या कम नहीं जो किसी भी अजनबी से "प्रेम" करने को तैयार हो जाती हैं बशर्तें उन्हें वह अपने साथ शाम के खेल-तमाशों में ले जाने को तैयार हो। हमारे लिये इन दो महिलाओं में नैतिक भेद करना कठिन हो जाता है। एक, वह जो अपने कमरे का किराया न दे सकने के कारण व्यभिचार के बाद नक़द दौलत ले लेती है; और दूसरी, वह जो नकद रकम लेने के बजाय बदले में होटल में कीमती भोजन करना और सिनेमा देखना ज्यादा ठीक समझती है। भेद यदि है भी तो सम्भवतः ईमानदारी का। प्रेम तो न पहली को होता है, न दूसरी को। हाँ, पहली की गरीबी उसे ईमानदारी से नकद रकम लेने को मजबूर कर देती है।

धर्म का कहना यह है कि विवाहित पति के अलावा और किसी के साथ इन्द्रिय-भोग अनैतिक है,—भले ही वह धन के लिये हो या प्रेम के लिये। यहां यह जान लेना जरूरी है कि नैतिकता के प्रति यह दृष्टिकोण सोवियत रूस में बरसों माना गया है। इसमें कोई शक नहीं कि नैतिकता सम्बन्धी सैद्धान्तिक विचारों में कम्युनिस्ट नेताओं और पादरियों के बीच जमीन आसमान का अन्तर है। पर सिद्धान्तों की कसौटी तो उनका अमल है।

युद्ध के दौरान में जो लोग सोवियत रूस गये थे उन्होंने बताया है कि शायद ही कोई ऐसी सोवियत महिला किसी को मिले जो अपने पति को छोड़ दूसरे से घनिष्टता करें। कितने ही सालों तक सोवियत नवयुवक तो औरतों की पीठ तक थपथपाना असभ्यतापूर्ण मानते रहे। हाँ युद्ध के दौरान में जहाँ-जहाँ जर्मन अक्रान्ताओं ने कब्जा किया उन्होंने अपने कुत्सित नैतिक "आदर्शों" की भी छाप छोड़ी। पर इन "आदर्शों" का रंग बहुत थोड़े सोवियत नागरिकों पर चढ़ पाया। यह बात मैं व्यक्तिगत निरीक्षण के बल पर दावे से कह रहा हूं। मैंने कई सोवियत प्रदेशों का दौरा किया और वहाँ रहा भी। मैं ऐसे प्रदेशों में भी रहा जहाँ दुश्मन पैठने नहीं पाया था और ऐसों में भी जिन्हें फासिस्त आततायियों ने रौंद डाला था। किन्तु आज, दोनों जगहों की आबादी में कोई खास फर्क देखने में नहीं आता सोवियत नैतिकता का स्तर कितना ऊँचा है, यह जान कर आश्चर्य होता है—हम इसका विस्तार से वर्णन आगे करेंगे। सोवियत नैतिकता के मुकाबले "पच्छिमी दुनिया" की हालत को देख कर दुख होता है।

इस अन्तर को हम और विस्तार में समझलें।

इस से इन्कार नहीं किया जा सकता कि अधिकांश धर्मपरायण लोग विवाह को एक सामाजिक और पवित्र बन्धन मानते हैं। वे विवाह को एक ऐसा बन्धन मानते हैं जो अटूट होता है और जिसमें पति-पत्नी की घनिष्टता आवश्यक होती है,—भले ही वे एक दूसरे से प्रेम करते रहें या नहीं। दरअसल आज के अधिकांश कानून तो यही कहते हैं कि प्रेम खत्म हो जाने पर भी पति-पत्नी विवाह बन्धन के आधीन ही रहें। हर कुलीन महिला कम से कम आधा दर्जन सहेलियों के नाम गिना सकती है जो विवाह बन्धन में अब भी सिर्फ इसलिये बंधी हुई हैं कि उनके सामने छुटकारे का कोई रास्ता नहीं, क्योंकि वे और उनके बच्चे पति पर आर्थिक रूप से निर्भर हैं। क्या नैतिक आधार है ऐसे संबंधों का?

वर्तमान मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि एक सम्मानपूर्ण पत्नी पर इसका उतना ही बुरा असर पड़ता है, जितना खुल्लम खुल्ला व्यभिचार का। सोवियत जनता ऐसे विवाह को अनैतिक और घृणास्पद समझती है।

बिना ज्यादा रद्दोबदल किये हम अपने विचारों में सन्तुलन स्थापित करने का प्रयत्न करें। विवाह के प्रश्न को उच्च नैतिक दृष्टिकोण से देखने पर सम्भवतः ऐसे सभी इन्द्रिय-सम्बन्ध हमें अनुचित लगेंगे जो प्रेम पर आधारित नहीं हैं; हम उन सभी सम्बन्धों को भी अनुचित समझेंगे जिनमें खुले या छिपे तौर पर पैसे का लेन-देन होता है। अब हम अनैतिकता के खिलाफ असली, सामाजिक संघर्ष को ज्यादा अच्छी तरह समझ सकेंगे।

अनैतिकता के खिलाफ ऐसा कोई संघर्ष तब तक नहीं छिड़ा था जब तक पूँजीवादी व्यवस्था ने सामन्ती व्यवस्था का ध्वंस नहीं कर दिया। व्यभिचार के खिलाफ़ संगठित संघर्ष केवल दुराचार को दूर करने के लिये नहीं बल्कि इन्द्रिय-रोगों को खत्म करने की आवश्यकता थी। योरप में सिफलिस का रोग सोलहवीं सदी में शुरू हुआ। शायद यह हैती से आया था। पन्द्रहवीं सदी में अमेरिगो वेसपुच्ची की जीवनी में "उस बीमारी का जिसे हम फ्रांसीसी बीमारी कहते हैं" जिक्र मिलता है। उस का कहना है कि कोलम्बस के साथ वापिस लौटने वाले लोग इस रोग को अमरीका से अपने साथ लाये थे। वैश्याओं ने इसे इन लोगों से पाया। फिर यह स्पेन भर में फैल गया। यहाँ से चार्ल्स अष्टम की सेनाएँ इसे इटली लायीं।

दूसरे अधिकारियों का कहना है कि १४६५ में चार्ल्स ने जब नेपल्स जीता तो अस्सी दिन और अस्सी रात वहाँ उच्छृंखलता का राज्य रहा। वहीं से यह बीमारी फैली। यह भी कहा जाता है कि शत्रु सेनाओं में इस बीमारी को फैलाने के लिये जान बूझ कर सिफलिस रोग वाली वैश्याओं को भेजा गया था।

सच्चाई जो भी हो, नयी शताब्दी शुरू होते-होते इन्द्रिय-रोगों का खतरा इतना बढ़ा कि राज्य के अधिकारियों और धर्म के ठेकेदारों के कान खड़े होने लगे। जिस किसी को भी, यह बीमारी हुई उसे अपराधी घोषित किया जाने लगा। बादशाह मैक्सिमिलियन ने एक राज घोषणा जारी की। घोषणा में इस रोग को 'बोइस ब्लैटर्न' कहा गया अर्थात् ऐसा रोग "जिसको पहले न तो किसी ने देखा था और न जिसके बारे में कभी सुना था।" इस भयानक रोग को सेनाओं ने फ्रांस और जर्मनी में फैला दिया। इस रोग से पीड़ितों की बड़ी बुरी दशा की जाती थी। औरतों को तरह तरह की यातनायें दी जातीं उनका प्राणान्त तक कर दिया जाता था। इस बीमारी से पीड़ित पुरुषों और स्त्रियों को कोढ़ियों की तरह घर से निकाल दिया जाता। यही, नहीं समाज से ठुकराये गये लोगों की तरह उन्हें नगर और कस्बों से दूर जाकर रहना पड़ता। कुछ ही वर्षों में यह बीमारी समूचे योरप और ब्रिटिश द्वीप समूह में फैल गई।

बाद के सौ सालों का इतिहास इन्द्रिय-रोगों के खिलाफ़ फौजी अधिकारियों के संघर्ष का इतिहास है। फौज के साथ चलनेवाली महिलाओं पर नये प्रतिबन्ध लगाये गये। सन् १५१५ में फ्रांसिस प्रथम ने हुक्म जारी किया कि फौज के साथ चलने वाली औरतों को पैदल चलना पड़ेगा। उसने कहा, उन्हें अच्छे घोड़े देकर साथ चलने का बढ़ावा न दिया जाय। सन् १५८० में बेल्जियम के धर्मधुरीण बादशाह अल्बर्ट की समझ में इस समस्या का चिकित्सा सम्बन्धी लक्षण पूरी तरह आ गया। उसने कड़ी ताकीद कर दी कि इन्द्रिय रोगों से पीड़ित कोई भी महिला उसकी फौज में न "घुसने" पावे। कहने की जरुरत नहीं, इन रोगों की जाँच-पड़ताल सफल नहीं होती थी। बीमारी का ठीक-ठीक पता भी नहीं चलता था। शायद सबसे ज्यादा रोगी लोग साफ बच भी निकलते थे। हुक्मों की पाबन्दी, तोड़ने पर सजा दिन पर दिन कड़ी होती गई।

कानून उन्हें अपराधी ठहरता था। नैतिक रूप से वे घृणा के पात्र और पापी समझे जाते थे। किन्तु व्यवहार इस सैद्धान्तिक दृष्टिकोण के सदा आड़े आता। आदर के पात्र बड़े-बड़े नवाबों और सामन्तों तथा उनकी बीबियों में भी सिफलिस रोग पाया जाता था। भयानक दंडों से अपने आप को बचा नहीं पाते थे वे अभागे जिनके पास धन या पद की कमी होती। सैकड़ों बर्षों तक पुलिस का काम यही रहा कि समय-समय पर सिफलिस की गन्दगी की सफ़ाई करती रहे। सिफलिस से पीड़ित वेश्याओं की नाक और कभी कभी तो कान भी जल्लाद काट डालते थे। कभी-कभी उन्हें शराबी सैनिकों के बीच छोड़ दिया जाता और वे इन्हें पीट-पीट कर मार डालते।

अनैतिकता को रोकने के लिये बनाये गये प्रारम्भिक कानूनों में सब से ज्यादा दिलचस्प सम्राट लुई का मार्च १७६६ का कानून है। इस कानून के मुताबिक वेश्याओं को गिरफ्तार करके तीन महीने तक सिर्फ रोटी-पानी पर रखा जाता। बाद में "उस समय तक के लिये जब तक वे सुधर न जाँय" उन्हें जेल में डाल दिया जाता। इस मानवतावादी कानून में आगे चलकर और भी मानवता-वादी सुधार हुआ : जेल में ही वेश्याओं की चिकित्सा का प्रबन्ध किया गया। चिकित्सा का खर्चा फौज के फन्ड में से आता। सिफलिस का तब तक चूंकि कोई कारगर इलाज नहीं था इसलिये यह सोच सकना कठिन है कि इस प्रबन्ध से वेश्याओं को क्या लाभ होता होगा। फिर भी, अगर वे दुबारा गिरफ्तार की जाती तो उन्हें और लम्बी सजा मिलती। एक बात जरूर है। लुई ने सख्त मनादी कर दी थी कि उन्हें शारीरिक यातना न दी जाय, न ही उनकी खिल्ली उड़ाई जाय। उस जमाने के कुछ सिरफिरे लोगों का कहना था कि इस दया का एक खास कारण था। वह यह कि बादशाह लुई के दरबार में काफी वेश्यायें परकी हुई थीं और उन्होंने बड़े ऊँचे-ऊँचे घरानों के लोगों पर अपना जादू डाल रखा था।

इन्द्रिय-रोगों के खिलाफ संघर्ष में प्रगति का परिचय हमें फ्रांसीसी क्रान्तिकाल के गणितज्ञ कारनौट की रिपोर्ट में मिलता है। १७६३ में कारनौट ने देखा कि लुई के खेमे में लगभग तीन हजार औरतें हैं। उसने सिफिलिस के आतंक को देखा। उसने कहा, दुश्मन के हथियार जितने लोगों का नुकसान करते हैं उनसे दस गुना ज्यादा नुकसान सिफलिस से होता है। चिकित्सकों की सलाह का तिरस्कार किया गया। नैपोलियन के राज्यकाल में शारीरिक यातना के दिन कुछ-कुछ फिर लौट आये। इन्द्रिय-रोगों से पीड़ित औरतों के खिलाफ़ नैपोलियन ने कई हुक्मनामे जारी किये। इन हुक्मनामों में कहा गया कि इन औरतों के बाल काट लिये जायें, उनके मुँह पर कालौंछ पोती जाय और खुलेआम उनकी बेइज्जती की जाय। चिकित्सा सम्बन्धी प्रगति फिर भी कुछ-कुछ जारी रही। कई जगहों पर तो स्थानीय अधिकारियों को इस रोग से पीड़ितों के लिये चिकित्सा-केन्द्र खोलने पड़े।

१८११ में जर्मन सेना के सबसे बड़े केन्द्र रोस्टौक में चिकित्सकों का एक दल नियत किया। यह उन पहले दलों में से एक था जो किसी निश्चित क्षेत्र की तमाम औरतों की जाँच पड़ताल के लिये नियुक्त किये गये थे। विशेष महत्व की बात यह है कि इस दल को चिकित्सा सम्बन्धी तमाम खर्चा बीमार औरतों के माता पिता या व्यभिचार के लिये कमरे उठाने वाले लोगों से वसूल करने का अधिकार था।

कुछ ही दिनों बाद इस सामाजिक बीमारी को रोकने के लिये राज्य की ओर से प्रबन्ध किये जाने लगे। सन् १८३५ में प्रशा की पुलिस को हुक्म मिला कि जिन-जिन लोगों पर सिफलिस का शक हो उन्हें अपनी निगरानी में रखा जाय। जब यह प्रयत्न भी असफल रहा, तो प्रशा के मंत्रि-मंडल ने और कड़ा कानून पास किया। कानून यह पास हुआ कि बर्लिन के तमाम वैश्या गृह १८ महीने के भीतर-भीतर बन्द कर दिये जांयें। बहुत से वैश्यागृह बन्द कर भी दिये गये। किन्तु परिणाम जो

हुआ वह जरा भी हिम्मत बढ़ाने वाला न था : उस क्षेत्र के सैनिकों में सिफलिस-रोगियों की संख्या और भी बढ़ गई। सेनापति रैंगल ने १८४८ में अपील की कि बन्द वेश्या-गृह फिर खोल दिये जायँ।

तब से जर्मनी तथा योरप के दूसरे देशों में कभी कानूनों की एकदम बढ़ती और कभी एकदम घटती होती रही। कभी तो पुलिस इस गन्दगी की सफाई पर कमर कस कर वेश्या-गृहों को बन्द करने पर जुट पड़ती और कभी पुलिस द्वारा नियुक्त गिने-चुने डाक्टरों की निगरानी में इन्हें फिर जल्दी-जल्दी खोलने की जरूरत आ पड़ती।

ब्रिटेन का अनुभव खास दिलचस्प है। इंगलैंड का नम्बर उन सभ्य देशों मे सबसे आखरी था जिन्होंने सिफलिस के खिलाफ जोरदार संघर्ष चलाने की जरुरत महसूस की। इसका कारण केवल अंग्रेजों का अनुदारपना नहीं था। खास कारण यह था कि ब्रिटेन के चिकित्सकों ने योरप में किये गये प्रयोगों का बड़ी तत्परता से अध्ययन किया था और वे इस नतीजे पर पहुंचे थे कि ये प्रयोग कारगर नहीं होंगे। फिर भी, जून १८६६ में "कुछ नौ-सेना और फौजी केन्द्रों में छुआछूत की बीमारियों को कुशलता से रोकने का कानून" पास हुआ। इसे आमतौर से छुआछूत की बीमारियों को रोकने का कानून कहते थे। कानून ने पुलिस को अधिकार दिया कि वह औरतों की जरुरी डाक्टरी जाँच करवाये और ठीक समझे तो उन्हें अस्पताल में भरती करवा दे। इस कानून से कुछ ही दिनों में सिफलिस रोग नाविकों और फौजियों में बहुत कम हो गया। पर न जाने क्यों ब्रिटिश पार्लामेन्ट ने आठ साल बाद इस कानून को रद्द कर दिया।

पहले महायुद्ध के कुछ ही दिनों पहले सुप्रसिद्ध अंग्रेज डाक्टर सर विलियम औसलर ने ब्रिटेन के कुछ जाने-माने डाक्टरों के दस्तखतों से टाइम्स अखबार में एक खत छपवाया। इस खत में इन्द्रिय-रोगों की बढ़ती के प्रति चेतावनी दी गई थी। इसे पढ़कर ब्रिटिश जनता चौंक

पड़ी। अंग्रेजी भाषा में छपनेवाला यह पहला वक्तव्य था जिसमें सिफलिस रोग का साफ-साफ नाम लिया गया था। चेतावनी के फलस्वरूप ही ऐस्क्विथ-सरकार ने इन्द्रिय-रोगों सम्बन्धी "सिडेनहम रायल कमीशन" की स्थापना की थी।

इस कमीशन ने युद्ध के दौरान में अपनी रिपोर्ट पेश की। उसने औसलर की बातों की पुष्टि की। ब्रिटेन की दस प्रतिशत शहरी जनता सिफलिस रोग से पीड़ित थी। गिनोरिया से पीड़ितों की संख्या और भी ज्यादा थी। ब्रिटेन के लगभग ६३,००० निवासियों की हर साल सिफलिस से मौत होती थी। क्षय से मरने वालों के मुकाबले सिफलिस से मरने वालों की संख्या कहीं ज्यादा थी। आज भी हालत करीब-करीब वैसी ही है।

इन्द्रिय-रोगों के विरुद्ध वैज्ञानिक संघर्ष के क्रमशः विकास का अध्ययन करने वाला व्यक्ति इस बात पर अचम्भा किये बिना नहीं रह सकता कि कुछ ही दिनों पहले तक इन्द्रिय-रोगों के बारे में आम जनता कतई कुछ नहीं जानती थी। इन्द्रिय-रोगों के खिलाफ वैज्ञानिक उपायों को अपनाने में समाज ने क्यों इतनी देरी की? आज के विशेषज्ञ इसका सारा दोष सामाजिक-ढकोसले, धर्म या थोथी बड़प्पन-भावना पर मढ़ते हैं। सचाई यह है कि इन्द्रिय-भोग सम्बन्धी तमाम बातें लोगों को चिकित्सा के वैज्ञानिक विकास के बहुत दिनों बाद तक नहीं मालूम थीं। इस बात में विश्वास जरा कम होता है कि मानव-जाति को यह मालूम हुए बहुत थोड़े दिन हुये हैं कि मानव-जन्म इन्द्रिय-भोग से होता है; पर यह बात बिल्कुल सच्ची है।

यूनानी-सभ्यता के विकास से पहले स्त्री के गर्भ धारण करने का श्रेय भगवान की माया को दिया जाता था। किन्तु यूनानी दर्शनशास्त्रियों—जिनकी बुद्धि और क्षमता को बाद के इतिहासकारों ने बहुत बढ़ा-चढ़ा कर आंका है-की पहुँच सिर्फ यहीं तक हुई थी कि स्त्री के

गर्भ धारण करने का श्रेय भगवान की माया को न होकर स्त्री को है। हिपोक्रेटीज ने अपनी सुप्रसिद्ध रचना "मनुष्य की प्रकृति" (जो ईसा से लगभग ४०० बरस पहले लिखी गई थी) में कल्पना की थी कि पुरुष और स्त्री में "बीज" मौजूद रहते हैं,——हांलाकि गर्भ धारण करने और स्त्री के रजस्वला होने की बातों में वह अस्पष्ट रहा। अरस्तू ने मनुष्यों और पशुओं की क्रिया की तुलना की। किन्तु मध्ययुग में ऐसी बातें कहना अधर्मपूर्ण ठहराया जाता था। उस काल में मनुष्य को अन्य सभी जीवों से श्रेष्ठ माना जाता था।

पश्चिमी विज्ञान के विकास के बहुत पहले ही चीनियों ने इस दिशा में बहुत प्रगति की। उन्होंने पुरुष और नारी के "तत्वों" पर काफी सोच-विचारी की। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि अपने आप न तो पुरुष न स्त्री, शिशु को जन्म दे सकते हैं। उनके पास ऐसे शब्द भी थे जिनसे हम "गर्भाशय" और "वीर्य" का अर्थ निकाल सकते हैं। वे जानते थे कि स्त्री का रजस्वला होना और स्त्री का गर्भवती होना दो अलग-अलग चीजें हैं।

मध्ययुग के पूरे दौर में जीवन के इस आधार तत्व से मनुष्य एकदम अनभिज्ञ रहे। इन्द्रियों के बारे में सहज सत्य जानने और खोजने का स्थान अन्धविश्वास, टोना मंतर और झाड़फूंक ने ले लिया था। हम याद रखें कि उस काल में कल्पना नहीं की जा सकती कि शिशु का जन्म शारीरिक क्रिया शारीरिक विज्ञान से सम्बन्धित है।

सोलहवीं शताब्दी में लीवेनहुक ने माइक्रोस्कोप का निर्माण किया। किन्तु एक सौ बरस के बाद ही वह समान जुटाया जा सका जिससे छोटी चीजें बड़ी दिखाई पड़ती हैं। तभी लीवेनहुक के चेले हैम ने शुक्रकीटों का पता लगाया। इसी बीच लीवेनहुक के एक दूसरे चेले ग्राफ को रजांडों का पता चला। गर्भ-धारण के सिलसिले में अब एक सही सिद्धांत का निरूपण सम्भव हो सका फिर भी, शुक्रकीटों के गतिवान होने का पता

सौ साल बाद ही चला इसका पता लगाने वाला था स्पालन्जनी। पिछली शताब्दी में ही हर्टविग ने वह ऐतिहासिक प्रयोग किया था जिसमें रजांडों में शुक्रकीटों का प्रवेश देखा गया। प्रागैतिहासिक काल से १८७५ तक गर्भ-धारण के ज्ञान के बारे में मानव-जाति पूरे अन्धकार में थी।

इस बात को जोर देकर बताने की जरूरत है कि १८७५ से ही हमें यह मालूम हुआ कि किस तरह मनुष्य तथा दूसरे जीवों का जन्म होता है। इन्द्रियों के बारे में ज्ञान प्राप्त करने में मानव-जाति को कितने टेढ़े-मेढ़े रास्ते से होकर गुजरना पड़ा है अब यह हम अच्छी तरह समझ सकते हैं। इन्द्रिय-रोगों से हम सफलतापूर्वक नहीं लड़ सके, तो इसका कारण यह था कि इन्द्रियों के बारे में हमारा ज्ञान ही अपूर्ण था हम विचित्र अन्धविश्वासों और कपोल-कल्पनाओं के शिकार बने हुये थे।

संक्षेप में इन्द्रिय-रोगों के खिलाफ संघर्ष लगभग तीन सौ साल पहले शुरू हुआ। शुरू में यह संघर्ष वैज्ञानिक आधार पर नहीं चलाया गया था। ज्यों-ज्यों सिफलिस के भयानक दुष्परिणामों का पता चलने लगा त्यों-त्यों उसके निवारण के उपाय खोजे जाने लगे। थोड़े दिनों बाद ही पता चल गया कि इसे ज्यादा से ज्यादा लोगों में फैलाने का दारोमदार वैश्याओं पर है। व्यभिचार के बाजार की बदनामी बड़ी तेजी से बढ़ी,—हालांकि कई हजार बरस तक वैश्या-गृह समाज के लिये आवश्यक माने जाते थे। व्यभिचार पर पहले—पहल हमला बोला चिकित्सा ने; फिर धर्म ने और फिर कानून ने।

किन्तु दो सौ साल तक अनैतिकता के खिलाफ संघर्ष बहुत ही ढीला ढाला और असफल रहा।

फिर आया "सरकारी निगरानी" का युग। 'वर्जित मोहल्लों की' स्थापना हुई और किसी हद तक वहाँ डाक्टरी कन्ट्रोल लागू किय गया। इसी समय सौदागरी की बढ़ती हुई और व्यभिचार पर इसका

भारी असर पड़ा औरतों की भी सौदेबाजी शुरू हो गई। बड़े नियमित ढंग से व्यभिचार के लिये औरतें तैयार की जाने लगीं। व्यभिचार के ठेके चलानेवाले मनमाना मुनाफा कमाने लगे। इस व्यापार की रोक-थाम की कोशिश कानून ने की। पर इससे मुनाफा इतना होने लगा था कि कानून को उसके सामने सिर झुका देना पड़ा।

अस्तु, व्यभिचार के "खात्मे का आन्दोलन" शुरू हुआ। नये-नये कानून पास हुये। अधिकांश देशों में इस काम के लिये पुलिस के खास दस्ते नियुक्त किये गये। चिकित्सकों ने इन्द्रिय-रोगों के खिलाफ दुगने जोर से प्रचार शुरू किया। गिरजाघरों में व्यभिचार के खिलाफ धुआँधार भाषण किये जाने लगे। उद्देश्य व्यभिचार का खात्मा करना था। किन्तु अज्ञान और मूर्खता ने इस आन्दोलन को असफल बना दिया। १९३८ तक पत्र-पत्रिकाओं और अखबारों में सिफलिस और गिनोरिया का जिक्र करना तक असभ्यतापूर्ण माना जाता था।

पहले महायुद्ध के बाद यह आन्दोलन अपनी ही कमजोरी की बदौलत ठंडा पड़ गया। व्यभिचार और इन्द्रिय-रोगों की अब हर देश में दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती होने लगी। अस्तु, इस बात का दृढ़ प्रयत्न शुरू हुआ कि इनके खिलाफ संघर्ष को विज्ञान पर आधारित किया जाय। डाक्टरी अखबारों और सामाजिक पत्र-पत्रिकाओं में इन रोगों से पीड़ितों की सैकड़ों रिपोर्ट निकलने लगीं। पर जड़वादी अधकचरे विज्ञान के कूड़ा-करकट के नीचे अनैतिकता की व्यापक समस्या तथा प्रेम, विवाह और परिवार सम्बन्धी सभी प्रश्न दब गये। व्यभिचार-विरोधी सभी कामों पर चेतना-विश्लेषण का रंग चला। पाप को उचित ठहराने वाले नये सिद्धान्तों की रचना भी की जाने लगी। किसी-किसी सिद्धान्त को तो डाक्टरी-समर्थन भी प्राप्त हो गया। फिर भी, इस प्रश्न का कोई उत्तर न मिल सका कि महिलायें अनैतिक क्यों कर हो जाती हैं।

दूसरे देशों में व्यभिचार के बारे में भोंडी से भोंडी बातें बड़ी गम्भीरता से कही गई हैं। नीचे हम चन्द मिसालें पेश करते हैं। इन्हें आपने सुना भी होगा।

१ वेश्यायें बड़े नीच चरित्र वाली औरतें होती हैं, इसलिये हम तब तक कोई कामयाबी नहीं हासिल कर सकते जब तक वैज्ञानिक ढंग से हम स्वस्थ पुरुष और स्वस्थ नारी को जन्म नहीं देते ; या जब तक धार्मिक पुनरुत्थान मानव-जाति का उद्धार नहीं करता।

२ मनुष्य का स्वाभाव ही होता है कि इन्द्रिय-तृप्ति के लिये वह एक से ज्यादा स्त्रियों की माँग करे। इसलिये व्यभिचार का अन्त कर सकना असम्भव है।

३ व्यभिचार के फैलाने की जिम्मेदारी मनुष्यों पर ही है इसलिये व्यभिचार का अन्त तभी हो सकता है जब मनुष्य कसम खा लें कि कभी व्यभिचार का समर्थन नहीं करेंगे।

४ बहुत सी बदचलन औरतें पहले बड़ी सच्चरित्र लड़कियाँ थीं। बुरे सामाजिक प्रभावों ने उन्हें बिगाड़ दिया। अस्तु, व्यभिचार की दवा हमारे घरों और मंदिरों में मौजूद है।

५ व्यभिचार अनन्तकाल तक कायम रहेगा क्योंकि औरतें अनन्तकाल तक कायम रहेंगी, और औरतें जिन्दगी की मौज की लहरों में हमेशा तैरती रहना चाहती हैं।

६ करीब-करीब सभी व्यभिचारी औरतें मिलों—फैक्टरियों में काम करने वाली होती हैं। इसलिये व्यभिचार के खात्मे का एक मात्र उपाय यही है कि मिलों-फैक्टरियों में औरतों की भर्ती बन्द कर दी जाय।

७ व्यभिचार की ओर प्रायः वे लड़कियाँ झुकती हैं जो अविवाहित मातायें बनने का सुख लूट चुकी होती हैं।

८ अनैतिक महिला की चेतना में अवश्य ही एक न एक प्रकार का विकार होता है। इसलिये कुछ व्यभिचारी औरतों को तो जरुर ही चेतना-विश्लेषण की सहायता से सुधारा जा सकता है।

इन अन्तर्विरोधी, आधी-झूठी, आधी-सच्ची बातों के पँवाड़े से हम क्या लाभ उठा सकते हैं? कुछ नहीं। कोई ताज्जुब नहीं कि अनैतिकता के खिलाफ कानून बनाने वाली संस्थायें अपना सर टकराकर हार गयीं। कोई भी कानून लागू नहीं किया जा सका क्योंकि हर कानून का डटकर विरोध किया गया।

कुछ ही साल पहले पौल द क्रीफ नामक सज्जन ने पुरुषों की एक पत्रिका में लेख लिखकर व्यभिचार की ओर नया नजरिया पेश किया था। इस लेख में एक ऐसे रसायन की मौजूदगी की बात कही गई थी जिसके इस्तेमाल से औरतें गर्भ व इन्द्रिय-रोगों दोनों का ही, विरोध कर सकें। अर्थात् यह दवा औरतों के लिये मातृत्व के सुख-भोग को तो सम्भव बना देगी। मातृत्व के दुखद फलों का भय न रहेगा। न तो बच्चा पैदा होगा और न किसी इन्द्रिय-रोग के होने का डर रहेगा।

यह दवा कुछ और नहीं श्री क्रीफ महोदय की कल्पना की ही उपज थी। किन्तु ऊपर पेश की गई बातें असम्भव नहीं हैं। ऐसी दवा के लिये काफी डाक्टरी खोजबीन जारी है जो गर्भ निरोधक भी हो और जिससे इन्द्रिय-रोगों के विनाश में भी मदद मिले (यद्यपि अभी तक ऐसी कोई दवा मौजूद नहीं)। अनेकों वैज्ञानिक मानते हैं कि ऐसी दवा की खोज अनैतिकता की समस्या को हल कर देगी।

क्या हम सहमत हो सकते हैं?

उत्तर देने के लिये गम्भीर चिन्तन की जरुरत नहीं। इन्द्रिय-रोगों का भय और गर्भ-धारण करने का भय ऐसी दो चीजें हैं जो स्वाभाविक रूप से व्यभिचार की रोक-थाम किये हैं। इन्हीं दोनों भयों के कारण

अधिकांश लड़कियाँ और पुरुष व्यभिचार से बचने का यत्न करते हैं। इन भयों का खात्मा अनैतिकता को अत्यधिक बढ़ा देगा। आज पाप उसी मात्रा में बढ़ रहा है जिस मात्रा में इन्द्रिय-रोगों से बचने और संतति – निग्रह के तरीकों का ज्ञान आप लोगों में फैल रहा है। यह सम्भावना सोवियत रूस को छोड़ करीब-करीब सभी जगह मौजूद है। सोवियत रूस में विज्ञान का उद्देश्य बीमारों और गुप्त पैदाइश के बच्चों के आँकड़े इकट्ठा करना भर नहीं रहा। उसका उद्देश्य कहीं ज्यादा नैतिकता पूर्ण था। उसका उद्देश्य था : मानव—जाति को सुधारना।

—:o:—

औरतों के क्रय—विक्रय के खिलाफ़ संघर्ष।

औरतें व्यभिचार को अपनी जीविका का आधार क्यों बनाती हैं ?

सोवियत प्रश्न-पत्र में जो उत्तर दिये गये वे एक से थे। थोड़े से या बहुत समय के लिए अपनी जीविका का आधार औरतें व्यभिचार को इसलिये बनाती हैं कि दरिद्रता और आर्थिक कठिनाइयाँ उन्हें अनैतिकता के गढ़े में ढकेल देती हैं। पर, यह उत्तर केवल आधा है।

निस्संदेह, रूस की अधिकांश महिलाओं ने ग़रीबी की समस्या का हल अनैतिकता को नहीं माना। क्यों? क्या वे उन औरतों से "ज्यादा अच्छी हालत" में थीं जिन्होंने व्यभिचार को हल माना था?

कतई नहीं। रूसी महिलाओं ने इसका उत्तर बड़े जोरदार शब्दों में दिया। व्यभिचार के व्यापार की केवल वे महिलायें शिकार बनी जिन्हें दूसरे लोगों ने जान बूझ कर फुसलाया था। किन लोगों ने? उन लोगों ने नहीं जिन्होंने पहले-पहल उनके शरीर का सौदा किया था बल्कि उन मर्द-औरतों ने जो वैश्या-वृत्ति के व्यापार से लम्बे-चौड़े मुनाफ़े कमा रहे थे। वे लोग जो व्यभिचार के ठेके चलाते थे।

कुछ ऐसे पाठक भी हो सकते हैं जो कहेंगे कि इन दोनों बातों का ताल्लुक तो सिर्फ रूसी औरतों से है। मैं उनसे प्रार्थना करूँगा कि वे फ्लेक्सनर और कूपर, दोनों की ही किताबें पढ़ें। जैसे रूस में सन् १६२३ में यह दोनों बातें लागू होती थीं उसी तरह आज बाकी सारी दुनियाँ में वे करीब—करीब ज्यों की त्यों लागू होती हैं। व्यभिचार कायम इसलिये है कि बेशुमार भूखी-नंगी लड़कियाँ मौजूद हैं, इसलिये कि व्यभिचार का व्यापार करने से करारा मुनाफ़ा हाथ लगता है।

औरतों का इस मुनाफ़े में ज्यादा हिस्सा नहीं होता। जैसा कि पुरुष-वर्ग सोचता है उसके विपरीत ऐसी औरतों की सालाना आमदनी बहुत कम होती है। उनके जीवन की परिस्थितियाँ बड़ी शर्मनाक होती हैं। रूसी महिलाओं में गिनी-चुनी ही ऐसी थीं जिन्होंने व्यभिचार को अपना धन्धा बनाने की ग़रज़ से यह काम चुना था। हज़ारों ने बताया कि जानने के पहले ही कि वे अनैतिक बन रहीं हैं, वे अनैतिक बन गई थीं। उन्हें कभी-कभी ही जबर्दस्ती इस काम में घसीटा गया था। या तो वे एक दम कंगाल थीं, या बहुत कड़ी मेहनत के लिए उन्हें बहुत कम पैसा मिलता था। या फिर वे खाली बैठी मक्खियाँ मारा करती थीं। अब कोई ठेकेदार सामने आता। वह (पुरुष या स्त्री) ऐसी लड़की के लिए वक्त और रक़म तजवीज (नियत) कर जाता। यह रक़म आम तौर से बहुत ज्यादा न होती थी। सोवियत विशेषज्ञों को पता चला कि ज्यादातर लड़कियां बहुधा इतनी ग़रीब होतीं कि थोड़ी रक़म का लालच भी उन्हें पाप की तरफ तेजी से घसीट ले जाता। अमरीका की हालत के बारे में कूपर का अध्ययन भी इसी बात की पुष्टि करता है। उन्होंने भी बताया है कि युद्ध से पहले के दिनों में ज्यादातर लड़कियाँ बहुत थोड़ी हफ्ते भर के लिये रक़म पर तैयार हो जाती थीं।

इस सब से यही सिद्ध होता है कि व्यभिचार की जड़ कंगाली है।

जिन दिनों प्रश्न-पत्र घुमाया जा रहा था उन दिनों सोवियत सरकार ने उद्योगों और खेती-बारी का पुनर्संगठन शुरू किया ही था। उन दिनों औरतों को काम भी कम मिलते थे और मजदूरी भी कम मिलती थी। प्रश्न-पत्रों में औरतों को न तो सब्जबाग़ दिखाये गये थे और न उन्हें बेहतर काम देने का वायदा किया गया था। फिर भी ज्यादातर महिलाओं ने कहा कि यदि अच्छे काम मिलने की उन्हें जरा सी भी उम्मेद हुई तो अपना नैतिक सुधार कर सकने की उन्हें आशा बंध

जायगी। अपने पतन के आर्थिक कारणों से वे भली-भाँति परिचित थीं। बहुतों ने कहा कि हम अपने बच्चे की परवरिश कर रही हैं। उन्होंने कहा हम यही चाहती हैं कि बच्चे के बड़े होने के पहले ही हम इस पेशे को छोड़ दें ताकि उसे यह सुनकर शर्मिन्दा न होना पड़े कि तू फलाँ बदचलन औरत का बेटा है।

इस प्रश्न-पत्र ने एक और तथ्य पेश किया जिसे सभी मनो वैज्ञानिक, सामाजिक कार्य-कर्त्ता और कुलीन लोग जानते हैं। हाँ भले घराने की औरतें इसे नहीं मानतीं। बहुत थोड़ी ही लड़कियाँ ऐसी होती हैं जो अपनी जरूरत से ज्यादा तीव्र कामेच्छा को बुझाने के लिये व्यभिचार का सहारा लेती हैं। रूसी महिलाओं ने स्वीकार किया कि इस तरह के जीवन से तो इन्द्रिय भोग के प्रति घृणा ही पैदा होती है। इस मे मानसिक संतोष नहीं मिलता।

इस तथा दूसरे तथ्यों के आधार पर सोवियत वैज्ञानिक इस नतीजे पर पहुँचे कि अधिकाँश वैश्याएं सामान्य स्वभाव की होती हैं। उनकी मानसिक अस्थिरता दूसरी साधारण स्त्रियों के मुकाबले खास ज्यादा नहीं होती। अगर सच्चरित्रता को छोड़ वे व्यभिचार की ओर झुकती हैं तो इसका कारण उनका स्वभाव नहीं, आर्थिक कठिनाइयाँ हैं हमारे देशों में आम तौर से लोग यह सोचते हैं कि बदचलन औरतों को फिर से समाज के योग्य बनाने का एक मात्र उपाय यही है कि उन्हें किसी ऐसे स्थान पर रखा जाय जहाँ उनकी पूरी मानसिक देखभाल की जा सके। यह बात अवैज्ञानिक और बनावटी है। इसके फलस्वरूप एक से एक हास्यास्पद योजनाएं बनना शुरू हो जाती हैं। औरतों के "सुधार-आश्रम" क़ायम होते हैं उन्हें 'सही ढर्रे पर लाने के लिये' एक से एक ढकोसले तैयार किये जाते हैं। आँखें बन्द कर ली जाती हैं तो सिर्फ कंगाली की तरफ से रूस की औरतों ने इस बात पर खास जोर दिया। उन्होंने कहा "हमें अच्छा काम दो, हम अपने को सुधार लेंगे।"

व्यभिचार—व्यापार के बारे में उनके उत्तर खास दिलचस्प थे। उन्होंने इस धारणा को खत्म कर दिया कि व्यभिचार के अड्डे चलाने वाले लोग बड़े चतुर और धनी होते हैं और उनके दल के दल होते हैं। उन्होंने रहस्य मे छिपे ठेकेदार को अपने असली रूप में खड़ा कर दिया। व्यभिचार से मुनाफे कमाने वाले लोग "साधारण आदमी" ही होते हैं। रूस की उन दिनों की हालत को अपनी आज की हालत पर लागू करते हुए हम कह सकते हैं कि व्यभिचार से मुनाफे कमाने वाले ज्यादातर लोग हैं, मोटर—ड्राईवर, होटलों में काम करने वाले, गुंडा—गर्दी मचाने वाले, नशेबाज वगैरह। आमोद-प्रमोद के स्थान भी इन लोगों के अड्डे होते हैं। इनमें सबसे बढ़े-चढ़े होते हैं सस्ते होटलों, धर्मशालाओं और यात्रियों के ठहरने के स्थानों के मालिक।

इन तथ्यों और निस्कर्षों पर पहुंचकर सोवियत-शासकों ने अपने देश से भ्रष्टाचार को हटाने के लिये जो संघर्ष शुरू किया वह अन्य देशों में चलाये गये आन्दोलनों से एकदम भिन्न था और एक नये दृष्टिकोण पर आधारित था।

हम उसे संक्षेप में बताते हैं :—

यह तय कर लेने पर कि व्यभिचार के खिलाफ़ संघर्ष चलाया जाय सोवियत अधिकारियों ने यह भी तय किया कि इस संघर्ष को वैश्या-विरोधी आन्दोलन का रूप नहीं दिया जाय। संगठित—व्यभिचार को सोवियत रूस में एक सामाजिक दोष माना गया। वहाँ माना गया कि इसका कारण औरतों की गरीबी है और इसके व्यापार से जो रक़म आती है वही इसको बढ़ाती भी है।

इस नीति का आधार क्या था यह गोर्की के निम्नलिखित वाक्यों से स्पष्ट है: "शायद दुनियाँ में जब कोई भी गुलाम न रह जायगा, कोई भी गरीब न रह जायगा, तो इन्सान आदर्श रूप से अच्छा बन जायगा पर

यदि हम चाहते हैं कि दुनियां में कोई भी गरीब और कोई भी गुलाम न रह जाय तो हमें उन लोगों के खिलाफ, निदयता से लड़ना पड़ेगा जो गुलामों के श्रम पर मौज उड़ाने के आदी हैं।"

सन् १९२५ मे सोवियत-सरकार ने अपने सिद्धान्तों को अमली रूप दिया। उसने "वैश्या-वृत्ति के खिलाफ संघर्ष का कार्यक्रम" नामक कानून पास किया। इस कानून की भूमिका में कड़ी चेतावनी दी गई थी। इसमें बताया गया था कि व्यभिचार और इन्द्रिय-रोग बड़ी तेजी से बढ़ रहे हैं। देश की तमाम शासन संस्थाओं, ट्रेड-यूनियनों, सहकारी संस्थाओं, तथा जन-संगठनों को आदेश दिया गया कि वे तुरन्त ही निम्नलिखित उपायों को अमल में लायें।

१ मजदूर संगठनों की मदद से मजदूरों की सुरक्षा सेना मजदूर स्त्रियों की छटनी हर हालत में बन्द करे। किसी भी हालत में आत्म-निर्भर औरतों, गर्भवती औरतों, छोटे बच्चों वाली औरतों और घर से अलग लड़कियों को काम से जुदा न किया जाय।

२ उस समय फैली हुई बेकारी के आंशिक हल के रूप में स्थानीय शासन संस्थाओं को आदेश दिया गया कि वे सहकारी फैक्टरियों और खेतों का संगठन करें ताकि निस्सहाय भूखा-नंगी औरतों को काम पर लगाया जा सके।

३ औरतों को स्कूलों और ट्रेनिंग-केन्द्रों में भरती होने के लिये बढ़ावा दिया जाय और मजदूर संगठन इस भावना के खिलाफ सफल संघर्ष चलायें कि औरतों को मिलों-फैक्टरियों वगैरह में काम नहीं करना चाहिये।

४ उन औरतों के लिये "जिनके रहने का कोई निश्चित स्थान नहीं है," और उन लड़कियों के लिये जो देहातों से शहरों में आयी हैं, बसाने के लिये अधिकारी लोग सहकारी-मकानों की व्यवस्था करें।

५ बेघरबार बच्चों की सुरक्षा के नियम सख्ती से लागू किये जाँयें।

६ इन्द्रिय-रोगों और वेश्या-वृत्ति के ख़तरे के खिलाफ आम जनता को जगाने के लिये अज्ञान पर हमला बोला जाय। आम जनता में यह भावना जगायी जाय कि अपने नये जनतंत्र से हम इन खराबियों को निकाल फेंकें।

ये सब प्रारम्भिक आदेश थे। इनका उद्देश्य देश की गरीब औरतों और लड़कियों की हालत को अच्छा बनाना था। किन्तु सोवियत अधिकारी अच्छी तरह जानते थे कि व्यभिचार की काई समाज के हर स्तर मे चिपटी हुई है। केवल आर्थिक बोझ को हलका करके ही इस काई को इस पीढ़ी के लोगों से दूर नहीं किया जा सकता,—शायद अगली पीढ़ी के लोगों से भी नहीं। इसलिये व्यभिचार पर सीधा हमला बोला गया।

अस्तु केन्द्रीय अधिकारियों ने तीन और राज्य-घोषणायें जारी कीं:

पहली: ज़ारशाही कानून के अन्तर्गत अनैतिक महिलाओं के खिलाफ़ कार्यवाही करने के अदालतों और पुलिस के हाथ में जो जो अधिकार थे, रद्द कर दिये गये।

दूसरी: व्यभिचार से छिपे या खुले मुनाफ़ा कमाने वालों को खत्म करने के लिये निर्दयतापूर्ण संघर्ष छेड़ दिया गया। इस सम्बन्ध में स्थानीय जन-सरकारों को आदेश दिया गया कि वे उतनी ही सख्ती का रुख अपनायें जितना व्यभिचार के ठेकेदारों का है।

तीसरी: इन्द्रिय-रोगों से पीड़ित तमाम लोगों को डाक्टरी और दवादारू सम्बन्धी मदद मुफ़्त दी जाय।

स्वास्थ्य रक्षा सम्बन्धी सरकारी संस्थाओं की निगरानी में इन नियमों को कार्यान्वित करने के लिये अधिकारियों के दल नियुक्त किये गये। पर शुरू के महीने से ही अड़चनें सामने आने लगीं। आर्थिक बन्दोबस्त के लाभ तो दिखाई देने लगे। पर संगठित व्यभिचार के खिलाफ़ असली

संघर्ष का कोई नतीजा न निकला। जारशाही पुलिस के हथकन्डों को मजदूरों का सुरक्षा सेना के कुछ हिस्से भी ज्यों के त्यों अपना रहे थे। कारण यह कि अनैतिकता की तरफ नये रवैये को ये लोग पूरी तरह समझ नहीं पाये थे। इसीलिये फ़रवरी, १६२३ में क़ानून सम्बन्धी जन-समिति ने अपराध—क़ानूनों में कई संशोधन किये। नीचे की दो धारायें देखिये :

"धारा १७०: जो कोई भी व्यक्तिगत लाभ या दूसरे कारणों से, शारीरिक या नैतिक दबाव से वैश्या-वृत्ति को बढ़ती में मदद देगा उसे पहले अपराध के लिये कम से कम तीन साल क़ैद की सजा मिलेगी।

"धारा १७१: वे लोग जो वैश्या-वृत्ति से मुनाफा कमाते हैं उन्हें पहले अपराध के लिये कम से कम तीन साल क़ैद की सजा मिलेगी और उनकी सारी निजी सम्पत्ति जब्त कर ली जायगी। यदि अपराधी की देख रेख या नौकरी में कोई वैश्या पाई जायगी और उसकी आयु २१ साल से कम होगी तो कम से कम पाँच साल की क़ैद की सजा मिलेगी"।

पहले इन क़ानूनों को लागू करने की जिम्मेदारी स्वास्थ्य—विभाग पर थी। जनवरी १६२४ में यह जिम्मेदारी घरेलू मामलों की जन कमिसा-रियट को सौंप दी गई।

एक और घोषणा प्रकाशित हुई और वह भी क़ानून बन गई। इसका नाम था: "वैश्या वृत्ति के खिलाफ़ संघर्ष में फ़ौज के कामों की घोषणा," यह क़ानून इतिहास में सदा याद रखा जायगा। यह पहला क़ानून था जो संगठित व्यभिचार की सामाजिक बुनियादों को खत्म करने में क़ामयाब हुआ। दूसरे देशों के लिये भी यह आदर्श क़ानून है। इसे दो हिस्सों में बांटा जा सकता है।

१ फ़ौज के कामों को साफ साफ गिनाया गया। फ़ौजी काम था व्यभिचार के अड्डों का पता लगाना। ये अड्डे ही व्यभिचार से पैदा होने

वाले मुनाफों को क़ायम किए थे। पर ताक़ीद कर दी गई कि जो कोई भी ऐसे अड्डों को चलायेगा, किराये पर उठायेगा, 'या मालिक होगा' या जो इनके लिए ग्राहक या औरतें लाएगा उसे गिरफ्तार कर लिया जायगा और अपराध क़ानून की धाराओं के अनुसार उसे दण्ड दिया जायगा। यह ताक़ीद की गई कि ऐसे मकान मालिकों, मकान मालिकिनों, ग्राहक लाने वालों वग़ैरा को इन्सानों का व्यापार करने वाला माना जायगा। उनके साथ सख़्ती का सलूक किया जायगा। फौज को आदेश दिया गया कि वह आमोद-प्रमोद के स्थानों और जलपान-गृहों की खास निगरानी रखे, — खास तौर से जब जाने-माने अड्डों पर छापा मारा जा चुका हो। हर हालत में ऐसी जगहों के मालिकों का पता लगाया जाय, उनका अपराध बताया जाय और उन्हें सज़ा दी जाय, भले ही लाख कहें कि हमें नहीं मालूम था कि हमारी जगहों में ऐसा काम जारी है। ऐसे सभी स्थानों को, जिनके व्यभिचार के अड्डे होने का शक है तब तक के लिये बन्द कर दिया जाय जब तक इन अड्डों के मालिकों और व्यभिचार चलाने वालों से पूरी२ तरह निपट न लिया जाय। (हमारे देशों में ऐसे सख़्त पर ज़रूरी क़ानूनों को लागू करने की तो बात कभी सोची भी नहीं गई। वेश्या-गृह तो एक ऐसी जगह हैं जहाँ से खरी रक़म आया करती है। पुलिस ने लाख छापे मारे हों पर मकान - मालिक अज्ञात ही रहता है। ऐसे मामलों की लपेट में उसका नाम तक नहीं आने पाता।

(२) फौज और जनता को चेतावनी दी गई कि खुद अनैतिक महिलाओं के खिलाफ कोई सख़्ती का बर्ताव न किया जाय। आश्चर्य में डालने वाली एक ऐसी भी धारा थी जिसमें कहा गया कि वेश्याओं को गिरफ्तार न किया जाय। उन्हें अदालतों में लाया जा सकता था तो ठेकेदारों के खिलाफ सिर्फ गवाही देने के लिए। (एक असाधारण क़ानून द्वारा बहुत छोटी उम्र की लड़कियों का 'मजदूरों और किसानों की

निगरानी के संगठन' नामक जाँच पड़ताल की संस्था के सामने लाने की इजाजत दी गई थी ।) व्यभिचार के अड्डों पर छापा मार कर कैसा बर्ताव किया जाय इसे भी क़ानून में साफ़ २ बताया गया था । छापा मारने वालों को आदेश था कि वहाँ की औरतों को वे सामाजिक रूप से समान ही समझें। उन्हें वे धूर्त ठेकेदारों के शिकन्जे में फंसी बेबस महिलायें समझें। भले ही कोई औरत फौज की तरफ कड़ा रुख क्यों न अपनाए उससे सम्मान पूर्ण भाषा में ही बातचीत की जाय और उसका कोई अपमान न किया जाय । अफसरों को किसी अनैतिक महिला का नाम और पता लेने तक का अधिकार नहीं दिया गया था । ज़ाहिर है हमारे देशों के किसी भी पुलिस अफसर को ये नियम बड़े ही अजीब और बेतुके लगेंगे । यहाँ तो वैश्याओं को इन्सान के नीचे दर्जे की चीज़ समझना आम बात है । लेकिन नए कानूनों का असर वहाँ तुरत देखने में आया । पहिले फौज, फिर इस संघर्ष से संबन्धित ट्रेड यूनियनों जैसे संगठन और फिर धीरे-धीरे आम जनता समझने लगी कि ज़िन्दगी की परिस्थितियों के दबाव और मुनाफा कमाने वाले ठेकेदारों के वशीभूत होकर ही औरतें व्यभिचार को अपनी जीविका का साधन बनाने पर मजबूर होती हैं।

नतीजे क्या निकले ?

ठेकेदारों और वैश्या-गृहों के मालिकों का अदालतों में तांता लगने लगा । वहाँ से वे जेलों में पहुँचाये जाने लगे। जैसी कि उम्मीद थी ही, इन लोगों ने विरोधी-आन्दोलन छेड़ दिया । सोवियत अखबार 'सम्पादक के नाम पत्रों' से रंगने लगे। आम तौर से इन पत्रों में नैतिकता सम्बन्धी लम्बी-चौड़ी बातें बघारी जातीं । इनमें कहा जाता कि सोवियत-सरकार वैश्याओं को पनाह देकर और भोले-भाले मकान-मालिकों को दंड देकर घोर पाप कर रही है। पर्दे के पीछे छिपे लोगों

को ज्यों - ज्यों फौज पकड़-पकड़ कर सामने लाने लगी त्यों-त्यों उनकी चीख़ पुकार और बढ़ने लगी। उनके विरोध का वही रूप था जिससे दूसरे देशों के पुलिस अफ़सर भलि-भाँति परिचित हैं : अर्थात् 'धार्मिक' और 'कानूनी लफ़्फ़ाज़ी की आतिशबाजी चलाकर व्यभिचार-विरोधी आन्दोलन को कमज़ोर बनाना। किन्तु सोवियत अधिकारियों ने इस चीख़ - पुकार का उत्तर फ़ौज की और भी कड़ी कार्रवाई से दिया।

अब तक बचे ठेकेदारों ने शोर मचाना शुरू किया कि सोवियत-सरकार होटलों के मालिकों तथा दूसरे सम्पत्ति शाली लोगों को दण्ड देकर बड़ा अन्याय कर रही है। इसका उत्तर घरेलू मामलों के कमिसार ने कड़े शब्दों में दिया। उसने कहा कि संगठित-व्यभिचार जैसे भयानक अपराध को बढ़ावा देने वाले किसी भी व्यक्ति को समाज क्षमा नहीं कर सकता। ठेकेदारों की एक दलील यह भी थी कि वेश्याओं को अपना पेशा जारी रखने का 'हक़' है। अधिकारियों ने प्रश्न-पत्र का जिक्र करते हुए इस दलील का उत्तर दिया। उन्होंने कहा, औरतों ने व्यभिचार को मजबूरी की हालत में अपनाया है और समाज का यह कर्तव्य है कि उन्हें अच्छे काम देकर वह व्यभिचार से मुक्त करे।

सन् १९२९ के ख़त्म होते-होते एक और समस्या सामने आई। मास्को से प्रकाशित होने वाले अख़बार 'इज़वेस्तिया' के सम्पादकीय ने इस समस्या को जनता के सामने पेश किया। समस्या थी ग्राहकों की। नैतिक सुधार की योजनाओं में सोवियत-रूस ने एक नया क़दम उठाया। वेश्या-वृत्ति के खिलाफ संघर्ष अब तक उन क़ानूनों के बल पर ही चलाया गया था जिनका हम ऊपर जिक्र कर आये हैं। अब एक दम नैतिक मसला पेश हुआ। उन वेश्याओं के 'गाहकों' पर हमला शुरू हुआ।

इज़वेस्तिया में व्यभिचार से मुनाफा कमाने वालों के सफलतापूर्वक

दमन की खबरें छप चुकी थी। सम्पादकीय में कहा कि वेश्या-वृत्ति का खात्मा और भी सहज बनाया जा सकता है यदि सब औरतों के लिए अच्छे काम की व्यवस्था हो जाय। पर इस काम में पूरी सफलता के लिए यह जरूरी है कि पुरुष - वर्ग भी नया नैतिक दृष्टिकोण अपनाये। सम्पादकीय के शब्द ये थे : "अगर किसी व्यक्ति के लिए औरतों के ठेके चलाना अपराध है तो औरतों के शरीर को कुछ समय के लिये खरीदना और उनके आत्म-सम्मान को भंग करना भी उतना ही बड़ा अपराध है।"

व्यभिचार के इतिहास का हम पहले विवरण दे चुके हैं। उससे स्पष्ट हो गया है कि सामन्तवाद के पतन के बाद जब विवाह और प्रेम की ओर लोगों का नज़रिया बदला तब सामाजिक पैमाने पर यह समस्या सामने आई। किन्तु अब पहली बार लाखों-करोड़ों आदमियों के बीच यह समस्या खुल्लमखुल्ला रखी गई।

सोवियत नागरिकों के सामने वे तथ्य पेश किये गये जिनसे वे आँखें नहीं बचा सकते थे। रूस में ऐसी सामाजिक व्यवस्था क़ायम की गई थी जिसमें स्त्रियों को पुरुषों के ही बराबर क़ानूनी, राजनीतिक और सामाजिक अधिकार हासिल थे। प्रेम और विवाह के द्वारा इन्द्रिय-सुख भोग सकने के रास्ते में जो भी रुकावटें थी तोड़ी जा रही थीं। अब कैसे किसी की आत्मा औरतों की सौदेबाजी की गवाही दे सकती थी? सोवियत के पुरुष कैसे औरतों की आबरू लूटने और अपने मुंह पर कालौंछ पुतवाने को तैयार हो सकते थे?

समस्या का पहले ही अन्दाज लगाया जा चुका था। इज़वेस्तिया के सम्पादकीय में जो बात कही जा चुकी थी उसी को प्रोफेसर एलिआतोव ने 'इन्द्रिय-रोगों के खिलाफ संघर्ष की दूसरी कांग्रेस' में और भी ज़ोरदार शब्दों मे उठाया। उन्होंने कहा कि औरतों के आर्थिक-शोषकों के खिलाफ

संघर्ष में फ़ौज को अभूतपूर्व सफलता ने इस बात की आवश्यकता पैदा करदी है कि जो लोग अब भी व्यभिचार को प्रोत्साहन देते हैं उन पर सामाजिक दबाव डाला जाय।

उन्होंने कहा : "हम इसे सिर्फ़ नैतिक दायरे की चीज़ नहीं समझते। हम इसे अत्यन्त महत्वपूर्ण राजनीतिक प्रश्न मानते हैं। सोवियत संघ ऐसा राज्य है जिसकी आधार-शिला मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का अन्त है। कोई भी मनुष्य जो औरतों के इस घृणित शोषण को क़ायम रखता है हमारे देश का नागरिक कहलाने का हक़दार नहीं है।"

बेशक, प्रोफेसर एलिस्यातोव की बात हमें "उपदेश-वाक्य" जैसी लगती है। पर यहाँ भी सोवियत-अधिकारियों ने अपनी पुरानी रीति पर अमल किया : एक सैद्धान्तिक विचार को उन्होंने वैज्ञानिक कार्यक्रम का रूप दिया। घरेलू मामलों के अधिकारियों ने इस मसले को एक प्रश्न के ही रूप में नहीं रहने दिया; उन्होंने इसे फ़ौज के हाथों में सुपुर्द कर दिया।

एक आश्चर्यजनक क़ानून पास हुआ। अब से जब भी अफ़सर लोग किसी व्यभिचार के अड्डे पर छापा मारते, वहाँ उपस्थित सभी लोगों के नाम पते और कहाँ नौकरी करते हैं दर्ज कर लेते, — भले ही यह अड्डा मकान, मदिरालय या सिर्फ़ अँधेरी गली का कोई कोना हो। "ग्राहकों" को गिरफ्तार न किया जाता। हाँ, दूसरे दिन बाजार में एक नियत स्थान पर एक लम्बे तख़्ते पर इन लोगों के नाम और पते टाँग दिये जाते। यह तख़्ता कई दिनों तक वहीं टंगा रहता था। इन लोगों के नामों और पतों के ऊपर तख़्ते पर बड़े - बड़े अक्षरों में लिखा रहता था: "औरतों के शरीर को ख़रीदने वाले"। नामों की यह फेहरिस्त सभी बड़ी-बड़ी बिल्डिंगों और मिलों—फैक्टरियों के बाहर लटकी रहती थी।

इस नियम का क्या असर हुआ होगा इसकी आसानी से कल्पना

की जा सकती है। हमारे देशों में एक दूसरा ही अप्रकट नियम सा मौजूद है। पुलिस को ऐसे लोगों से बड़ी इज्जत से पेश आना पड़ता है और उनके नाम को गुप्त रखना पड़ता है जो "बड़े आदमी" होते हुये व्यभिचार के संचालक भी होते हैं। पुलिस को ध्यान रखना पड़ता है कि इन लोगों की इज़्ज़त आबरू में बट्टा न लगने पाये। सोवियत रूस के नियम ने इस ढकोसले को तोड़कर आत्म-सम्मान पर दाग़ आने के भय को ही व्यभिचार के खिलाफ़ शक्तिशाली हथियार बना लिया। उसने इस "निजी आत्म-सम्मान" को जनता के सामने जाँच-पड़ताल के लिए पेश कर दिया। पाप का दण्ड देने या पापमय जीवन के खिलाफ लम्बे २ भाषण देने के बजाय सोवियत-अधिकारियों ने पुरुष द्वारा लुके छिपे व्यभिचार की गुन्जाइस को ही खत्म कर दिया।

पहले कभी इतने साहस का क़दम नहीं उठाया गया था। जिन मनोवैज्ञानिकों ने 'ढकोसले को खत्म करने' का यह उपाय सोचा था, सही मौके की प्रतीक्षा भी की थी। उन्होंने इस उपाय को तभी लागू किया जब अन्य कानूनों द्वारा संगठित व्यभिचार के आर्थिक और दूसरे रूपों को खत्म कर दिया गया था।

ध्यान देने की एक और खास बात यह है कि किसी पर कोई नैतिक-प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया था। भोग लालसा की तृप्ति के लिए पुरुषों को औरतों का शरीर खरीदने से न तो मना किया गया था न दण्ड की योजना बनाई गई थी। उनसे सिर्फ़ इतना कहा गया था कि नया सोवियत राज्य ऐसी चीज़ को अनैतिक मानता है क्योंकि मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का यह अत्यन्त ही घृणित रूप है। समाज में भले लोग भी थे। वे अभागी औरतों की ग़रीबी से फायदा नहीं उठाना चाहते थे। उन्हें यह जानने का अधिकार था कि वे कौन से लोग हैं जो निजी स्वार्थ के लिये ऐसे शोषण को जारी रखने पर तुले हुए हैं।

उस समय वहाँ मौजूद परिस्थितियों के बिना इस नियम की बहुत कुछ ताक़त ख़त्म हो गई होती। किन्तु जिस समय इसे लागू किया गया, सारे देश में जनता को शिक्षित बनाने का आन्दोलन जारी था। इस सम्बन्ध में सोवियत-रूस की नाट्यशालाओं ने जो काम किया वह भी उल्लेखनीय है। अनैतिकता के अपराधी पर मुकद्दमें का एक नाटक तैयार किया गया। इसका कथानक कुछ इस प्रकार था। फ़ौज व्यभिचार के एक अड्डे पर छापा मारती है। वहाँ से पकड़कर मकान मालिक, वैश्या, और उसके ग्राहक को वह जनता की अदालत में लाती है। तमाम सबूतों के आधार पर मकान-मालिक को क़ैद में डाल दिया जाता है। औरत को बरी कर दिया जाता है। पर ग्राहक पर अपनी और एक दूसरी स्त्री की मान-प्रतिष्ठा भंग करने और देश के नैतिक गौरव पर धब्बा लगाने का आरोप लगाया जाता है।

जैसा कि स्वाभाविक था, यह नाटक जनता में बहुत लोक-प्रिय हुआ। जहाँ भी यह नाटक होता, हाल खचाखच भरा रहता। बड़ी शान्ति से जनता पात्रों की बातचीत सुनती। नाटक की सरलता ने उसमें और भी जान डाल दी थी, यह एक समस्या-प्रधान नाटक था। इसमें व्यर्थ की उलझनें या टालमटूल की बातें नाम मात्र को नहीं थीं। नंगा सत्य रंग मंच पर पेश कर दिया गया था।

पात्रों की बातों में सच्चाई के साथ-साथ क़ानून की बातें भी होती थीं। प्रत्येक पुरुष, स्त्री और नवयुवक जो इस नाटक को देखता इस समस्या से सम्बन्धित तमाम नैतिक प्रश्नों से अच्छी तरह परिचित हो जाता। उसे मालूम हो जाता कि आगे क्या होने वाला है। उसे मालूम हो जाता कि जो पुरुष भी उस रात के बाद किसी वैश्या के साथ पाया जायगा उसका नाम सभी को मालूम हो जायगा। उसे याद रहता कि उसके रिश्तेदार और उसके साथ काम करने वाले लोग उसे हिकारत की नज़रों से देखेंगे जब उसका नाम 'औरतों का शरीर ख़रीदने वालों' की फ़ेहरिस्त में टंगा मिलेगा।

ईसाई धर्म और डाक्टर

इन्द्रिय-रोगों के खिलाफ़ संघर्ष की बाबत अभी तक हमने कुछ भी नहीं कहा। नई सोवियत-सरकार के सामने यह भी एक बड़ी समस्या थी।

उन दिनों रूस में सिफ़लिस का भयानक ज़ोर था। वोल्टा के तट पर बसने वाले कुछ जन समूहों में तो इस रोग का इलाज न हो पाने से शारीरिक कुरूपता तक आ गई थी। "बन्धन-रहित प्रेम" के सुख का अनुभव करने की भावना ने सिफ़लिस और गिनोरिया के मरीज़ों की संख्या अत्यधिक बढ़ा दी थी।

परिस्थिति के अत्यन्त गंभीर होते हुए भी सोवियत अधिकारियों ने मर्ज़ पर ही ध्यान केन्द्रित करना काफी न समझा। दूसरे देशों में यह आन्दोलन असफल हुआ था तो इसलिये कि सारी ताक़त रोग खत्म करने पर लगाई गयी। दूसरी गम्भीर समस्याओं की ओर ध्यान नहीं दिया गया था। सोवियत - अधिकारी इस निस्कर्ष पर पहुँचे कि इन्द्रिय-रोगों को तभी खत्म किया जा सकता है जब अनैतिकता और वेश्या-वृत्ति को खत्म कर दिया जाय। अनैतिकता को उन्होंने तमाम समस्याओं की जड़ माना। उनका कहना था कि अनैतिकता की समस्या के हल हो जाने पर सिफ़लिस और गिनोरिया साधारण बीमारियाँ मात्र रह जायेंगी। उनमें सामाजिक समस्याओं का लाग—लपेट न रहेगा। और तब क्षय—रोग, शराब खोरी इत्यादि के खिलाफ़ विशाल—आन्दोलन का ही एक हिस्सा इन्द्रिय-रोग विरोधी आन्दोलन भी बन जायगा।

सोवियत अधिकारियों ने पहला क़दम उठाया यह कि उन्होंने इस बकवास को खत्म कर दिया कि कौन सी औरतें इन्द्रिय-रोगों को फैलाने में ज़्यादा खतरनाक हैं। सच्चाई यह है कि कोई भी मर्द या औरत जो

किसी इन्द्रिय-रोग से पीड़ित है बड़ी आसानी से दूसरों में इस रोग को फैला सकती है। मौजूदा और आगे आने वाली पीढ़ियों के लिए ये रोग कितने खतरनाक होंगे यह जानते हुए सोवियत-अधिकारियों ने अपने अपराध-क़ानून में एक नया क़ानून जोड़ा। इस क़ानून के मुताबिक यह गम्भीर अपराध माना गया कि कोई पुरुष - जो इन्द्रिय-रोग से पीड़ित हो और जानता हो कि यह रोग दूसरे के लग जायगा - किसी स्त्री के साथ भोग — विलास करे। इस तरह यह बात मरीज़ों की इमानदारी पर नहीं छोड़ी गयी कि वे इस रोग को दूसरों में न फैलायें। क़ानून ने सभी अपराधियों को मजबूर कर दिया कि वे राज्य के सामने जवाब देही करें।

किन्तु सोवियत—अधिकारी क़ानून पास करके ही चुप नहीं बैठ गये। उन्होंने सारे देश में इन रोगों की जाँच—पड़ताल और इलाज के केन्द्रों की व्यवस्था की।

याद रखना चाहिये कि आज से बीस साल पहले जब ये केन्द्र खुले थे सिफ़लिस और गिनोरिया की ठीक—ठीक जाँच—पड़ताल बहुत मुश्किल थी। इलाज बहुत पिछड़ा हुआ था। साथ ही सोवियत—रूस आर्थिक—समस्याओं के जाल में फँसा हुआ था। इस कारण विदेशों से अच्छे औजार और दवादारू मंगा सकना सम्भव न था। फिर भी इन्द्रिय—रोगों से पीड़ितों की चिकित्सा में इन केन्द्रों को जो सफलता मिली उसे देखते हुये हमारे देशों की हालत आज बहुत शर्मनाक है।

कारण ढूँढ निकालना बहुत मुश्किल नहीं है

ये अस्पताल भी वेश्यावृत्ति और व्यभिचार के खिलाफ़ आन्दोलन के अभिन्न अंग बन गये।

इन अस्पतालों में भी वैसी ही व्यवस्था था जैसी क्षय रोग के अस्पतालों में होती है; कुछ मरीज़ अपने घरों पर रहते हुये इलाज

कराते थे, और कुछ को अस्पतालों में भरती कर लिया जाता था। आन्दोलन के प्रारंभिक-काल में बड़े-बड़े अस्पतालों ने अपना ध्यान वैश्याओं पर केन्द्रित किया। इन वैश्याओं पर अपराध-क़ानून आँखें बन्द करके लागू नहीं किया जाता था। इन्द्रिय-रोग से पीड़ित वैश्या को वैश्यावृत्ति जारी रखने के अपराध में अदालतें आँख बंद कर सजा नहीं सुना देती थीं। ऐसी औरतों के बारे में सभी जानते थे कि वे सामाजिक-कुरीतियों द्वारा बिगाड़ी गई हैं। इसलिये अदालत में पेश किये जाने के बाद इन औरतों से नागरिकों की एक कमेटी भेंट करती। यह कमेटी उन्हें समझाती कि अपने रोग का इलाज करने के लिये वे अस्पताल में भरती हों।

यह सब शुरू हुआ ही था कि एक नई समस्या उठ खड़ी हुई। हमारे यहाँ के डाक्टर और वैज्ञानिक इस समस्या से अच्छी तरह परिचित हैं। आखिर, ऐसी औरत का इलाज करने से फ़ायदा ही क्या जो फिर पेशा शुरू कर दे और फिर रोगी बन जाय?

इस समस्या का हल भी सोवियत-वैज्ञानिकों ने ढूँढ निकाला। जिन अस्पतालों में औरतों का इलाज होता था उनमें नये परिवर्तन किए गए। नई-नई 'संस्थायें' खड़ी करने का ढकोसला नहीं किया गया। सोवियत अधिकारियों ने इन अस्पतालों को ही ट्रेनिंग के स्कूल और काम-धन्धे के केन्द्र बना दिये।

इन अस्पतालों का पहला काम था: जो भी वहाँ जायें उनका पूरा-पूरा इलाज हो। भर्ती होने के लिये किसी को मजबूर नहीं किया जाता था। न तो दरवाजों पर पहरेदार बैठाये जाते थे, न रात में ताले जड़े जाते थे। ख़ास बात यह थी कि हर मरीज को समाज के लिए लाभदायक एक न एक धन्धा सिखाया जाता था। इलाज के दौरान में मरीज धंधा भी सीखते थे और पैसे भी कमाते। इसका असर उनके

दिमाग़ पर क्या पड़ता था यह सोचना बहुत मुश्किल नहीं है। औरतों को न तो सज़ा दी जाती थी, न लम्बे-चौड़े व्याख्यान, न ही चेतना विश्लेषण का ढोंग रचा जाता था। औरतें काम-धन्धा सीखती थीं और पैसे भी कमाती थीं। बहुत सी मरीज़, वैश्यायें नहीं थी। वे ऐसी लड़कियाँ थीं जिन्हें ज़ारशाही ज़माने में अच्छा काम न सीख पाने की वजह से काम न मिल पाया था।

इन मरीज़ों में काफ़ी तादाद ऐसों की थी जो रोग के कुछ कम हो जाने पर अपने-अपने घरों में जाकर सोतीं थी। दिन के वक़्त अस्पताल में आकर वे दवादारू लगवातीं और काम सीखतीं थीं। अस्पताल में 'अच्छी' और 'बुरी' औरतों को अलग-अलग नहीं बाँटा गया था। प्रयत्न यह किया जाता था कि क्षय के इलाज के लिए जो नागरिक अस्पताल में भरती होते ये उनसे ये औरतें अपने आप को नीचे दर्जे का न समझें।

इस तरह ये अस्पताल संगठित व्यभिचार के विरुद्ध संघर्ष के केन्द्र बन गये। कुछ ही अर्से में अकेले मास्को के अस्पतालों से इतना ज़रूरत का माल तैयार होने लगा कि उसकी कीमत पचास लाख रुपया सालाना आँकी गयी। ये अस्पताल बड़े लोकप्रिय स्थान बन गये। महिला-कार्यकर्त्ताओं के दल वैश्याओं के मुहल्लों में जाते और वैश्याओं से इन अस्पतालों में भर्ती होने के लिए कहते। पर शुरू-शुरू में वैश्याओं को डर लगा रहता कि कहीं ये अस्पताल क़ैदख़ाने न बन जायें। जैसे ही यह डर दूर हुआ वैश्यायें बड़ी तादाद में अस्पतालों में भर्ती होने लगीं। इस सम्बन्ध में प्रचार जितना भी किया गया वह प्रश्न-पत्र के उत्तरों पर आधारित होने के कारण सच्चाई से भरा हुआ था। इसीलिये इसका असर बहुत जल्दी होता था।

कुछ ही दिनों बाद अधिकारियों ने हर मरीज़ को अस्पतालों में कम

से कम दो साल और रहने की इजाजत दे दो,—भले ही वह पहले इलाज क्यों न करा चुकी हो। उद्योग—केन्द्रों में काम-धन्धा सीखने वालों पर आत्म नियंत्रण के सिद्धान्त को सख्ती से लागू किया जाता था। उद्योग—केन्द्रों के नियम वहाँ काम करने वाली औरतों ने खुद बनाये थे। नियम भंग करने के अपराध का सबसे बड़ा दण्ड यह था कि उस औरत को अस्पताल से निकाल दिया जाय।

इन अस्पतालों का पहला उद्देश्य था रोगों से निपटना। क्या वे इसमें सफल हुए ?

बड़े-बड़े ग्रन्थ लिख कर भी जिस बात को बता सकना मुश्किल है वही एक छोटी सी तुलना से स्पष्ट हो जायगी। सोवियत अस्पतालों की तुलना कीजिए अमरीका के अस्पतालों से। अमरीका में इन्द्रिय—रोगों को खत्म करने के लिए बरसों से प्रयत्न जारी हैं। सोवियत रूस के अस्पतालों में केवल इन्द्रिय-रोगों को ही जीतने का नहीं, अनैतिकता की व्यापक समस्या को हल करने का प्रयत्न किया गया था।

अमरीका के स्वास्थ्य अधिकारियों ने काफी गर्व से बताया है कि १९३५ से १९४० के पाँच वर्षों में इन्द्रिय—रोग विरोधी दवाओं का इस्तेमाल वहाँ पहले से दुगना हो गया। किन्तु दो साल बाद जब इन्द्रिय रोग-विरोधी आंदोलन और तीव्र हुआ तथा इलाज के तरीकों में उन्नति हुई तो सिफलिस और गिनोरिया के मरीजों की संख्या और भी बढ़ गई।

सोवियत—रूस में आंदोलन १९२६ में शुरू हुआ था। पाँच साल तक यह आन्दोलन जारी रहा। इस आंदोलन की सफलता का सब से अच्छा सबूत यह है कि १९३१ में मरीजों की कमी के कारण अस्पतालों के दरवाजे बन्द होने लगे। दो साल बाद आधे से ज़्यादा इंद्रियरोग-विरोधी विशेष केन्द्रों का पता ठिकाना तक न रहा। १९३८ तक लालसेना और

लाल जहाजी बेड़े से सिफलिस और गिनोरिया एकदम खत्म कर दिए गए। सोवियत नागरिकों के बीच इन रोगों को करीब-करीब बिल्कुल खत्म कर दिया गया। अब वे एक मामूली समस्या रह गये थे। इन्द्रियरोग, विरोधी अस्पताल सदा के लिए बन्द कर दिये गये। वेश्यावृत्ति का नाम-निशान तक मिट गया।

इन्द्रिय रोग विरोधी इस आंदोलन की आश्चर्यजनक सफलता का विस्तृत वर्णन दूसरे लोगों ने भी किया है। १९४५ मे ब्रिटिश वैज्ञानिकों के सम्मेलन में सोवियत रूस का उल्लेख डा० जे० ए० स्काट ने अपने भाषण में किया था। (ब्रिटिश जरनल आफ वेनेरियल डिजीजेस नामक पत्र के मार्च १९४५ के अंक में यह भाषण छपा था) उन्होंने बताया कि रूस मे सोवियत सत्ता स्थापित होने के पहले केवल १३ मेडिकल स्कूल थे, जब कि आज लगभग ७० हैं। १९१४ में, जार साम्राज्य में सम्भवतः सिफलिस के मरीजों की संख्या दुनिया भर में सब से ज़्यादा थी। याकूत प्रदेश में तीस फीसदी आबादी इन रोगों से पीड़ित थी। मास्को में रोगियों की संख्या दस हजार पर ३३८ थी। सिफलिस के जाने-माने रूपों के अलावा रूसी डाक्टरों को उसके नये-नये रूप भी देखने को मिले। इसका कारण यह था कि मूर्तियों को चूमने की प्रथा सर्व-व्यापक थी; लोग एक दूसरे के हुक्के भी पिया करते थे; लोग अपनी जूठी रोटी बच्चों को खिलाने में नहीं हिचकिचाते थे। १९२० के बाद रूसी अधिकारियों ने डाक्टर-ओनर को इन गंदी प्रथाओं के खिलाफ शिक्षा आन्दोलन संगठित करने के लिए बुलाया।

वेश्याओं के इलाज की व्यवस्था के अलावा, समूची जनता से इन रोगों को उखाड़ फेंकने के लिये एक अलग विशाल संगठन बनाया गया था। डाक्टर स्काट के अनुसार इन्द्रिय रोग विरोधी ऐसे अस्पतालों की व्यवस्था की गई थी जो एक जगह से दूसरी जगह घूमते रहते थे। ये घूमते-फिरते अस्पताल थे और इनकी बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका थी। जिस

जिले का भी दौरा करते उसके हर नागरिक को साल में कम से कम एक बार जांच जरूर हो जाती। छोटे से छोटे अस्पतालों में भी दो विशेषज्ञ, दो चकित्सक (बिना डिग्री के), एक जांच पड़ताल करने वाली महिला, एक क्लर्क और दो अर्दली रहते थे। क़ानून ने जरूरी बना दिया 'था कि हर अस्पताल के साथ कम से कम इतने आदमी होने चाहिए। जाँच पड़ताल के नए से नए साधन उनके पास मौजूद रहते। सिफलिस और गिनोरिया के इलाज की नई से नई दवाएं साथ रहतीं। मर्दों और औरतों के इलाज के लिए अलग-अलग स्थानों और अलग-अलग समय की व्यवस्था थी। एक समय तो सोवियत रूस में इस तरह के लगभग २००० अस्पताल थे। बाद में इन दलों ने छुआछूत सम्बंधी बीमारियों की जाँच-पड़ताल और इलाज का भार सम्हाल लिया।

सोवियत रूस के अस्पतालों में काम करने वाले अधिकारियों के चिकित्सा सम्बन्धी कर्तव्य के अलावा, कुछ सामाजिक कर्तव्य भी थे। वे इन्द्रिय रोगों, वैश्यावृति तथा इंद्रिय भोग सम्बन्धी दूसरी समस्याओं पर भाषणों और अध्ययन के कार्यक्रम का भी आयोजन करते। सिनेमा के जरिए, इश्तहारों के जरिए और प्रदर्शनियों के जरिये जनता का समर्थन हासिल किया जाता। इसलिये, जब आम लोगों की इन्द्रिय-रोगों सम्बंधी जाँच-पड़ताल शुरू हुई तो जनता ने न तो विरोध किया और न बेरुखापन दिखाया। ऐसे लोगों की संख्या बहुत कम होगई जिन्होंने रोगी होते हुये इलाज की तरफ लापरवाही का रुख अपनाया हो। डाक्टर स्काट ने बताया है कि सोवियत रूस में क़ानून यह है कि जो पुरुष या स्त्री अपनी इच्छा से, जान बूझ कर इन रोगों को फैलायेंगे उन्हें छः महीने से तीन साल तक की क़ैद की सजा दी जाएगी। परन्तु इस क़ानून को शायद ही कभी इस्तेमाल करने की जरूरत पड़ी हो।

डा० स्काट के अनुसार सोवियत रूस के मौजूदा इन्द्रिय रोग विरोधी अस्पतालों में आर्सेनिकल्स तथा सल्फोनमाइस दोनों का इस्तेमाल होता

था। यह अवस्था थी पैनिसिलिन चिकित्सा शुरू होने के पहले। पर सोवियत विशेषज्ञों ने जो अत्यन्त सफल द्रव्य तैयार किया है वह है ग्लूकोस्ट्रेप्टोसाइड अर्थात सल्फोनमाइड और ग्लूकोज का सम्मिश्रण।

युद्ध शुरू होने के पहले, १६४१ में, सिफलिस-विरोधी आन्दोलन ने रोग के प्रारम्भिक रूपों को क़रीब-क़रीब ख़त्म कर दिया था। १६३६ में मास्को के मैडिकल स्कूलों के विद्यार्थियों के सामने इस रोग के प्रदर्शन के लिये रोगियों को ढूँढ़ निकालना मुश्किल था। इस रोग के पुराने मरीज़ों में रोग के लक्षण तीस साल बाद भी उभर आते हैं। इसलिये, ऐसी सिफिलिस का इलाज अब भी जारी है।

डा० स्काट के भाषण पर अपना मत प्रकट करते हुए डा० आर० फारगन ने कहा है कि "रूस की फैक्टरियों में स्वास्थ्य-शिक्षा का जो काम किया है, उससे हम इंगलैंड की हालत की तुलना करें तो वह हमारे लिये चुनौती है। इसमें संदेह नहीं कि इङ्गलैंड में स्वास्थ्य और श्रम के मंत्री फैक्टरियों में स्वास्थ्य-शिक्षा को बढ़ावा देते रहे हैं। पर सोवियत रूस की स्वास्थ्य योजना से तुलना करने पर यह सब बहुत नाकाफी रहा है।" उन्होंने दोनों सरकारों के रवैये में अन्तर बताया। "आज से दो साल पहले इंगलैंड की फैक्टरियों में एक इश्तहार घुमाया जा रहा था जिसमें कहा गया था कि जिस किसी पुरुष या स्त्री को इन्द्रिय रोग का शक हो वह किसी डाक्टर से मिले या किसी अस्पताल में भर्ती हो जाय। पर सरकार के श्रम-विभाग ने ही इसका विरोध किया।"

एक दूसरे विशेषज्ञ डा० नबारो ने रूस के गाँवों में इन्द्रियरोग-विरोधी आन्दोलन का जिक्र किया है और कहा है "इतने बड़े देश में जब ऐसी सफलता हासिल हो सकती है तो ग्रेट ब्रिटेन जैसे देश के लिये तो यह बच्चों का खिलवाड़ होना चाहिये,—बशर्ते कि इरादा पक्का हो। पर, लगता है हमारे यहाँ तो ऐसे इरादे की ही कमी है।"

निश्चय ही, तथ्यों को छिपाया नहीं जा सकता। पूँजीवादी देशों के वैज्ञानिक और स्वास्थ्य-अधिकारी इन्द्रियरोगों पर काबू पाने के लिये खोजबीन और इलाज सम्बन्धी हर सुविधा का लाभ उठा रहे हैं। वे सिफालिस और गिनोरिया के एक हफ़्ते और एक दिन वाले इलाजों तक को ढूँढ निकालने में जुटे हैं। पर अकेली फ़ौज में ही बड़े सख़्त उपायों को लागू करके—जिन्हें आम नागरिकों पर लागू नहीं किया जा सकता—वे वास्तविक सफलता पा सकें। पर आगे क्या होने वाला है ?

हमारे देशों के वैज्ञानिक उसी स्वस्थ दृष्टिकोण की ओर अब धीरे २ झुकते आ रहे हैं जो अमरीकी पब्लिक हैल्थसर्विस के अधिकारी डा० रोगर ई० हियरिंग ने १६४३ में न्यूयार्क के ट्यूबरकुलेसिस एण्ड हैल्थ एसोसियेशन के सन्मुख व्यक्त किया था। उन्होंने कहा था :

"इन्द्रियरोगों पर काबू पाने के लिये किन्हीं रहस्यमयी शक्तियों की मदद की जरूरत नहीं होती। जरूरत होती है समस्या को समझने की, बीमारियों के बारे में कुछ जरूरी बातों को समझने की, मानव स्वभाव को समझने की और इस विश्वास की कि हाँ कुछ किया जा सकता है और किया जाना चाहिये। उन्होंने कहा : "वह बीमारियाँ संक्रामक होती हैं, इनका लग जाना कोई बेइज्जती की बात नहीं।" उन्होंने और आगे कहा : "अपराधी वैश्या नहीं है, वह तो एक सामाजिक समस्या है,... असली अपराधी तो वैश्याओं के शोषक हैं।"

उपरोक्त बातें इन्द्रियरोगों को खत्म करने का कार्य-क्रम नहीं कही जा सकती। पर कुछ बुनियादी बातें इनमें जरूर कही गई हैं। "एक रोज में सिफलिस के अचूक इलाज" को जो बेजरूरत महत्व दिया जा रहा था डा० हियरिंग ने उसकी ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया (एक पत्रिका में पौलाद क्रीक महोदय ने अपने एक लेख में ऐसे इलाज की कल्पना की थी)। डॉ० हियरिंग ने कहा कि एक ओर तो अवैज्ञानिक विचार और

दूसरी ओर सिफ़लिस के इलाज में उन्नति, दोनों ही "उस भय को हटाये दे रहे हैं जो बहुधा इन्द्रिय रोगों को रोकने में मददगार होता है।" १६४४ में अमरीका के जन स्वास्थ्य विभाग ने बताया कि अमरीका में गिनोरिया के मरीजों में ११ फ़ीसदी बढ़ती पायी गई है। इसका कारण सम्भवतः सल्फा-ड्रगों के द्वारा तुर्थ–पुर्थ इलाज का धुआँधार प्रचार था। देखा गया कि चिकित्सा सम्बन्धी अनुसन्धान से ज्यों ज्यों इलाज के तरीकों में उन्नति हुई है त्यों–त्यों नैतिक संयम भी ढीले पड़ते गये। कारण यह कि रोगों से पीड़ित होने का भय कम होता गया। इसीलिए अक्सर देखा गया है कि चिकित्सा में उन्नति के बावजूद रोगों में बढ़ती होती है। एक बड़े पैमाने पर ऐसी दवा खोज निकालने के प्रयत्न जारी हैं जिसका इस्तैमाल कर लेने भर से सिफलिस या गिनोरिया का डर जाता रहेगा। वैश्यावृत्ति और इन्द्रिय-भोग पर इसका क्या असर पड़ेगा यह सोचना मुश्किल नहीं। यह जानकर दुख होता है कि हमारे यहाँ के बड़े-बड़े चिकित्सक, जो जनता के स्वास्थ्य की रक्षा का दावा करते हैं, वैश्यावृत्ति को सिर्फ इसलिए बुरा ठहराते हैं कि उससे इन्द्रिय रोग बढ़ते और फैलते हैं। कुछ चिकित्सक तो अनैतिकता और व्यभिचार को व्यापक समस्या के बारे में सोचने-विचारने का कष्ट करना भी उचित नहीं समझते। वे कहते हैं, विज्ञान का इस समस्या का क्या ताल्लुक ?

ज़ार कालीन रूस में व्यभिचार और हमारे देशों में व्यभिचार में अन्तर है तो केवल इतना कि ज़ार सरकार के अन्तर्गत व्यभिचार को बढ़ती को खुल्लम खुल्ला माना जाता था और उसे रोकने पर सख़्त पाबंदी लगाई जाती थी, जब कि हमारे देशों में यह दिखावा किया जाता है कि यहाँ संगठित व्यभिचार समाज के सब से निचले अंग में है। आज हम "वैज्ञानिक" हो गये हैं, पर सिर्फ इतने कि बिना नाक-भौं सिकोड़े हम सिफलिस और गिनोरिया के बारे में बातें सुन और पढ़ लेते हैं। पर अनैतिकता की समस्या पर विचार करते समय हम इस सीमा से आगे नहीं

बढ़ना चाहते। हमारे यहाँ के बड़े-बड़े डाक्टर समझदार होने का दावा करते हैं। वे बातें भी बड़ी गम्भीर कहते और सुनते हैं। पर असलियत में उन्होंने जो कुछ किया है वह यह कि सामाजिक ढकोसले पर उन्होंने डाक्टरी बातों का मुलम्मा चढ़ा दिया है। वे बाबा और परबाबा के ज़माने के व्यभिचार विरोधी आन्दोलन को ही ज्यों का त्यों दुहरा रहे हैं। फ़र्क सिर्फ़ इतना है कि बाबा और परबाबा कहते थे: बेटे संयमी बनो, सदाचारी बनो। ये लोग कहते हैं- भाइयों, सल्फा-ड्रग और पेनिसिलेन का इस्तेमाल करो। डाक्टरों के बीच जो गुमराही फैली हुई है उससे और कोई नतीजा नहीं निकाला जा सकता। आख़िर उस बहस का और मतलब ही क्या है कि जाने माने वेश्यागृहों या ग़ैर-क़ानूनी जगहों पर केन्द्रित रखने पर जिन्हें पुलिस बरदास्त करती है— व्यभिचार को "सीमित" रखा जा सकता है। इसका उद्देश्य इस सड़ी-गली दलील को पेश करने के अलावा और कुछ नहीं है कि इन्द्रियरोग लगना ज़रा मुश्किल बना दिया जाय।

इतिहास बताता है कि बहुत पहले ही, ज़ारशाही रूस में, यह बहस अपनी अन्तिम सीमा तक पहुंच चुकी थी। लीजिये, हम लोग बुनियादी बातों को ही पकड़ें। इन्द्रिय रोग फैलते कैसे हैं! इन्द्रिय-भोग से। पुरुष और स्त्रियाँ इन रोगों के वाहक होते हैं। मानी हुई बात है, पुरुषों और स्त्रियों का अस्तित्व मिटाया नहीं जा सकता। उन्हें न तो अस्पतालों में बन्द किया जा सकता है, न क़ैद किया जा सकता है। वजह साफ है। हम न तो इतने अस्पताल बना सकते हैं, न चला सकते हैं जिनमें बेशुमार मरीज़ों को रक्खा जा सके। नहीं यह मुमकिन है कि इन्द्रिय रोग से पीड़ित लोगों को दूसरों से मिलने-जुलने न दिया जाय। समस्या हमें एक तरह की भूल-भुलैया में डाल देती है।

इस निराशावादी स्थिति से ही इस विचार-धारा को बढ़ावा मिला कि व्यभिचार और इन्द्रिय रोग, अनन्त काल तक क़ायम रहेंगे।

पर, अपने युग की विकसित सभ्यता को देख हम मानने को तैयार नहीं होते कि सिफलिस और गिनोरिया जैसी बलायें हमेशा हमसे चिपटी रहेंगी। इसीलिए, डाक्टरों ने सावधान होने की झण्डी दिखाई नहीं कि हमने भूल-भुलैयां में एक बार फिर चक्कर लगाना शुरू कर दिया।

महीने में पाँच करोड़ बार

इसके पहले कि व्यभिचार के खिलाफ़ सोवियत रूस के संघर्ष का हम विस्तार में वर्णन करें, यह अच्छा होगा कि अमरीका में इन्द्रिय रोगों के खिलाफ़ संघर्षों की बात पूरी कर ली जाय। पर्ल-हार्बर की घटना के बाद अमरीका में कई बार अलग-अलग जगहों में पूरी तैयारी के साथ इंद्रिय रोग विरोधी आन्दोलन चलाये गये हैं। सोवियत रूस में चलाये गये आन्दोलनों से ये कई बातों में भिन्न हैं। पर भिन्नता की सब से खास चीज यह है : अमरीकी आन्दोलनों में ज्यादा ध्यान चिकित्सा सम्बन्धी समस्याओं पर दिया गया; सोवियत-रूस में ज्यादा जोर दिया गया रोगों के सामाजिक कारणों को खत्म करने पर।

शुरू-शुरू के आन्दोलनों में सब से मुख्य सैक्रामेन्टो सिटी हैल्थ डिपार्टमेन्ट का आंदोलन है। यह अगस्त १६४१ में शुरू हुआ था। इन्द्रिय-रोगियों की संख्या में बढ़ती का मूल कारण उन दिनों वेश्याओं और विक्ट्री-गर्लों को समझा जाता था। डाक्टरों और पुलिस ने इनके खिलाफ़ जैसी कार्यवाई करने का सुझाव दिया था क़ानून ने उसे मुश्किल बना दिया था। इसलिये उपरोक्त स्वास्थ्य विभाग ने हल का एक नया उपाय सोचा। इन्द्रिय रोगों सम्बंधी एक प्रयोग शाला खोली गई। तमाम पुरुष नागरिकों और फ़ौजियों से कहा गया कि वे ठीक ठीक इलाज के लिए इस चिकित्सा-केन्द्र में उपस्थिति हो जायें।

इस प्रयोगशाला का उद्देश्य बहुत सीधे-सादे शब्दों में बताया जा सकता है। यह केन्द्र शाम को सात बजे से सुबह तीन बजे तक खुला

रहता था। यही वह समय होता जब लोगों के इंद्रिय रोग हासिल करने की सम्भावना ज़्यादा होती थी। एक कम्पाउन्डर प्रयोगशाला में ऐसी दवायें लिये तैयार रहता जिनके इस्तेमाल से सिफलिस और गिनोरिया के होने का डर जाता रहता। प्रयोगशाला चट बीमारी पट इलाज के लिए बड़े काम की थी। यह एक मकान के नीचे के हिस्से में स्थित थी। इसका एक दरवाज़ा सड़क की तरफ था। इस दरवाज़े पर लिखा था "इंद्रियरोगों के इलाज का केन्द्र" यहाँ एक हरी बत्ती जला करती थी। अन्दर बहुत मामूली सा सामान रहता। दिन के वक़्त स्वास्थ्य-विभाग के विशेषज्ञ और सामान ले आते थे। इसलिये दिन में इलाज का ज़्यादा अच्छा प्रबन्ध रहता था।

"प्रचार" के दो तरीके अख़्तियार किये गये। पहला तो यह: तमाम जानी-मानी वैश्याओं और आवारा औरतों से कहा गया कि अगर तुम नहीं चाहती कि तुम्हारे सम्पर्क में आने से लोगों को इन्द्रिय रोग फैलें और पुलिस तुम्हें भगाने पर तुल जाय तो अपने पास आने वाले सभी लोगों को तुम फौरन इस जगह भेज दिया करो। दवा लगवाकर रोग से उनकी बचत हो जायगी। प्रचार का दूसरा तरीका कम सीधा-सादा था। तमाम नाच घरों, शराब खानों में सैकड़ों इश्तहार चिपकवा दिये गये थे। इन इश्तहारों में नीचे लिखी इबारत होती थी:

जO ॥ इन्द्रियरोगों से बचा जा सकता है।

ज० ॥ मुफ़्त इलाज

१५ मिनट के भीतर—भीतर

पहुँचिये

स्वास्थ्य-विभाग के मुफ़्त चिकित्सा केन्द्र में

(यहाँ पता रहता था)

कम्पाउण्डर ड्यूटी पर मिलेगा

थोड़े लोग बाकी रह जाते। जान बूझ कर टाल जाने वाले लोग सिर्फ इक्के-दुक्के ही होते थे।

रक्त-जाँच के ४८ घन्टे के भीतर ही भीतर प्रयोगशाला से रिपोर्ट केन्द्रीय-दफ्तर पहुँच जाती थी। अगर रिपोर्ट बताती कि खून साफ है तो मामले को, आगे न बढ़ाया जाता जिन लोगों को तीन दिन के भीतर ही भीतर स्वास्थ्य विभाग से कोई समाचार न मिलता वे समझ लेते कि उनके खून में कोई गड़बड़ी नहीं है। पर जब प्रयोगशाला से किसी के बारे में रिपोर्ट मिलती कि उसके खून में खराबी है तो विशेष पड़ताल करने वाले लोग इन मरीजों की तलाश में निकल पड़ते। इन मरीजों को एक डाक्टर के द्वारा अपने खून की जाँच दुबारा करवानी पड़ती।

जाँच के लिए उम्र के हिसाब से लगभग २९०,००० लोग आन्दोलन के अन्तर्गत आये। कुल मिलाकर ३००,००० लोगों के रक्त की जाँच हुई। इनमे ऐसे लोग भी शामिल थे जिन पर शक था कि उनकी जाँच हो चुकी है या नहीं, ऐसे लोग भी जिनके रक्त की दुबारा जाँच हुई। ९० फी सदी से ज़्यादा लोग अपने-आप जाँच कराने के लिये उपस्थित हुए थे।

इस जाँच के परिणामों से डाक्टरों ने सिफलिस के मरीजों के जो आँकड़े बताये थे उनकी पुष्टि हुई। २९०,००० लोगों में से लगभग ४०,००० लोग यानी १३·७ फी सदी लोग सिफलिस से पीड़ित थे।

यह हालत थी युद्ध-काल में। बाद के कुछ ही सालों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये। पेनिसिलेन तथा दूसरी दवाओं से इन्द्रियरोगों के इलाज की भारी उन्नति हुई। "तुर्तफुर्त इलाज" के दर्जनों 'केन्द्र' अमरीका में क़ायम हुए। इन्द्रिय-रोगों के 'खात्मे' के बारे में कुछ अधिकारियों ने बड़े उत्साह से बातें करना शुरू कर दीं।

पर युद्ध बंद होने के बाद मानों इन आशाओं पर तुषारपात हो गया।

हो। नई दवाओं के बावजूद कनाडा और अमरीका में इन्द्रिय रोगों की और भी बढ़ती हुई। कुछ लोगों का कहना है कि इंद्रियरोगों की बढ़ती का मुख्य कारण ये दवायें ही थीं जिनसे "बड़ी जल्दी और आसानी से" इलाज हो जाता था। ध्यान देने की बात यह है कि कनाडा और अमरीका दो ऐसे देश थे जिनमे पेनिसिलेन का इस्तेमाल कई साल तक धुआँधार तरीक़े से हुआ। इन्द्रिय रोगों से बचाव के तमाम सामान लाखों फौजियों में बाँटने के बाद अमरीका और कनाडा दोनों की ही फौजों को १६४५ में स्वीकार करना पड़ा कि इंद्रिय-रोगों की दर और भी बढ़ रही है।

दिसम्बर १६४५ में मैंने सर्जन जनरल के वाशिंगटन स्थित दफ्तर के इंद्रिय रोग विभाग के प्रमुख अधिकारी लेफ्टिनेन्ट-कर्नल थामस स्टर्नबर्ग से टेलीफोन पर बातचीत की। उन्होंने मुझ से जो बातें कहीं वे ये हैं :

"पिछले साल के मुक़ाबले इस साल नवम्बर में इन्द्रिय-रोगों की दर दुगनी हो गई है। पहले, एक हज़ार लोगों के पीछे लगभग ३० व्यक्ति इंद्रिय-रोगों से पीड़ित होते थे, अब इनकी दर एक हजार के पीछे ६० है। १६४४ में मरीज़ों की संख्या औसतन एक हज़ार के पीछे ३३ थी। हमारी फ़ौज में हर जगह इन्द्रिय-रोगियों की संख्या में बढ़ती हुई है। पर बढ़ती की दर अलग-अलग जगहों पर अलग-अलग है। फिलीपीन और दक्षिणी-पैसिफिक में यह दर एक हज़ार के पीछे क्रमशः ८० और १०० है। सब से ज़्यादा बढ़ती योरुप में पाई गई है,—खास तौर से विजय-दिवस के बाद। युद्ध बंद होने से पहले वहाँ एक हज़ार के पीछे ४० की दर थी। अब यह दर एक हज़ार के पीछे १७० की है। इस तरह इन्द्रिय रोगियों की संख्या में ३२५ प्रतिशत बढ़ती हुई है।"

मैंने पूँछा : "इतनी ज़्यादा बढ़ती की वजह क्या है?"

उन्होंने कहा : "यह कोई ताज्जुब की बात नहीं है। तमाम

हैं। उनपर चुनाव-कर तो लगाया ही जाता है; उनकी शिक्षा और रहन-सहन का स्तर भी बहुत नीचा है। फिर भी, इन्द्रिय रोग विरोधी यह आन्दोलन काली और गोरी दोनों जातियों के लिये चलाया गया था।

प्रचार के बड़े सनसनी खेज तरीके अपनाये गये। सभी खास-खास सड़कों पर बड़े २ इश्तहार चिपकवा दिए गए। इनमें लिखा था: "इन्सान को अपाहिज बना देने वाले महारोग गिनोरिया का पेनिसिलिन से सिर्फ चार घन्टे में इलाज!" "पेनिसिलिन से सिफलिस का इलाज सिर्फ नौ दिन में!" प्रचार के हर एक साधन को मैदान में उतार दिया गया। सड़कों-सड़कों प्रचार करने वाली मोटर-गाड़ियाँ घूमने लगीं। हर आध-आध घंटे बाद रेडियो से भी प्रचार होने लगा। अमरीकी जन-स्वास्थ्य विभाग ने बड़ी तत्परता से सहयोग दिया। कितने ही प्रसिद्ध स्वास्थ्य अफ़सरों ने भी हाथ बटाया। आन्दोलन को फैलाने के लिये लगभग एक हज़ार पुरुषों, स्त्रियों और लड़कियों ने सेवकों का काम किया। इन स्वयं-सेवकों में कुछ व्यापारिक संगठनों, कुछ मजदूर संगठनों, कुछ महिला-क्लबों-यहाँ तक कि कुछ गिरजाघरों-के लोग भी शामिल थे।

देखने वाले दाँतों तले उँगली दबाते थे। वह बरमिंघम जहाँ के नागरिक कुछ ही साल पहले सिफलिस और गिनोरिया का नाम सुनकर "शिव-शिव" करने लगते थे, अब इन्द्रियरोग विरोधी आँदोलन का बड़े उत्साह से समर्थन कर रहे थे। अखबारों ने तो एक नया नारा पकड़ लिया था: "अपने मित्रों और रिश्तेदारों से ब्लड-टेस्ट के केन्द्रों में मुलाक़ात करो!"

आँदोलन मई महीने के बीच में शुरू हुआ और पूरे जून भर जारी रहा। इस तरह का और इतना बड़ा जन-आन्दोलन निस्सन्देह, अब तक दुनिया में कहीं नहीं हुआ था। इससे पहले कभी भी इतने बड़े

पैमाने पर इंद्रियरोगों की परीक्षा का आयोजन नहीं किया गया था। हिलमन म्यूनिसिपल अस्पताल में एक खास प्रयोगशाला खोली गई। यह प्रयोगशाला म्युनिसिपल अस्पताल के उस कमरे में जहाँ, पहले मुर्दे रखे जाते थे खोली गई थी। सब से बड़ी प्रयोगशाला खोली गई।

इस प्रयोगशाला का नाम कुछ ही दिनों बाद 'जाओ—लौटो' पड़ गया। वजह यह थी कि इसमें काम करने वाले नागरिक और फौजी-विशेषज्ञ एक दिन में दस हजार लोगों के खून की जाँच करते थे। ४२ दिन में ३००,००० लोगों के खून की जाँच की गई। खून की जांच के जगह—जगह केन्द्र थे। वहाँ से खून के नमूने की शीशियाँ टैक्सी-गाड़ियों में भरकर प्रयोगशाला में पहुंचाई जाती थी। खून की जाँच मज़िजनी माइक्रोस्कोप के तरीके से की जाती थी। इससे सौ फीसदी सही ही जाँच नहीं होती थी; पर इससे जांच जल्दी होती थी। ज्यादा तत्परता से जाँच कर सकना मुश्किल भी था। वजह यह थी कि स्वयं-सेविकाओं को एक दिन में २०,००० ट्यूब १२,००० काँच की पट्टियाँ धोनी पड़ती थीं। क्लर्कों और खून के नमूने लेने वालों पर काम का बेहद बोझ रहता था। रक्त—जाँच के केन्द्रों की हालत चुनाव-केन्द्रों जैसी होती। एक क्लर्क तो हर नागरिक का नाम, पता, उम्र और टेलीफून नम्बर लिखता तथा उसे एक काँच का ट्यूब और उसी नम्बर का एक सफेद कार्ड देता। ट्यूब रक्त की जाँच के वास्ते होता था और कार्ड इस बात का सबूत कि इस नागरिक के रक्त की जाँच ली जा चुकी है। दूसरे क्लर्क रंगीन पर्चियों पर यही पता और नम्बर लिख लेते। ये पर्चियां एक केन्द्रिय दफ्तर में भेज दी जातीं। जिन लोगों के खून में रोग के कीटाणु मिलते उनका पता लगाने में इन पर्चियों से मदद मिलती थी। इस बात की पूरी-पूरी कोशिश की जाती कि हर एक के खून की जाँच या तो उनके निजी डाक्टर लेते या उन्हें अस्पताल जाना पड़ता। राशन कार्डों के पतों के आधार पर पूरी आबादी की जाँच हो जाती। मुश्किल से बहुत

चिकित्सा केन्द्र शुरू होने के पहले चार महीनों में ही लगभग चार हजार व्यक्ति इलाज के लिये यहाँ पहुँचे थे। इनमें नागरिकों और फ़ौजियों की संख्या बराबर-बराबर थी। रोग लगने के ख़तरे और इलाज के लिये पहुँचने के बीच के वक़्त को लोग आमतौर से १५ मिनट बतलाते थे। चूँकि इलाज कराने वालों के बारे में सूचना गुप्त रखी जाती थी, इसलिये उनके नामों की फेहरिश्त नहीं रक्खी गई। इस तरह इस बात का भी कोई सबूत मौजूद नहीं कि ये दवायें दरअसल सिफलिस और गिनोरिया से बचाव में कामयाब हुईं। अन्दाज है कि वे कामयाब होती होंगी। पर, चूँकि किसी तरह के आँकड़े नहीं रखे गये और जाँच कर सकने की गुंजाइश मौजूद नहीं रही, इसलिये इस पूरी योजना को एक अवैज्ञानिक रूप दे दिया गया। (लोगों के 'केन्द्र' में पहुँचने पर कम्पाउन्डर उनसे पूछता कि आपने रोग किसी वैश्या से, किसी आवारा लड़की से या किसी बदचलन लड़की से हासिल किया है। इस प्रश्न के उत्तर को ही स्वास्थ्य विभाग की फाइल में दर्ज किया जात था!) सैक्रामेन्टो नगर के अस्पताल के डा० रसेल फ्रांज ने अगस्त १९४२ के वेनरल डिजीज इन्फर्मेशन में कहा : "इस बात की दुबारा तहक़ीक़ात की जरूरत है कि एक बड़े पैमाने पर नागरिकों में सफल इंद्रियरोग विरोधी दवा का इस्तेमाल मुमकिन है या नहीं।"

अन्य नगरों में भी ऐसे ही प्रयोग किये गये। उनका वर्णन करना ऊपरी बातों को दोहराना होगा।

परिस्थिति में परिवर्तन हुआ १९४४ में। पैनिसिलिन बड़े पैमाने पर तैयार किया जाने लगा। सिफलिस और गिनोरिया के इलाज में उससे आश्चर्यजनक सफलता मिली। अब इस बात की उम्मीद पैदा हुई कि इन्द्रिय रोगों को न सिर्फ रोका जा सकता है बल्कि पूरी तरह जीता जा सकता है। फौज और नौ-सेना को इस बात की अपूर्व सुविधायें थीं कि हजारों आदमियों पर बड़ी सावधानी से अनेकों प्रयोग किये जा सकें।

साथ ही इंद्रिय रोगों की जाँच के तरीकों को भी सुधारा गया। इस तरह एक व्यापक पैमाने पर डाक्टरी और सामाजिक आंदोलन चलाना मुमकिन हो सका।

पहला आंदोलन शुरू हुआ अलाबामा में १६४३ में विलफौक्स काउन्टी का धनी ज़मींदार सिनेटर ब्रूस हेंडरसन एक क़ानून पास कराने में सफल हुआ। इसके अनुसार १४ से ५० साल तक के सभी नागरिकों को अपने खून की परीक्षा करवाना आवश्यक हो गया ताकि यह जाना जा सके कि उन्हें सिफलिस है या नहीं। एक दूसरे क़ानून से यह जरूरी हो गया कि जिन लोगों में रोग पाया जाय वे अपने डाक्टर से या सरकारी डाक्टर से इलाज करवायें। सरकारी डाक्टर मुफ्त इलाज करता था। जो लोग खून की परीक्षा देने से इनकार करते या टाल मटूल करते उनपर १०० डालर के जुर्माने की व्यवस्था थी। यही सजा उन लोगों के लिये थी जो रोग से पीड़ित होने पर भी इलाज न करवाते। एक सिर फिरे सिनेटर ने ये क़ानून बड़ी लापरवाही से पास करवा दिये थे। उस समय में भी ख़्याल न किया जा सकता था कि ये क़ानून अंत में कितने बड़े स्वप्न आंदोलन का रूप धारण कर लेंगे।

सिनेटर हेंडरसन का मकसद साफ ज़ाहिर है। अपने क्षेत्र में से वह इंद्रिय रोगों को उखाड़ फेंकना चाहता था। इससे उसे लाभ ही लाभ था। हर साल नीग्रो मजदूरों के खून की परीक्षा लिये जाने से चिकित्सा पर पहले जितना व्यय होता था अब उतना न रह गया। अब व्यय में ७५ प्रतिशत कमी हो गयी। हेन्डरसन ने देखा कि इस उपाय से खर्चे की बचत की जा सकती है।

साल भर में खून की परीक्षा के लिये सिर्फ ७५ हजार डालर राज्य की ओर से मंजूर किये गये। प्रयोग के लिए बरमिंघम का क्षेत्र चुना गया। वहाँ की आबादी लगभग पाँच लाख है। आबादी का ४० फी सदी हिस्सा नीग्रो लोगों का है जो हर प्रकार के शोषण से पीड़ित रहते

लड़ाइयों के बाद यही हुआ है। लड़ाई के बाद आमतौर से ढील आ जाती है। फौजियों के पास अब वक्त की कमी नहीं रहती। समुद्र पार वे इंतज़ार किया करते हैं कि कब उनके देश के लिये जहाज़ रवाना हो और कब वे घर जायें ... बैठे-बैठे ये ऊबने लगते हैं। और तब मनोरंजन के दूसरे साधनों की तलाश करते हैं। शहरों में उन्हें ज़्यादा छुट्टी मिलती है और यही रोग पकड़ने की उनके लिये सबसे ज़्यादा सम्भावना रहती है।"

"किन्तु कर्नल साहब" मैंने पूछा, "सब से महत्वपूर्ण कारण आप किसे ठहरायेंगे?"

"उत्तर स्पष्ट है। सब से महत्वपूर्ण कारण इंद्रिय-भोग है" उन्होंने कहा।

मेजर जार्जस लेकलेरे कनाडा की फ़ौज में इसी पद पर नियुक्त थे। उन्होंने कनाडा की फ़ौजों में इसी तरह इंद्रिय-रोगों की बढ़ती बताई। अनेकों अमरीकियों और कनाडा के नागरिक अधिकारियों से मैंने पूँछ ताँछ की। उन्होंने माँग की कि उनके उत्तर अख़बारों में न छापे जायें। पर उन सबके उत्तर मिलते-जुलते थे। युद्ध ख़त्म होने के बाद से इंद्रिय-रोगों में भयानक बढ़ती देखी गई है और खतरा यह है कि इंद्रिय-रोग इस बुरी तरह फैलेंगे जैसे कभी देखे-सुने नहीं गये थे। फ़ौजी तो ऐसा रवैया अख्तियार कर रहे हैं मानों वे समूची पुरानी शिक्षा को भूल गये हों। रोगों की जाँच-पड़ताल कराने और इलाज कराने में अब वे दिलचस्पी नहीं लेते। हालत इतनी नाजुक होगई है कि न्यूयार्क स्टेट मेडिकल 'जर्नल' को नवम्बर में चेतावनी देनी पड़ी कि फौज से लौटने वालों के परिवार उनसे सावधान रहें। 'जर्नल' ने कहा: ये फौजी अपने साथ सिफलिस और गिनोरिया को भी ला रहे हैं।

कनाडा की हेल्थ लीग (स्वास्थ्य संगठन) के सुप्रसिद्ध डायरेक्टर

डाक्टर गौर्डन बोट्स अनेक वर्षों तक इन्द्रिय रोग विरोधी आन्दोलन के भी अगुआ रहे हैं। उन्होंने कहा :

"यह जानी-मानी बात है कि बहुत से लोग—जिन्हें ज़्यादा बुद्धिमानी से काम लेना चाहिये था—सोचने लगे हैं कि इन्द्रिय रोगों के बारे में मोटी २ बातें बता देना और जाँच-पड़ताल व इलाज की सुविधा कर देना ही इन्द्रिय-रोगों की रोक-थाम के लिये काफ़ी है। कुछ और लोग हैं जो इस बात पर अड़े हैं कि इंद्रिय रोगों के बारे मे सभी मूल बातें बताई जावें, मानों इस शिक्षा से ही सिफलिस और गिनोरिया की रोकथाम हो जावेगी। यह साफ़ जाहिर है कि यदि आदेशों के बूते पर ही इंद्रिय-रोगों की रोक-थाम की गई तो शिक्षा और बेहतर इलाज से सिर्फ इतना फायदा होगा कि किसी व्यक्ति विशेष के रोग की अवधि कम हो जाय। किन्तु नैतिक और सामाजिक रोक—थाम को भुला देने का परिणाम यह होगा कि रोग हासिल करने की दर बढ़ सकती है, इस तरह रोगियों की संख्या फिर बढ़ जायगी।"

डा० बोट्स ने और भी सफाई से कहा : "नैतिकता के आधार पर इन्द्रिय—रोगों की रोक-थाम की बात करना तो जैसे फैशन के खिलाफ बात हो गई है। लेकिन नैतिकता के बिना इंद्रिय रोगों की रोक-थाम कर सकना असम्भव है। ऐसी नैतिकता के बिना इंद्रिय-रोगों की रोक—थाम कर सकना असम्भव है जो हमारे आचार व्यवहार और हमारी सामाजिक परिस्थितियों, दोनों को ही, प्रभावित करे।"

निश्चय ही यह दृष्टिकोण फौजी डाक्टरों के दृष्टिकोण का विरोधी है। अमरीकी सेना में इन्द्रिय-रोग विरोधी आंदोलन की बाबत हम लारीमोर और स्टर्नबर्ग की रिपोर्ट का पहले हवाला दे आये हैं। ताज्जुब है कि इन अधिकारियों ने नैतिक दलीलों को निरर्थक बता कर टाल दिया। इन्द्रिय-रोगों के खिलाफ़ फ़ौज के संघर्ष का उद्देश्य सिर्फ इतना था : रोग ज़्यादा लोगों को न लगने

जायें। डा० लारीमोर और स्टर्नबर्ग के अनुसार फौजी आन्दोलन की सफलता सिर्फ एक निर्णायक बात से जाँची जा सकती है : फौज में कितने "प्रोफीलैक्टिकों"* का इस्तेमाल किया गया? (यह 'सफलता' ऐसी थी जो युद्ध खत्म होते ही खत्म हो गई और इन्द्रिय रोगों में फिर भयानक बढ़ती शुरू हो गई)।

अनैतिकता की समस्या को चूंकि हम चिकित्सा तक ही सीमित नहीं रख रहे हैं, इसलिये इन "प्रोफीलैक्टिकों" के बारे में हमें निश्चित राय क़ायम कर लेनी होगी।

इन्द्रिय-रोगों के खिलाफ अपने संघर्ष की सफलता को अलग-अलग जगहों पर और अलग-अलग वक्त फौज ने किस तरह जाँचा?

उसने पता लगाया कि मुफ़्त दिये गये "प्रोफीलैक्टिकों" में से कितने "प्रोफीलैक्टिक" लोगों ने लिये हैं।

यह संख्या इस बात को भी सूचित करने वाली है कि इन दवाओं की मदद से फौजियों ने लगभग कितनी बार इन्द्रिय भोग किया।

इस संख्या को सुनकर बहुत से लोग चौंक पड़ेंगे। आपको विश्वास न होगा। १९४५ के आरम्भ मे अमरीकी फौज में हर महीने पाँच करोड़ "प्रोफीलेक्टिकों" की खपत थी।

यह है फौजी आन्दोलन की सफलता की असलियत। पादरियों और नीतिज्ञों से नफरत करने वाले भी यह देखकर एक बार चौंक उठेंगे कि अमरीकी फौज के अस्सी लाख जवान एक महीने में पाँच करोड़ प्रोफीलैक्टिकों का इस्तेमाल करते हैं।

इतिहास में कभी भी किसी राष्ट्र ने इतने बड़े पैमाने पर निरर्थक इन्द्रिय भोग का घमंड नहीं किया था।

ज़रा सोचिये तो—महीने में पाँच करोड़ बार।

---

* इन्द्रिय रोगों से बचाव का सामान।

१९४५ से अब तक जो कुछ हुआ है वह इन्हीं बातों की पुष्टि करता है। उसे लेकर अध्याय के अध्याय लिखे जा सकते थे। पर संक्षेप में उसे इस तरह बताया जा सकता है।

एक अमरीकी फौज में—खास तौर से समुद्रपार गए फौजी दस्तों में—इन्द्रिय रोगों की दर पहले की तरह ही ऊँची है।

दूसरे—पाँच साल तक लगातार अमरीकी नागरिकों की जाँच-पड़ताल और इलाज जारी रहे। पर इंद्रिय रोगों ने घटने का नाम नहीं लिया। २३ मार्च १९५२ की अमरीकी मेडिकल असोसियेशन की रिपोर्ट से यही सिद्ध होता है। इस रिपोर्ट में जाजिया स्थित अटलांटा नगर में पाँच साल तक इन्द्रिय-रोगों के खिलाफ़ संघर्ष का वर्णन है। दो लाख पचास हजार से भी ज़्यादा नागरिकों की जाँच की गई थी। जितने लोगों को भी इन्द्रिय रोगों से पीड़ित पाया गया उनका फौरन और मुफ्त इलाज किया गया। पर आंदोलन के अन्त में डाक्टर देखते यह हैं कि एक हजार के पीछे १०० लोग सिफलिस के रोगी हैं।

इस रिपोर्ट में गिनोरिया का नाम नहीं लिया गया था। मुझे सूचना मिली है कि गिनोरिया के मरीज़ों क संख्या तो और भी ज़्यादा है।

स्पष्ट शब्दों में कहा जाय तो अमरीकी अपने आप को 'सभ्य नैतिकता' का ठेकेदार बताते हैं। पर इन्द्रिय रोगों की आज वहाँ ऐसी बढ़ती हो रही है जैसी शायद दुनिया के किसी सभ्य देश में पहले नहीं देखी गई थी।

—:०:—

पाप के विरुद्ध पाँचसाला योजना

अनैतिकता के खिलाफ सोवियत–संघर्ष का अध्ययन हम फिर शुरू करते हैं। १६२६ की गर्मियों में यह संघर्ष अपनी पूरी तीव्रता पर पहुँच गया। वैज्ञानिक रूप से संगठित योजना के अनुसार सरकार के बड़े-बड़े आठ मंत्री विभाग इस काम को लेकर आगे बढ़े

श्रम के कमिसार को तमाम अकेली औरतों और अस्पतालों में उत्तीर्ण ग्रेजुएटों को काम देने की जिम्मेदारी सम्भालनी पड़ी। सामाजिक सुरक्षा के कमिसारियट ने औरतों के ट्रेनिंग केन्द्रों और कारखानों को राष्ट्र व्यापी पैमाने पर फैलाने का काम संभाल उन सभी औरतों के रहने के लिये, जिनके अनैतिक प्रभावों के जाल में फँसने की सम्भावना थी, अच्छे मकानों की व्यवस्था की गई।

जन-स्वास्थ्य के कमिसारियट ने अस्पतालों को और बढ़ाया, इंद्रिय विशेषज्ञों को तेजी से शिक्षित करना शुरू किया, ठुकराई हुई माताओं को मदद के लिए विराट योजना तैयार की और माताओं और शिशुओं की सुरक्षा के केन्द्र खोले।

न्याय के कमिसारियट ने संगठित व्यभिचार के अवशेषों पर अन्तिम हमला बोला पिछले दिनों न्याय के कमिसारियट ने सेना का पुनर्संगठन किया और समाज के प्रति आदर की भावना से पूरित अत्यंत कुशल पुलिस–दल भी तैयार कर लिया था। १६२६ से पहले के पाँच सालों में व्यभिचार के कुछ संचालक जो पकड़े नहीं जा सके थे इधर-उधर लुक–

छिप गये थे। उन्होंने मानसिक रूप से विकृत लड़कियों और औरतों को अपने जाल में फाँसना शुरू किया था। न्याय विभाग का साथ देते हुए घरेलू मामलों के कमिसारियट ने छिपे व्यभिचार गृहों को ढूँढ निकालने के लिए नये जासूस तैयार किये। इन व्यभिचार गृहों को चलाने वालों के लिये भारी सजा की व्यवस्था थी। ठेकेदारों को खत्म करने के काम में सभी लोग मदद देने लगे। जन-निरीक्षण के कमिसारियट ने लोगों में यह चेतना भरने में कुछ भी नहीं उठा रखा कि इस संघर्ष में भाग लेना हर एक की व्यक्तिगत जिम्मेदारी और सामाजिक कर्तव्य है। नवयुवकों में व्यभिचार की भावना भरने वाले लोगों के खिलाफ आलोचना को और भी तीखा बनाया गया।

अन्त में, व्यापार और धन के कमिसारियटों से कहा गया कि वे तमाम संगठनों, संस्थाओं, अस्पतालों, कारखानों, और "रक्षा के केन्द्रों" को धन से जितनी मदद पहुँचा सकें, पहुँचायें।

इस प्रकार वेश्यावृत्ति के खिलाफ जो संघर्ष शुरू हुआ उसमें नये परिवर्तन हुए। अब इस संघर्ष ने व्यभिचार और अनैतिकता के खिलाफ राष्ट्र व्यापी संघर्ष का रूप धारण कर लिया।

व्यभिचार के खिलाफ वैज्ञानिक हमले अब दिनों दिन महत्वपूर्ण रूप धारण करने लगे। बेरोजगारी के खत्म होने के साथ-साथ ग़रीब औरतों की संख्या भी नहीं के बराबर रह गई। वेश्यावृत्ति का आर्थिक पहलू अब सीधा-सादा नहीं रह गया था। अब यह नहीं कहा जा सकता था ग़रीबी की वजह से औरतें व्यभिचार को अपनी जीविका का साधन बनायें। हाँ कुछ औरतें ऐसी जरूर थी जो ग़रीबी में जीवन बिताते २ सोच बैठी थी कि व्यभिचार के अलावा वे किसी और लायक हैं ही नहीं। समस्या थी उन्हें कैसे सुधारा जाय। स्वाभाविक था कि जब तक ऐसी थोड़ी औरतें भी समाज में रहेंगी तब तक ऐसे पुरुष भी रहेंगे जो उनके

पास भोग लालसा की तृप्ति के लिए जायें। यह भी सम्भव था कि ये औरतें अपना एक छोटा सा गिरोह बना लें और नयी उमर की तथा ढुलमुल औरतों को अपने जाल में फांसना शुरू कर दें।

सम्भवतः "वैश्यावृत्ति के इस अखाड़े से निपटने का सब से सरल उपाय यह होता कि ऐसी तमाम औरतों को गिरफ्तार कर लिया जाता। उन्हें सुधार से परे घोषित करके किसी संस्था के सुपुर्द कर दिया जाता। लेकिन सोवियत अधिकारियों ने इस रास्ते को अपनाने से साफ इन्कार कर दिया। अन्त तक वे इसी वैज्ञानिक नैतिक सिद्धान्त पर अड़े रहे कि वेश्या किन्ही विशेष आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों की उपज है; कि वह भी इंसान है; कि वह समाज में एक 'गुलाम और शोषित' स्त्री है, जिसे नई, लाभदायक तथा बलवती सामाजिक शक्तियों की सहायता से ही सुधारा जा सकता है। अस्पताल–कारखानों को जो नागरिक समिति सहायता करती थी उससे सलाह मशविरा लेने के बाद सोवियत मनो–वैज्ञानिकों ने इन केन्द्रों में और भी परिवर्तन करने का फैसला किया।

परिस्थिति में किसी बुनियादी परिवर्तन के कारण ही ऐसा कदम उठाया गया। १६२४ में इन अस्पतालों में रहने वाली एक चौथाई औरतें पेशेवर वैश्यायें थीं बाकी गैर पेशेवर; १६३४ में इलाज के बाद गैर पेशेवरों की संख्या घटकर २५ फी सदी और पेशेवरों की ७५ फीसदी रह गई। बहुत से अस्पताल बन्द हो गए थे। बाकी बची मरीजों में ज्यादा संख्या उनकी थी जिनके रोग इलाज से परे थे। बहुत सी ऐसी थीं जिनमें मानसिक विकार के चिन्ह स्पष्ट दिखाई देते थे। मनोवैज्ञानिकों का कहना था कि यह लम्बे अरसे तक दरिद्रता में जीवन बिताने का नतीजा था। वे बड़ी लगन से ऐसी मरीजों का इलाज करने में जुट पड़े। हमारे देशों के विशेषज्ञ जो तरीके अपनाते हैं इनसे ये तरीके भिन्न थे। सोवियत वैज्ञानिकों ने किसी स्त्री के मनोविकारों पर ही अपना ध्यान केन्द्रित नहीं किया। उन्होंने उसके आस पास के सामाजिक–आर्थिक

वातावरण में सुधार करना शुरू किया ताकि वह स्वस्थ नैतिक जीवन बिता सके।

उनके तरीके अत्यंत सरल और तर्कसंगत थे। १९३४ में अस्पताल कारखाने खुले-केन्द्र न रह गये। अब भी औरतों को इनमें भर्ती होने के लिये मजबूर नहीं किया जाता था; पर एक बार इलाज कराने के लिए राजी हो जाने पर उन्हें वहाँ दो साल तक जरूर रहना पड़ता था। अस्पतालों की दिनचर्या एक दम बदल दी गई।

पहले इन अस्पतालों में दिनचर्या गाँव के स्वास्थ-केन्द्रों की दिनचर्या से मिलती जुलती थी,-तड़के उठना, वक्त पर खाना, आराम के बंधे घंटे, दिन में मामूली काम, निश्चित समय पर इलाज मनोरंजन और पढ़ाई-लिखाई, रात को जल्दी सोना। अधिकांश महिलाओं और लड़कियों की यही दिनचर्या थी। पर पुरानी पेशेवर वैश्याओं पर इसका उल्टा असर पड़ता। सालों से उनकी आदत हो गई थी अपनी दिन-चर्या रात शुरू होने पर प्रारम्भ करने की। रात में जल्दी सोना उन्हें बहुत मुश्किल मालूम होता था। वे बिस्तर पर पड़ी-पड़ी करवटें बदला करतीं। धीरे-धीरे उनके दिल में अस्पताल की तरफ से नफरत पैदा होने लगती। रात को सड़कों पर इधर-उधर भटकने की उनकी पुरानी आदत फिर रंग दिखाने लगती।

अस्तु, दिनचर्या को बदलने के लिये घड़ी की सुई उल्टी घुमा दी गई। अब अस्पताल-कारखाने की दिनचर्या शाम से शुरू होती और सुबह तड़के खत्म होती सोकर उठने का समय दोपहर को हो गया था। बाद के काम इसी हिसाब से होते। नतीजा यह कि अस्पताल में भर्ती होने पर वैश्या देखती उसके काम के घंटों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। रात को जब वैश्याओं की इच्छा मर्दों को तलाश करने की होती, तभी उन्हें लाभदायक कामों में लगाया जाता। इससे उनके इलाज में बड़ी मदद मिलती।

मनोविज्ञान का उपरोक्त सिद्धांत बिल्कुल स्पष्ट है। पुरानी वेश्याओं में दो खास मनोवृत्तियाँ थीं। एक शक्तिशाली मानसिक प्रतिक्रिया के फलस्वरूप तो उनमें रात को ज़्यादा काम करने की आदत होती। दूसरी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप अच्छे काम की तरफ झुकाव होने के बजाय उनमें काम से खिंचाव की आदत होती। इन दोनों आदतों को यकायक छुड़ा देना असम्भव था, मरीजों में निराशा हो बढ़ती। इसलिए अलग-अलग मरीजों के लिए अलग-अलग व्यवस्था की गई। पहला काम था उनके पुराने क्रिया-कलापों को बदलना।

अस्पतालों में जल्दी ही और भी कई मौलिक सुधार किये गये। उद्योग के कमिसारियट ने कारखानों के पुर्नसंगठन की योजना बनाई। मानसिक-चिकित्सा सम्बन्धी प्रयोग के लिए कवी नगर के अस्पताल को एक छोटा किन्तु महत्वपूर्ण धन्धा सौंपा गया। यह धन्धा था एलेक्ट्रो-मेडिकल यन्त्रों को बनाना। इन यंत्रों को सोवियत डाक्टरों को बहुत जरूरत थी। औरतों पर इस तरह के काम का बहुत अच्छा असर पड़ा। पहले उनसे कपड़े-जूते या आम खपत की चीजें बनवायी जातीं थीं। ऐसे कामों में उनका जी न लगता था। पर अब उन्हें जो काम मिला था वह आकर्षक और राष्ट्र के लिए अत्यत लाभदायक था। इसीलिए औरतों ने बड़ी लगन से काम करना शुरू किया। उन औरतों के व्यक्तित्व में आश्चर्यजनक सुधार हुआ जिनके बारे में सोचा जाता था कि उनका दिमाग ठीक नहीं है,...खास तौर से तब जब नए काम का महत्व उनकी समझ में आ गया। वे साफ-साफ जानने लगीं कि जिस सामान को वे अपने हाथों से तैयार कर रहीं है उसकी जरूरत अपने जैसे नागरिकों को जिन्दगी बचाने के लिये है। अब उनकी समझ में आ गया था कि उनके माथे जबर्दस्ती काम नहीं थोपा जा रहा है। अब वे राष्ट्र के हित के लिये काम कर रहीं थीं।

यह प्रयोग आश्चर्यजनक रूप से सफल हुआ। दूसरे-दूसरे शहरों में

भी ऐसी ही व्यवस्था की गई। कमजोर स्वास्थ्य वाली औरतों के लिये मास्को के निकट एक कृषि-केन्द्र खोला गया। इस केन्द्र का खास काम तरह-तरह की फसल उपजाना और जानवरों की नस्ल सुधारना था। खेती-बारी के विस्तार के लिए सोवियत रूस को इन्हीं चीजों की जरूरत थी। इस केन्द्र में भी औरतों के सामाजिक उत्तरदायित्व और कर्तव्य पर जोर दिया गया।

इन प्रयोगों के दौरान में औरतें कुशल-कारीगर बन जाती थीं। इस तरह राष्ट्र के आर्थिक जीवन मे उनके लिए भी महत्वपूर्ण जगह बन जाती थी। पहले की निराशा में डूबी हुई औरतें जिस उत्साह से इन कामों की तरफ़ लपकतीं उसे देखकर तटस्थ से तटस्थ मनोवैज्ञानिक भी उत्साह से झूम उठते थे। मजदूरों और किसानों की समितियों से उन्होंने इस परिस्थिति के बारे में चर्चा की। इन कान्फ्रेंसों में तै हुआ कि पुनर्व्यवस्था का काम और तेजी से बढ़ाया जाय।

इसी उद्देश्य से चिकित्सा-सम्बन्धी अधिकारियों ने अपने प्रयत्नों को दुगनी तेजी से बढ़ा दिया। उनका उद्देश्य न सिर्फ़ इंद्रिय-रोगों को दूर करना था, बल्कि औरतों के शारीरिक स्वास्थ्य को भी ठीक करना था। हर अस्पताल के साथ एक सर्जन भी कर दिया गया था। सिफलिस से जिन औरतों की नाकें और तलुवे खराब हो जाते थे सर्जन उनको चीर-फाड़ करके फिर ठीक कर देते ताकि यह औरतें समाज में फिर सम्मानपूर्ण स्थान ग्रहण कर सकें। विशेष चिकित्सक उन महिलाओं की सहायता के लिए रहते जिन्हें साधारण वैवाहिक जीवन बिताने और संतान को जन्म देने योग्य फिर से बनाया जा सकता था। साथ २ बड़े पैमाने पर सांस्कृतिक काम भी शुरू किया गया इन संस्थाओं में देश के अच्छे से अच्छे कलाकार और अभिनेता आकर अपनी कला दिखाते। मरीजों के लिये मरीजों द्वारा अपने अखबार प्रकाशित होते थे।

अस्पताल देश के साधारण जीवन से अलग नहीं थे। न ही मरीजों को राय दी जाती कि तुम अपने अतीत को भूल जाओ। उल्टे लम्बे काल से चली आने वाली और बहुत ही टिकाऊ सामाजिक कुरीति के खिलाफ़ संघर्ष में प्रत्येक महिला की निजी जिम्मेदारी का महत्व उसे अच्छी तरह समझाया जाता था। यह एक ऐसा संघर्ष था जिसे हरेक देश में अब तक असफलता ही मिली थी। उसे बताया जाता कि अपने दूषित अतीत पर उसकी निजी जीत एक बहुत ही बड़े सामाजिक प्रयोग के लिये बड़े महत्व की चीज होगी। उसे बताया जाता कि मानव जाति को सुधारने के संघर्ष में उसका स्थान सब से आगे की कतार में है।

अस्पतालों में तो सफलता के चिन्ह साफ २ दृष्टिगोचर होने लगे थे। पर कुछ सोवियत विशेषज्ञ ऐसे भी थे जिन्हें शक था कि ये "पुरानी खुर्राटें" बिना व्यभिचार के गढ़े में दुबारा फिसले, समाज में फिर से प्रवेश करने लायक हो जायेंगी।

खुद महिलायें भी इस खतरे को कम करके नहीं आँक रही थीं। अन्त में सामाजिक पुनर्व्यवस्था की एक योजना तैयार की गई। यह योजना, संक्षेप में, इस प्रकार थी :

१— मरीज को तभी छुट्टी दी जाती जब समाज के एक हिस्से में उसके रहने का पूरा-पूरा प्रबन्ध कर लिया जाता। यहाँ उसका अतीत एक गुप्त निधि रहता। यदि इस अतीत के बारे में किसी को मालूम रहता था तो सिर्फ उन इने-गिने लोगों को जिनसे अस्पताल में रहते हुए आखीर के चन्द महीनों में मरीज ने पत्र व्यवहार किया था। सामाजिक कार्य के ये वालंटियर पहले से ही एक ऐसी नौकरी की जगह तदबीज कर रखते थे जिसके लिए महिला-रोगी को पहिले से ही विशेष शिक्षा मिल चुकी थी। ये लोग उसके रहने के लिये एक सम्मानित परिवार में प्रबंध कर देते। इस महिला के किसी नये परिवार में आगमन की हर बारीकी

पर बड़ा ध्यान दिया जाता ताकि उसके पिछले जीवन के बारे में किसी को संदेह न होने पाये ।

२— गिने-चुने संरक्षकों का दल हर महिला को दीर्घ—कालीन सहायता की गारंटी करता । हमारे देशों में भी जाँच-पड़ताल का वक्त देने की व्यवस्था है । पर उससे यह देख—भाल बुनियादी तौर पर भिन्न थी । इस देख-भाल का आधार था समान लोगों से व्यक्तिगत मित्रता । ज़्यादा महत्व इस बात को दिया जाता था कि पुराना मरीज़ अपने नये काम—धंधे में सफलता प्राप्त करे । कम से कम एक संरक्षक इस महिला के साथ—साथ काम रहता था ।

३— हर एक ज़िले में संरक्षकों के अलग—अलग दल मिलकर सहायता समितियाँ बनाते थे । चिकित्सकों, मनोवैज्ञानिकों और फैक्टरी मैनेजरों से सलाह मशविरा लेने के लिए इन समितियों की महीने में तीन बार बैठकें होती थीं । किसी भी मरीज़ के मामले में ज़रा भी गड़बड़ नज़र आई नहीं कि कुशल और अनुभवी सहायकों से फौरन मदद ली जा सकती थी । जैसे २ समय बीता पूरी तरह सुधरे मरीज़ इन समितियों के काम को और भी अच्छा बनाने के लिए उनमें शामिल होने लगीं ।

४— विवाह, धन्धे, तनख्वाह, किराये वग़ैरा की किसी तरह की कठिनाई में उलझ जाने पर उनकी ज़्यादा से ज़्यादा हिफाजत के लिए समितियों ने विशेष क़ानूनी मदद का भी प्रबन्ध कर दिया था ।

५— पुरानी मरीज़ों को इस बात के लिए प्रोत्साहित किया जाता कि जिन औरतों का अब भी अस्पतालों में इलाज हो रहा है उनसे व्यक्तिगत पत्र-व्यवहार करो । इसका उद्देश्य यह था कि समाज में फिर से दाखिल होने में अस्पताल के मरीज़ों की इच्छा बढ़े और वे जल्दी ही समाज में फिर से वापिस आ सकें ।

अब हम सोवियत संघ में वेश्यावृत्ति के ख़िलाफ़ पन्द्रह सालों के वैज्ञानिक संघर्ष के दाँव-पेचों को देख चुके हैं ।

वह संघर्ष कभी का बन्द हो चुका है। अब तो वह सिर्फ एक याद भर रह गया है। यह लड़ाई भी उन्हीं लड़ाइयों की तरह खतम हुई जिनकी याद हमेशा के लिए हमारे दिलों में गड़ गई है, अर्थात् स्तालिनग्राद की लड़ाई, कीव की लड़ाई, सेवास्तोपोल की लड़ाई ... ... दुश्मन को पूरी तरह हरा कर। सोवियत समाजवादी प्रजातन्त्र संघ के नगरों और गाँवों से, जैसा कि सभी विदेशी प्रेक्षकों ने स्वीकार किया है, वेश्यावृत्ति को पूरी तरह निकाल बाहर किया गया है।

१९१७ के ज़ारशाही पुलिस के अधूरे आँकड़ों को ही देखने से पता चलता है कि लेनिनग्राद में (तत्कालीन सेंट पीटर्सबर्ग में) कम से कम ६०,००० वेश्यायें थीं। इनके अलावा कितनी ही हजार औरतें और ऐसी थीं जिनके नाम सरकारी कागज़ों में दर्ज नहीं, पर जो इसी तरह के धन्धों में लगी थीं।

आन्दोलन के पाँच साल के पहले दौर के बाद ही, १९२८ में, ग़ैर-पेशेवर वेश्यावृत्ति पूरी तरह खत्म हो गयी। २५,००० से ऊपर पेशेवर व्यभिचारिणी औरतें अस्पतालों से निकलकर सम्मानप्राप्त नागरिक बन गई थीं। लगभग ३,००० अब भी व्यभिचार को ही अपनी रोजी बनाये हुये थीं।

ब्रिटिश जर्नल आफ वेनेरियल डिज़ीज़ की मार्च, १९४५ की डा० जे० ए० स्काट की रिपोर्ट के अनुसार १९३० तक मास्को में वेश्याओं की संख्या घटकर लगभग ८०० रह गई। यही दशा दूसरे सोवियत नगरों की भी थी। ये ही थी वे औरतें जिनके सुधार के हित के लिये राष्ट्रव्यापी पैमाने पर संघर्ष का संगठन शुरू किया गया था।

और परिणाम ?

८० प्रतिशत से कुछ कम औरतें अस्पताल से निकल कर उद्योगों और खेतों में काम करने के लिये पहुँच गयीं।

४० प्रतिशत से अधिक "शॉक ब्रिगेडों में काम करने वाली" बन गईं या राष्ट्र के लिए ख्यातिप्राप्त काम करके नाम कमाया। अधिकांश ने विवाह कर लिया और मातायें बन गयीं।

केवल १६ प्रतिशत से कम ऐसी निकलीं जो अपने आप को साधारण जीवन के अनुकूल नहीं बना सकीं। ट्रेनिंग के लिए उन्हें फिर अस्पताल लौटना पड़ा। बाक़ी ऐसी थीं जिन्हें बीमारी और बीते जीवन की कठिनाइयों ने इस लायक रखा ही नहीं था कि नये समाज में वे स्थान बना सकें।

इस तरह व्यभिचार के विरुद्ध संघर्ष, — जो अब "गुलामों और पीड़ितों" का संघर्ष बन गया था – सोवियत जीवन से युगों पुराने व्यभिचार के व्यापार को सदा के लिये मिटा देने में सफल हुआ। इस संघर्ष ने इन्द्रिय रोगों का भी खात्मा कर दिया। रूसियों की नई पीढ़ी ने वैश्या को देखा तक नहीं है।

किन्तु सोवियत भूमि पर जहाँ-जहाँ नाजियों ने क़ब्ज़ा किया वहाँ-वहाँ परिस्थिति ने फिर पलटा खाया। इस बार दशा और भी बुरी हुई। १६४४ में दुश्मन को खदेड़ भगाने के बाद देखा गया कि हर तरह का छूत का रोग नाजियों के कब्जे वाले क्षेत्रों में फैला हुआ है। दसियों हजार सोवियत बालिकाओं और औरतों को नाजी फौजियों ने इज़्ज़त धूल में मिलाई थी। इनमें से ज़्यादातर बालिकाओं और औरतों को सिफलिस या गिनोरिया का वरदान मिला। अभी भी पूरे आँकड़े इकट्ठे नहीं हो पाये हैं। इलाज का जो प्रबन्ध किया गया वह अब भी फ़ौरी जरूरत के आधार पर है। लेकिन यूक्रेनी सोवियत समाजवादी प्रजातन्त्र को देखकर हम समस्या की सच्ची तस्वीर का अंदाज़ लगा सकते हैं। संभवतः सब से ज़्यादा यूक्रेन को नुकसान उठाना पड़ा। जन-स्वास्थ्य को वहाँ कैसा धक्का लगा और रोगियों की हालत को सुधारने के लिए वहाँ अब

क्या कुछ किया जा रहा है इसकी सूचना यूक्रेन के जन-स्वास्थ्य कमिसार इलारियोन कोनोनेन्को की ही दी हुई है।

नाजी आक्रमण के पहले यूक्रेन को अपनी सुसंगठित जन-स्वास्थ्य व्यवस्था पर गर्व था। इस प्रजातन्त्र में ६ मेडीकल दवादारू और २ फार्मेसी कालेज थे। इन कालेजों में हर साल ३,५०० विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। इनके अलावा १६६ 'मेडीकल स्कूल थे' जिनमें हर साल २०,००० चिकित्सा-विशेषज्ञ शिक्षित होते थे। ये विशेषज्ञ हमारे देशों के ट्रेंड मेडीकल टेकनीशियनों से मिलते-जुलते हैं। सोवियत रूस में इन विशेषज्ञों को जनता की सेवा में सक्रिय भाग लेना पड़ता है। उन्हें लगभग वे ही अधिकार प्राप्त होते हैं जो हमारे यहाँ के डाक्टरों और रजिस्टर्ड नर्सों को प्राप्त होते हैं।

१६४१ में यूक्रेन में १,६३२ अस्पताल थे जिनमें १,२६,००० मरीजों के रहने का इंतज़ाम था। २,४४५ गाँवों के चिकित्सा केन्द्र थे। छोटे दवाखानों और सफ़ाखानों की संख्या ६,००० और उनसे भी छोटों की १०,००० थी। मजदूर संगठनों और पंचायती खेतों के अपने ४०० स्वास्थ्य केन्द्र थे और १७३ आरामगाहें थीं जिनमें हर साल दस लाख से ज़्यादा नौजवान और बच्चे स्वास्थ्य लाभ करते थे।

इन्द्रिय-रोगों को कुचल डालने में इस विराट् स्वास्थ्य संगठन को उल्लेखनीय सफलता मिली थी। १६४१ तक ६० फी सदी सिफ़लिस को मिटा दिया गया था। बाकी सिफलिस ऐसे मरीजों को थी जिनका रोग बहुत पुराना पड़ चुका था। कैन्क्रायड (एक रोग) बिलकुल मिटा दिया गया था। गिनोरिया ख़तम किया जा रहा था। क्षय रोगियों की संख्या तेजी से घट रही है।

इस सफलता में जच्चाओं के अस्पतालों ने बहुत महत्वपूर्ण सहायता दी थी। इनमें ३१,००० मरीज़ों के रहने का इन्तज़ाम था। जच्चाओं के

१,६७४ विशेष स्वास्थ्य केन्द्र भी थे।

नाज़ी आधिपत्य ने जन-स्वास्थ्य के इस सुन्दर ताने-बाने को छिन्न-भिन्न कर दिया। अस्पतालों, सफाखानों, कालेजों, तथा दवादारू की संस्थाओं को जानबूझ कर धूल में मिलाया गया। जो बाक़ी बचे थे उनमें आम जनता को घुसने की इजाज़त नहीं थी। आम तौर से जर्मन सेना इन अस्पतालों को अपनी ऐयाशी के केन्द्र बना रही थी। जर्मन सैनिकों और अफसरों के ये अस्पताल ऐयाशी के अड्डे बन जाने पर इन्द्रिय रोग इस बुरी तरह फैले जिसका कोई ठिकाना नहीं। रोगों की बढ़ती का सही-सही अन्दाज़ा लगाया जा सकता है, इसमें भी शक है। क्योंकि दसियों लाख बच्चों और नवयुवकों को ज़बर्दस्ती यूक्रेन से बाहर निकाल दिया गया था। कुछ लोगों का बाद में वापिसी का तांता लगा रहा जिससे ठीक २ आँकड़ों का रख सकना असम्भव हो गया।

किन्तु नाज़ी आततताइयों के खदेड़ दिये जाने के बाद हालत में तेज़ी से परिवर्तन हुए। मैने खुद युक्रेन और रूसी प्रजातन्त्र के कितने ही जिलों का दौरा किया। ये ज़िले हिटलरी दरिन्दों ने अपने पैरों तले रौंदे थे। किन्तु युद्ध के बाद सरकार और जनता ने जिस आश्चर्यजनक तेज़ी से वहाँ की हालत को सम्हाला उसके बारे में रूस जाने वाले हज़ारों विदेशी यात्रियों ने विस्तार से लिखा है। मैं तो हालत में इतनी जल्दी सुधार देख कर सचमुच दंग रह गया। उन विशाल क्षेत्रों में भी जहाँ जर्मनों ने अपनी भगदड़ के वक़्त क़रीब २ हर फैक्टरी, हर रेलवे, हर अस्पताल और हर खेत को जलाकर ख़ाक कर दिया था अब फिर उच्च सभ्यता के दर्शन हो रहे हैं। इन क्षेत्रों में १६५० में लगभग हर फैक्टरी, हर रेलवे और हर अस्पताल नया दिखलाई पड़ रहा था।

मेरी पत्नी जन स्वास्थ्य विशेषज्ञ है और मुझे भी डाक्टरी मामलों में काफी जानकारी है। व्यक्तिगत अध्ययन के बाद हम दोनों दावे के साथ

कहते हैं कि युक्रेन तथा दूसरे सोवियत प्रजातन्त्रों में — जिन्हें नाज़ियों के बर्बाद कर दिया था — रोगों से बचाव की और इलाज की अत्यन्त सफल और सार्वजनिक व्यवस्था कर दी गई है। हमने कितने ही अस्पतालों और शफाखानों का दौरा किया। हम लोग गाँव के छोटे-छोटे अस्पतालों में भी गये। शहरों के बड़े २ स्वास्थ्य केन्द्रों को भी हमने देखा। इनमें एक भी अस्पताल ऐसा नहीं था जहाँ इन्द्रिय रोगों को आम रोगों में गिना जाता हो। अक्सर डाक्टरों ने यही कहा है कि सिफलिस और गिनोरिया के मरीज़ इतने गिने चुने हैं कि इन रोगों को हम खत्म हुआ मानते हैं। उन्होंने बताया कि ये मरीज़ भी इस युद्ध की ही देन हैं, अगर नाज़ी आधिपत्य के दौर से न गुज़रना पड़ा होता तो हमारे अस्पतालों में सिफलिस और गिनोरिया के मरीज़ ढूढ़ने से भी मिलना मुश्किल हो जाते।

ब्रिटेन के प्रमुख डाक्टरों के एक दल ने १६५१ में सोवियत संघ का दौरा किया था। उन्होंने भी ऊपर कही बातों की पुष्टि की। सोवियत संघ में उन्होंने जो कुछ देखा उसकी रिपोर्ट उन्होंने ब्रिटिश मैडिकल जर्नल में छापी। उन्होंने बताया कि सोवियत संघ से वैश्यावृत्ति नदारत हो गई है। उन्होंने कहा कि इन्द्रिय रोगों के बारे में भी हालत यह है कि इन रोगों का कुछ ही दिनों में बिलकुल सफाया हो जायगा।

—:०:—

जीव हत्या : मगर गुपचुप

सामाजिक प्रगति के रूप में व्यभिचार और बीमारी पर सोवियत रूस की विजय को एक गौरवपूर्ण किन्तु अलग चीज़ समझना एकदम ग़लत होगा। निस्संदेह, सोवियत रूस का प्रयत्न अत्यंत सफल हुआ था। लेकिन जो कुछ ऊपर कहा जा चुका है वह तब तक निरर्थक होगा जब तक हम सोवियत नैतिकता के व्यापक ढाँचे के अन्तर्गत इन चीज़ों को नहीं देखते, जब तक इन्हें हम "वैज्ञानिक आधार पर मानव जाति के सुधार" के ढाँचे के अन्तर्गत नहीं देखते। सोवियत रूस में सुधार का यह काम बड़े उत्साह से शुरू हुआ था।

हम देख चुके हैं कि क्रान्ति के कुछ ही दिनों बाद सोवियत महिलाओं को जो प्रश्न-पत्र दिया गया था उसने वैज्ञानिकों और राजनीतिज्ञों, दोनों के ही सामने स्पष्ट कर दिया था कि व्यभिचार का बुनियादी कारण आर्थिक है। यह कारण है — कंगाली और बेरोज़गारी। लेकिन, ये विशेषज्ञ भली भाँति जानते थे बेरोज़गारी को हटाते ही संगठित व्यभिचार के खिलाफ़ संघर्ष अपने आप ही सफल नहीं हो जायेगा। १९२९ के बाद सोवियत देश में बेरोजगारी को ख़त्म कर दिया गया। लेकिन ऊपर कही बात का उल्टा भी सच है, यानी यह कि : यदि काम करने की इच्छुक हरेक महिला को स्थायी काम देने की आर्थिक योजना सफल न हुई होती तो संगठित व्यभिचार के खिलाफ़ संघर्ष भी असफल हो गया होता। ऐतिहासिक पंच-साला योजनाओं और उनके अन्तर्गत विशाल औद्योगिक उन्नति का परिणाम यही नहीं हुआ कि युद्ध में लाल सेना की

विजयों की नींव पड़ी; उनसे प्रत्येक सोवियत नागरिक के जीवन पर भी गहरा असर पड़ा।

लेकिन, अब शायद कुछ लोग एक महत्वपूर्ण सवाल उठायें। जब वेश्याओं ने पेशा छोड़ कर ईमानदारी का काम अपना लिया तो सोवियत नैतिकता की क्या हालत हुई? अधिक स्पष्ट रूप में कहा जाय तो: सोवियत रूस में पुरुषों और स्त्रियों और नवयुवकों के योनि सम्बन्धों की क्या दशा हुई? क्या व्यभिचार और इन्द्रिय-रोगों के खात्मे से सम्मान प्राप्त नागरिकों की नैतिकता में ढील नहीं आई?

हम इसको और भी स्पष्ट रूप में पेश कर सकते हैं। क्या वेश्याओं की अनैतिक कार्रवाइयों को सोवियत रूस की आम महिलाओं ने मुक्त प्रेम के उसी सिद्धान्त के आधार पर—जिसका लेनिन और गोर्की ने बड़ी सख्ती से विरोध किया था, — नहीं अपना लिया!

नहीं; ऐसा कुछ नहीं हुआ। जो कुछ हुआ उसे साफ २ शब्दों में बताया जा सकता है। वेश्यावृति को तो खत्म कर ही दिया गया था। 'मुक्त प्रेम' तथा अनुचित योनि सम्बन्ध जैसे वेश्यावृति के दूसरे रूपों को भी खत्म कर दिया गया। इसी कारण प्रगति आज भी जारी है। यह क्रान्तिकारी परिवर्तन ठीक उसी ढंग से हासिल किया गया जैसा कि वैज्ञानिकों ने अपनी भविष्यवाणियों द्वारा बताया था — सामाजिक-आर्थिक सुधार की योजनाओं द्वारा। इन योजनाओं के फलस्वरूप ही बहुसंख्यक नागरिकों के लिये सम्भव हो सका कि प्रेम पर आधारित विवाह सम्बन्ध के द्वारा वे अधिक से अधिक संतोष प्राप्त कर सकें।

एक ही साँस में यह कह डालना कि प्रेम और विवाह वैज्ञानिक और आर्थिक योजना पर आधारित हैं, बहुत से लोगों को मूर्खतापूर्ण मालूम होता है। इस समस्या से सम्बन्धित दार्शनिक तर्कों पर अध्याय के अध्याय लिखे जा सकते हैं। यह जानी मानी बात है कि इस आकर्षक

विषय पर बहस से सोवियत-अखबारों और पत्र-पत्रिकाओं के पन्ने के पन्ने रंग गये थे। इस बहस को दो एकदम विरोधी दृष्टिकोणों के रूप में संक्षेप में पेश किया जा सकता है।

एक ओर ऐसे लोग थे जिनका कहना था कि मानव अनुभवों के कटु सत्यों को देखते हुये जहाँ तक इन्द्रिय-भोग का सवाल है "मनुष्य के स्वभाव को सुधारना" असंभव है। उनका कहना है कि वेश्यावृत्ति और व्यभिचार को ऊपरी तौर पर मिटा दिया गया तो भी पुरुष और स्त्री अनैतिक जीवन बिताना जारी रखेंगे।

दूसरी ओर वैज्ञानिक और राजनीतिक विशेषज्ञ थे जिनका दावा था अब तक मानव जाति को इतिहास में कभी भी ऐसा व्यावहारिक मौका मिला ही नहीं है जब मनुष्य सचमुच नैतिक जीवन बिता सके और प्रेम कर सके। उनकी माँग थी कि सोवियत शासन-व्यवस्था सोवियत रूस के १८ करोड़ नर-नारियों को इस तरह का जीवन बिताने का मौका दे।

बहस में जीत बाद वालों की हुई। अपने तमाम महत्वपूर्ण सामाजिक प्रयोगों में सोवियत रूस ने सबसे महत्वपूर्ण प्रयोग— नैतिकता की योजना शुरू किया।

सोवियत रूस के उद्देश्य को बाहर की दुनिया ने १९ साल तक या तो समझा ही नहीं या जानबूझ कर समझने से इन्कार करती रही। इसका सबूत वह विरोधात्मक आन्दोलन था जो योजना पूर्ण नैतिकता की ओर पहला क़दम उठाते ही उठ खड़ा हुआ था। दरअसल, पहली नजर से तो यही मालूम पड़ता था कि यह कदम ठीक उलटी दिशा में यानी नैतिकता खतम करने की दिशा में बड़ी भारी छलाँग है। एक सोवियत कानून के द्वारा भ्रूण-हत्या को कानूनी बना दिया गया और सभी औरतों को इसका अधिकार दे दिया गया।

भ्रूण-हत्या—जन्म से पहले ही नव शिशु की हत्या—सभ्य जगत के भौतिक और धार्मिक दोनों ही सिद्धान्तों के विरुद्ध है। सभी जगह भ्रूण-हत्या को उचित ही हत्या का अपराध मानते हैं,—इस तरह के अजन्मे शिशु की हत्या जिसके द्वारा माता और पिता मातृत्व और पितृत्व की जिम्मेदारियों से बच सकें। सोवियत रूस के आलोचक, और कितने ही मित्र भी, जिस बात को नहीं समझ सके हैं वह यह है: सोवियत राजनीतिज्ञ और वैज्ञानिक यह मानते थे कि भ्रूण-हत्या एक तरह की हत्या है और नैतिकता के खिलाफ है, व्यक्ति के और राष्ट्र के हित के खिलाफ है।

तो फिर इस अनैतिक प्रथा को सोवियत रूस में क़ानूनी कैसे बना दिया गया?

उलझनों में डालने वाली सैद्धान्तिक बहस में पड़ने से कोई फायदा नहीं होगा। भ्रूण-हत्या नामक सामाजिक समस्या में रहस्य की कोई बात नहीं। हालाँकि इसके पक्ष में और विपक्ष में हमारे देशों में अनगिनती वैज्ञानिक और धार्मिक लेख लिखे जा चुके हैं। सोवियत रूस में भ्रूण हत्या को सामाजिक अपराध माना जाता था। वहाँ यह माना जाता था कि वैश्यावृत्ति की तरह उसकी भी जड़ें आम जनता की कंगाली में हैं।

यहाँ फिर हम साधारण तुलना के द्वारा तर्क-वितर्कों के झाड़-झंखाड़ को साफ़ कर सकते हैं। रूसी क्रान्ति के समय विश्व की दशा कैसी थी इसकी याद कीजिये। उन दिनों तमाम सभ्य देशों में—और रूस में भी—भ्रूण हत्या के लिये क़ानून में कड़े दण्ड की व्यवस्था थी। लेकिन सभी देशों में भ्रूण-हत्या का ऐसा बोलबाला था जिसके बारे में सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। आम तौर से अजन्मे शिशु को पेट से निकाल बाहर करने का काम डाक्टर नहीं बल्कि ऐसे हत्यारे करते थे

जिन्हें शायद ही कभी क़ानून के सामने लाया जाता हो। उदाहरण के लिये, जर्मनी के सरकारी आँकड़ों को देखिये। ये आँकड़े बताते हैं कि ग़ैर क़ानूनी चीर-फाड़ से हर साल लगभग १०,००० औरतों की हत्या होती थी। इससे कई गुना ज्यादा औरतें हमेशा के लिये जख्मी बन जाती थीं या सदा के लिये रोगिनी बन जाती थीं। यह संख्या भ्रूण-हत्याओं की पूरी संख्या का छोटा अंश भी नहीं। उत्तरी अमरीका में, अधूरे आँकड़ों के आधार पर अनुमान लगाया गया कि हर साल कितनी ही लाख भ्रूण-हत्यायें की जाती थीं। जारशाही रूस में २५,००० औरतों की मौत भ्रूण हत्या से हर साल होती थी।

यह हालत थी तब जब हर मुल्क में गर्भ-हत्या के ख़िलाफ़ कड़े क़ानून मौजूद थे।

अब, आज की हालत पर नज़र डालिये। सोवियत रूस में इस प्रयोग के शुरू होने के २५ साल बाद, हरेक देश में—और सोवियत रूस में भी— भ्रूण-हत्या विरोधी क़ानून मौजूद हैं। अब भ्रूण-हत्या की सोवियत रूस में क़ानूनी मान्यता नहीं है। पिछले कुछ सालों से गर्भ-निवारण के उद्देश्य से चीर-फाड़ करना अपराध घोषित कर दिया गया है। १९४४ में भ्रूण-हत्या के ख़िलाफ़ क़ानून और भी ज्यादा कड़ा कर दिया गया।

तो क्या प्रयोग असफल हुआ था? नहीं; नतीजा असफल का ठीक उल्टा हुआ। वेश्यावृत्ति की तरह ही भ्रूण-हत्या का भी सोवियत रूस से नाम निशान मिटा दिया गया।

लेकिन दूसरे तमाम देशों में बिना किसी डाक्टरी सहायता के भ्रूण-हत्या के लिये चीर-फाड़ों की संख्या—धार्मिक और क़ानूनी विरोध के बावजूद—बढ़ती जा रही है। परिणाम-स्वरूप इन कारणों से मरने

वाली और अरुमी होने वाली औरतों की संख्या भी बेशुमार बढ़ती जा रही है।

हमारे यहां हालत क्या है?

कितने ही डाक्टरों ने हाल ही में छान-बीन की थी। न्यूयार्क की चिकित्सा अकेदमी की भ्रूण-हत्या सम्बन्धी समस्याओं की कॉन्फ्रेन्स में (१६४२) मनोवैज्ञानिक ए० ए० ब्रिल ने कहा :

"भ्रूण-हत्या उन सामाजिक समस्याओं में से एक है जिन्हें सम्भवतः हल नहीं किया जा सकता। कारण यह कि हम फिलेटिक प्रभावों को नहीं जानते।"

"फिलेटिक" का अर्थ? इसका अर्थ है "वे परिवर्तन जो विकास क्रम के दौरान में हुए हैं।"

बाद में अपनी रिपोर्ट में डाक्टर ब्रिल ने और स्पष्ट रूप से बात कही है। उनका कहना है "भ्रूण-हत्यायें सांस्कृतिक दोषों की निशानी हैं। सारांश यह कि मनुष्य को अपना प्रतिरूप तैयार करने के लिये प्रकृति बाध्य करती है और सभ्यता अपने हितों को देखते हुये उसे रोकने का प्रयत्न करती है या किन्हीं खास हालतों में ऐसा करने की इजाजत देती है।"

डाक्टर ब्रिल जिस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं उसे मानने से पहले उसे पढ़ना चाहिये : "आइये, हम भ्रूण-हत्या करने वालों को समाप्त करें। उपाय यह है कि हर ईमानदार चिकित्सक गर्भ-निपात के काम को जहां जरूरी समझे खुद सम्हाले।"

नैतिकता का काम मोहल्ले-पड़ौस के हकीम को सौंप दिया जाय! महिलायें और अजन्मे शिशु जीवित रहेंगे या नहीं इसका फैसला डाक्टर

की बैठक में हो ! हर चिकित्सक न्यायाधीश और जल्लाद दोनों का काम सम्हाले !!

मनोविज्ञानिक महोदय किस हद तक बेरोक भ्रूण-हत्या की वकालत कर रहे थे और किस हद तक वह असलियत को छिपा रहे थे।

अमेरिकन जर्नल आफ आब्सटेट्रिक्स एन्ड जिनेकोलोजी में डाक्टर ओल्सन, लहमन, मीलस और मिचेल ने हाल ही में भ्रूण-हत्याओं के सम्बन्ध में अधिकृत रिपोर्ट पेश की है। इस पत्र में उन्होंने उन तथ्यों को पेश किया जिन्हें न तो आम अखबार और न हमारे स्वास्थ्य अधिकारी ही प्रकाश में लाने का साहस करते हैं। इन लोगों ने जिन बहुत सी भ्रूण-हत्याओं का अध्ययन किया था उनमें से लगभग तीस प्रतिशत ऐसी थीं जिन्हें स्थानीय चिकित्सकों ने खुद अपने हाथ से किया था। पैंतीस प्रतिशत से ज़्यादा हत्यायें दाइयों के हाथों की करामात थीं। भ्रूण-हत्याओं के संबन्ध में जिन औरतों की चीरफाड़ हुई थी उनमें से सिर्फ आधी अविवाहित, परित्यक्त या विधवा थीं।

इन सुप्रसिद्ध डाक्टरों का कहना है : "पिछले कई सालों में भ्रूण-हत्याओं की संख्या जिस तेजी से बढ़ी है उससे यही पता चलता है कि भ्रूण-हत्या की समस्या बढ़ती जा रही है।"

शायद वे असलियत को बढ़ा चढ़ा कर पेश कर रहे हैं?

नहीं, उन्होंने आंकड़े पेश किये हैं। १६४१ में अमरीका में कम से कम ६,८०,००० भ्रूण-हत्यायें हुईं। बचाव के नये से नये उपायों के बावजूद अमरीका में हर साल इस तरह की चीरफाड़ों से ८,००० महिलाओं की मृत्यु होती है।

भ्रूण-हत्याओं की संख्या में बढ़ती का कारण इन डाक्टरों ने किन्हीं रहस्य-पूर्ण "फिलेटिक प्रभावों" को नहीं बताया। उनके अनुसार इस बढ़ती के वास्तविक सामाजिक कारण ये हैं : "ग़ैर कानूनी संतान होने

पर शर्म का भूत सवार हो जाना, मातृत्व और पितृत्व की ज़िम्मेदारियों से जान बचाने की कोशिश करना, पिछले दस सालों के आर्थिक संकट से उत्पन्न ग़रीबी और दरिद्रता, परिवार को बढ़ने से रोकना और रहन-सहन के स्तर को बेहतर बनाने की कोशिश करना.................. आम तौर से आदर्शवाद के स्थान पर एक दूसरी दार्शनिकता का उपस्थित होना जिसने पहले महायुद्ध के बाद लोगों को प्रभावित किया।"

उन्होंने इस समस्या को "फौरी महत्व" की समस्या बताया है। इससे इन्कार कौन करता है? अमरीका में प्रतिवर्ष ६ लाख ८० हज़ार अजन्मे शिशुओं की हत्या होती है। इस पुस्तक को पढ़ने में आपके जो क्षण बीत रहे हैं उनमें से हर एक क्षण में इस प्रायद्वीप पर कहीं न कहीं किसी अजन्मे शिशु की हत्या हो रही है।

दूसरे "जनवादी" देशों में भी आँकड़े कुछ इसी प्रकार के हैं,—कहीं ज़रा ज़्यादा, कहीं ज़रा कम। एक ओर हमारे अनैतिक समाज में इस नैतिक युद्ध के परिणाम स्वरूप लाखों लाख शिशुओं की जीव हत्या हो रही है दूसरी ओर लोग अन्धकार में हैं। संगठित मज़दूर-वर्ग को खामोश रखा जाता है, चिकित्सा और क़ानून के पंडित सच्चाई को छिपाते हैं और धर्म के ठेकेदार मौन धारण किये हैं।

और ए० ए० ब्रिल जैसे डाक्टरों का तुर्रा यह है कि "सम्भवतः भ्रूण-हत्याओं की समस्या नहीं सुलझाई जा सकती क्योंकि विकास-क्रम में होने वाले परिवर्तनों का हमें समुचित ज्ञान नहीं है।"

ऐसे लोगों को एक बार सोवियत रूस जाना चाहिये। वहाँ, मालूम होता है "फिलेटिक" और "संस्कृतिक दोषों" के मामले में विज्ञान ने ज़बरदस्त उन्नति की है। हम देखें कि यह उन्नति है क्या।

क्रांति के कुछ ही दिनों बाद, सोवियत वैज्ञानिकों ने, जो भ्रूण-हत्या की समस्या के फौरी महत्व से परिचित थे, सोवियत रूस के अधिकारियों

को बताया न तो निरोधात्मक क़ानूनों के ही द्वारा और न तमाम डाक्टरों को मनमाने तौर पर हत्या करने की छूट देकर ही भ्रूण–हत्याओं को बन्द किया जा सकता है। उनका दावा था कि भ्रूण–हत्या की जड़ आर्थिक और नैतिक समस्या में है। उनका कहना था कि खुले आम ही इसे खत्म किया जा सकता है। अर्थात् तब जब सारा राष्ट्र इसके कारणों को दूर करने के संघर्ष में जुट जाय और एक विराट पैमाने पर नैतिक शक्तियों का सुचारु रूप से संगठन किया जाय।

उन्होंने कुछ अरसे के लिये भ्रूण–हत्या को क़ानूनी घोषित कर दिया। इस क़ानून पर समाज का कड़ा कंट्रोल था। इस क़ानून का उद्देश्य था: भ्रूण–हत्याओं को ख़त्म करना।

बात अन्तर्विरोधी मालूम होती है। पर यह साधारण सूझ-बूझ की बात थी। इस क़ानून के परिणाम स्वरूप रूस में जो कुछ हुआ वह यह है:

विशेष चिकित्सालय क़ायम किये गये। इनमें न सिर्फ चिकित्सा सम्बन्धी सुविधायें थीं बल्कि सलाह–मशविरा के बोर्ड भी क़ायम किये गये थे। गर्भवती महिलायें और लड़कियाँ, जो शिशु को जन्म नहीं देना चाहती थीं इन चिकित्सालयों में सलाह-मशविरे के लिये बुलाई जाती थीं। सोवियत विरोधी विचारकों ने इन चिकित्सालयों की बड़ी खिल्ली उड़ाने की कोशिश की। कुछ धर्म के ठेकेदार तो अब भी इन झूठी बातों में विश्वास करते हैं। किन्तु इन केन्द्रों का काम "अत्यन्त गुप्त रूप से" हत्या करवाना नहीं था। इनका मुख्य उद्देश्य था: चीर–फाड़ करवाने से औरतों को रोकना।

उन शुरू शुरू के दिनों में जब रूस में भयानक ग़रीबी और दरिद्रता फैली हुई थी सलाह–मशविरा देने वाले १०० में से ५० औरतों को यह समझाने में सफल होते कि उनका माताएं बन जाना अच्छा होगा।

इसका सीधा सादा और खुलासा मतलब यह है कि सलाह-मशविरे की प्रणाली शुरू करते ही रूस में गर्भ हत्या की संख्या आधी हो गई। इस बात को समझने में दिक्कत की गुन्जाइश नहीं। चीर फाड़ कराने के लिये उत्सुक महिलाओं में से अधिकांश ऐसी होती हैं जिनके दिल में दहशत समाई रहती है। शायद ही कभी कोई ऐसा जिम्मेदार और समझदार सलाहगीर मिलता था जिनसे वे अच्छी राय ले सकें। गर्भ-पात के बारे में जितनी भी बातें उन्हें मालूम होती वे कभी किसी से और कभी किसी से सुनी हुई होतीं। उनकी एक ही ख्वाहिश होती है,— गर्भवती मालूम पड़ने से पहले ही वे इस झगड़े से निपट जायें। हमारे देश में ऐसी महिलाओं की कितनी संख्या है जो दूसरों से सलाह मशविरा के बाद अपने इरादे को बदल दें,— बशर्ते कि उन्हें मालूम हो जाय कि पकड़-धकड़ का कोई खतरा नहीं, कि शिशु के जन्म के बाद भी उन्हें नौकरी मिल जायगी?

रूस में, ठीक ठीक कहा जाय तो, ५१ प्रतिशत औरतों ने अपने इरादों को बदल दिया। जो बाकी बचीं उन्हें चीर-फाड़ कराने की इजाजत दे दी गई। क्यों? इसलिये कि अगर उन्हें इजाज़त न दी गई होती तो वे खूसट दाइयों के पास पहुँचती और मनमाना करातीं। लेकिन यहाँ उनका आपरेशन बड़े ही चतुर चिकित्सक अच्छे से अच्छे औजारों से करते थे। इससे साबित हो जाता कि गर्भवती स्त्री का आपरेशन कुशल चिकित्सकों द्वारा खतरनाक नहीं है। इसी वजह से रूस में इन कारणों से मरने वालों की संख्या केवल नहीं के बराबर रह गई। ग़ैर क़ानूनी ढंग के आपरेशनों या अधकचरे चिकित्सकों के आपरेशनों के परिणाम स्वरूप मरने वालों की संख्या पहले बेहद थी। सोवियत चिकित्सकों ने अन्दाज लगाया कि बारह साल में उन्होंने कम से कम तीन लाख औरतों की जान बचाई होगी। इस अरसे में इनी-गिनी औरतों की ही—ग़ैर क़ानूनी भ्रूण-हत्याओं से—मृत्यु हुई। गर्भवती स्त्रियों

की देख-भाल का राज्य की ओर से मुफ्त और अच्छा प्रबन्ध था इसीलिये ग़ैर क़ानूनी भ्रूण-हत्याओं के लिये रुपया खर्च करना और मौत का खतरा उठाना बेज़रूरी हो गया। एक ओर जहाँ राज्य की ओर से यह क़ानून बना कि उचित चिकित्सालयों में गर्भ-पात करवाना क़ानूनी है, वहाँ दूसरी तरफ एक कानून पास करके दूसरे लोगों से भ्रूण-हत्या कराने के लिये कड़े से कड़े दंड की व्यवस्था की गई।

इस दौरान में आन्दोलन ने एक नई दिशा पकड़ ली। सवाल था औरतें क्यों आपरेशन करवाना चाहती हैं? क्या इसीलिये कि उन पर सुधार का कोई असर नहीं हो सकता? ऐसा कहना हास्यास्पद है। वे आपरेशन की माँग इसलिये करती हैं कि ज्यादातर महिलायें शिशु का लालन-पालन करने की स्थिति में नहीं होती थीं। लाखों-करोड़ों औरतों से पूँछ-ताँछ कर चुकने के बाद सोवियत वैज्ञानिक इस अकाट्य निष्कर्ष पर पहुंचे कि मौजूदा समाज में मातृत्व की बड़ी प्रशंसा की जाती है उसे बड़े सम्मान की बात बताया जाता है— पर केवल सिद्धान्त रूप में। अमल में बहुसंख्यक औरतों के लिये यह एक भारी अपराध सा बन जाता है।

गर्भवती स्त्री नौकरी से हाथ धो बैठती है। अविवाहित बालिका के लिये गर्भवती हो जाना बड़ा भारी अभिषाप बन जाता है। ज़्यादातर औरतों की पारिवारिक हालत होती है यह कि नया बच्चा जन्मा नहीं कि उन पर, उनके पतियों पर और उनके दूसरे बच्चों पर आर्थिक कठिनाइयों का बोझ आ पड़ता है। बच्चा होने से पहले जच्चा की अच्छी तरह देख भाल न हुई या उसकी ठीक से चिकित्सा न हुई तो वह सदा के लिये बीमारियों का शिकार बन जाती हैं।

सोवियत रूस में इस स्थिति का अन्त करने के लिये क्रान्तिकारी क़दम उठाये गये। मातृत्व की पूजा सिद्धान्त की ही चीज़ नहीं रह गयी। उसे अमली रूप दिया गया।

सामाजिक और चिकित्सा सम्बन्धी विशेषज्ञों ने सोवियत रूस में उठाये गये क़दमों का कई पुस्तकों में ब्यौरा विस्तार से दिया है। संक्षेप में वहाँ ऐसे क़ानून और नियम बनाये गये जिनसे हर एक महिला की—चाहे वह विवाहित हो या अविवाहित—गर्भवती होने की अवस्था में मुफ्त डाक्टरी देख भाल की गारंटी हो। पूरी तनख़ा के साथ छै से बारह हफ्ते की छुट्टी की व्यवस्था की गयी। स्वस्थ होने पर वह फिर अपने काम पर वापिस आ सकती थी। जहाँ भी माँ काम करती हो वहीं दो महीने से पांच साल तक की उम्र तक के बच्चों को देख भाल का प्रबन्ध किया गया। दूध पीते बच्चों की माताओं को दूध पिलाने के लिये दिन में काम पर से कई घंटों की छुट्टी दी जाने की व्यवस्था की गई। शिशु को अच्छी तरह रखने के लिये रुपयों–पैसों और कपड़ों की मदद का इन्तजाम किया गया।

इन तमाम बातों के साथ-साथ शिक्षा का जोरों से प्रचार शुरू किया गया। शिक्षा का उद्देश्य नागरिकों के दिल में यह पैठाना था कि मातृत्व के खिलाफ सामाजिक–आर्थिक दंडों को समाप्त किया जा रहा है प्रचार का उद्देश्य उनको यह समझाना था कि अब हर महिला मातृत्व की ऊंची नैतिक जिम्मेदारी को पूरा कर सकेगी—कि अब वह माता बनने के साथ साथ नये समाज की सक्रिय नागरिक होने का गौरव भी पूरा कर सकेगी।

नैतिकता में यह एक नया प्रयोग था। यह मानव स्वभाव को सुधारने का प्रयोग था। यह प्रयोग उस देश में शुरू हुआ था जहाँ हर साल मरने वाले शिशुओं को संख्या बेशुमार थी, लगभग उतनी ही जितनी आजकल कवेबेक और भारत में है। किन्तु अब रूस में प्रतिवर्ष मरने वाले शिशुओं और माताओं की संख्या दुनिया में सब से कम है। सोवियत रूस में हर साल लगभग साठ लाख शिशु जन्म लेते हैं। इनमें अविवाहित माताओं से जन्म लेने वाले शिशुओं की संख्या नहीं के

बराबर है। भ्रूण–हत्याओं को क़ानूनी तौर पर तो बन्द कर दिया गया है, महत्व की बात यह है कि भ्रूण–हत्यायें सचमुच बन्द हो गयी हैं।

इस एतिहासिक प्रयोग ने योनि आचार सम्बन्धी नैतिकता की नयी विचार धारा गढ़ने में कौन सी भूमिका अदा की? अब हम यही देखेंगे। इसका सम्बन्ध विवाह और परिवार से है।

मातृत्व के आड़े आने वाली आर्थिक कठिनाइयों को हटा देने से नैतिकता पर जो असर पड़ा वह फौरी था और आसानी से समझ में आने वाला था। वैश्यावृत्ति की जड़ें सारे राष्ट्र से ख़त्म की जा रहीं थीं। इसी काल में मातृत्व सम्बन्धी नये नियम बने। इन नियमों ने औरतों के शोषण के भिन्न भिन्न रूपों को खत्म करने के संघर्ष को सफलता की मंजिल पर पहुँचा दिया। स्त्रियों का समानाधिकार एक ठोस सत्य बन गया। फल स्वरूप विवाहों की संख्या में यकायक बढ़ती हुई। विवाह के खिलाफ आर्थिक–प्रतिबन्ध लापता हो गये थे। पहली बार यह सच्चाई सामने आई कि "दो इन्सान उतने ही खर्चे में बसर कर सकते हैं जितने में एक।" नये से नये प्रेमियों ने भी यह देखा कि विवाह कर लेना और बाल बच्चों के साथ जिंदगी बिताना सुगम भी है और अच्छा भी। विद्यार्थियों तक को तनख़ाहें मिलती थीं। दूसरे मेहनतकशों की तरह उनको भी सामाजिक सुरक्षा हासिल थी। नई पीढ़ी पर इसका बड़ा अच्छा असर पड़ा। अध–बूढ़े हो जाने पर ब्याह के लिये हाथ–पैर फटकारने का ख़तरा जाता रहा। नवयुवकों को जीवन–निर्माण के सबसे महत्वपूर्ण काल में विवाहित प्रेम और पितृत्व का वह बहुमूल्य अनुभव मिला जो बहुत ही संतोषप्रद था। इस प्रयोग का जो परिणाम हुआ उससे सोवियत वैज्ञानिकों की यह बात सच्ची साबित हुई कि अनैतिकता और योनि व्यभिचार "मनुष्य की तामसिक प्रवृत्ति" में जमे हुये नहीं हैं। यह सत्य साबित हुआ कि नैतिक और स्वस्थ जीवन के

बदले ये बड़ी खोटी चीजें हैं। उनका कहना था कि अनैतिक सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था व्यभिचार को लोगों पर लादती है और विवाह तथा मातृत्व-पितृत्व को एक बोझा बना देती है। स्त्रियों और पुरुषों, दोनों पर ही, यह बात लागू होती थी। सोवियत रूस में २० सालों के भीतर ही भीतर औरतों और पुरुषों की नैतिकता के मापदण्डों का अन्तर गायब हो गया। पुरुष वर्ग की समझ में आ गया कि विवाह और मातृत्व के रास्ते की रुकावटों के दूर होने तथा महिलाओं की पूर्ण आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता के साथ-साथ उसकी भी अनैतिक प्रभावों से मुक्ति हो रही है।

सोवियत रूस में तलाक़ सम्बन्धी क़ानून भी इसी प्रक्रिया का एक अभिन्न अङ्ग थे। जिन क़ानूनों का हमारे देशों में इतने ज़ोर-शोर से विरोध किया जाता उनका उद्देश्य सोवियत रूस में ठीक उलटा था जो इन क़ानूनों के विदेशी आलोचक बताते हैं।

सोवियत रूस में तलाक़ का उद्देश्य वास्तव में विवाह और परिवार को मजबूत बनाना था। यह नीति प्रेम और विवाह के उस ऐतिहासिक विश्लेषण पर आधरित थी जिसका हम पहले ब्यौरा दे चुके हैं। जैसा कि सभी जानते हैं, शुरू-शुरू में सोवियत के तलाक़ सम्बन्धी नियम बहुत ही नरम थे: विवाहित पक्षों में से एक पक्ष रजिस्ट्रेशन दफ़्तर के द्वारा दूसरे पक्ष को सूचना दे दे कि विवाह सम्बन्ध खत्म हो गया है। बस इसके सिवा और कोई अदालती कार्रवाई नहीं होती थी। यदि कोई बच्चा मौजूद हुआ तो उसकी देख-रेख का प्रबन्ध कर दिया जाता था। और इस काम में लगभग उतना ही खर्चा होता था जितना किसी नाटक घर में घुसने के लिये टिकट में। प्रेम पर आधारित न होने वाले विवाह सम्बन्धों को भंग करने के लिये तलाक को एक नैतिक अधिकार मानते हुये सोवियत कानून-निर्माताओं ने इस तर्क को चरम सीमा तक पहुँचा दिया। उन्होंने प्रेम को ही विवाह का एक मात्र आधार घोषित किया।

उन्होंने तमाम कठिनाइयों को रास्ते से हटा दिया। तलाक़ के रास्ते में जो भी क़ानूनी और आर्थिक कठिनाइयाँ थीं उन्हें दूर कर दिया। इस तर्क के नीचे एक गहरी सच्चाई छिपी हुई थी। वे जानते थे कि विवाहित सम्बन्धों से अलग जब स्त्री या पुरुष योनि सम्बन्धों में बंधने की कोशिश करते हैं तो इसका मतलब यह होता है कि उनका विवाह सम्बन्ध प्रेम पर आधारित नहीं है। अनैतिक योनि-सम्बन्धों के सबसे भोंडे रूप व्यभिचार और वैश्यावृत्ति होते हैं।

कहने का तात्पर्य यह कि सोवियत रूस में तलाक को प्रेम-रहित विवाहों को रोकने—यानी अनैतिक विवाहों को रोकने का—उपाय बताया गया। जारशाही ज़माने की ही वसीयत ये अनैतिक विवाह थे। बेरोक तलाक़ ने इन्हें ख़त्म करने का काम किया। बेरोक तलाक़ ने प्रेम पर आधारित विवाह सम्बन्धों को बढ़ावा दिया।

जाहिर है कि इस तर्क की अपनी गंभीर सीमायें हैं। और बहुत से लोग इसकी धज्जियां उड़ाने पर तुल जायेंगे। वजह यह कि हम आसानी से अन्दाज लगा सकते हैं कि सरल तलाक़ कानूनों को हमारे देशों में यकायक और पूरी तरह लागू कर दिया गया तो कौन सा नज़्ज़ारा देखने में आयेगा। नज़्ज़ारा यह देखने में आयेगा कि कुछ अरसे के लिये तो विवाह-प्रथा की जड़ें ही खोद डाली जायेंगी। कारण कि यह एक कटु सत्य है कि हमारे देशों में अभी भी बहुत से विवाह संबन्ध क़ायम हैं तो सिर्फ इसलिये कि तलाक़ का स्तेमाल करने में तमाम क़ानूनी और आर्थिक कठिनाइयां आड़े आती हैं।

रूस में क्रांति के बाद के कई बरसों तक यही हुआ भी। पर पिछले दस वर्षों में सोवियत रूस में तलाक की दर बहुत तेजी से कम हुई है। अब ज़रा दूसरे देशों से मुक़ाबला कीजिये : तलाक़ों की संख्या में दूसरे देशों में बेहद बढ़ती हुई है। तलाक़ के क़ानूनों की सख्ती कम करने का

दबाव बढ़ रहा है। इससे बढ़ती में और भी मदद मिली है। और यह तब जब पादरी और पुरोहित तलाकों का विरोध करने में एँड़ी-चोटी का पसीना एक किये दे रहे हैं। सोवियत रूस में आज तलाक़ के हामियों की संख्या उतनी नहीं है जितनी पहले थी। विवाह प्रथा ने और ज़्यादा मज़बूती पकड़ी है। इसका कारण एक नयी सामाजिक नैतिकता का बल है। इस नैतिकता का एक लक्षण यह है कि जो लोग बार-बार ब्याह करने के लिये दौड़ते हैं उन्हें बहुतों की खरी-खोटी का शिकार बनना पड़ता है। प्रेम की नैतिकता पर वहाँ भारी जोर दिया जाता है। वहाँ सच्चे प्रेम की स्थिरता पर जोर दिया जाता है। जोर इस शारीरिक-मानसिक तथ्य पर दिया जाता है कि अपने उच्चतम रूप में योनि-सम्बन्ध "खासतौर से दो व्यक्तियों के लिये" होता है। यह सम्बन्ध परस्पर प्रेम पर आधारित वैवाहिक जीवन में ही अपने उच्चतम रूप को पहुँच सकता है,—तब और भी जब घर बच्चों से गुलजार हो।

१६४४ की गर्मियों में मास्को में विवाह और मातृत्व सम्बन्धी कुछ कानून पास किये गये। इन क़ानूनों के सम्बन्ध में दुनिया के दूसरे जन-वादी देशों में पिछले कुछ दिनों से बहुत दिलचस्पी बढ़ गई है। इन नये क़ानूनों की कितने ही लोगों ने विवेचना की है। सोवियत रूस के कुछ "मित्रों" की यह जान कर चिन्ता बहुत बढ़ गई कि अब वहाँ तलाक लिफाफा-पोस्टकार्ड की तरह नहीं खरीदा जा सकता। लेकिन बहुताय-यत विवेचनाओं में संतोष ही जाहिर किया गया है। विरोधी विवेचनाओं के लेखकों ने स्तालिन की ओर उंगली उठाते हुये हमें सूचित किया है "रूस में भी जिन्दगी का ढर्रा अब हमारी जिन्दगी जैसा हो रहा है।"

है न धूर्तता!

वेश्यावृत्ति और व्यभिचार की हमारे देशों में बढ़ती हो रही है। योनि-रोगों की रोक-थाम की कोशिशें असफल हो रही हैं। शराबखोरी

दिन–दूनी–रात–चौगुनी बढ़ रही है। भ्रूण–हत्याओं की दर बढ़ती जा रही है। तलाकों में भी इसी तरह बढ़ती जारी है.................
उस पर इन विवेचकों का तुर्रा तो देखिये। कहते हैं, रूस में भी अब हमारी जैसी हालत हो रही है! मतलब यह कि रूसी भी अनैतिकता में हमारी नकल कर रहे हैं!!

सच्ची बात यह है कि सोवियत रूस के ये विवाह, मातृत्व, तलाक़ और गर्भपात सम्बन्धी तमाम कानून नैतिकता की उसी वैज्ञानिक प्रगति का और अधिक विकास हैं जिसका वर्णन हम इस पुस्तक में करते आये हैं।

विवाह सोवियत रूस में प्रेम की नैतिक शिला पर बड़ी मजबूती से आधारित हो गया है। सोवियत रूस में कुछ सालों पहले तलाक़ के खिलाफ़ क़ानून फिर जारी कर दिये गये थे, लेकिन तब जब भ्रूण-हत्याओं पर पूरी रोक-थाम पा ली गयी थी। उसी तरह अब तलाक़ क़ानूनों को सख्त करना सम्भव और जरूरी हो गया है क्योंकि मुफ्त और आसान तलाक़ की जो पहले जरूरत थी वह अब नहीं है। इसका पहला कारण यह कि विवाहों की असफलता के आर्थिक, नैतिक और सामाजिक कारणों को दूर कर दिया गया है; दूसरा यह कि इस स्थिति की देश के विधान में, खुल्लमखुल्ला मान्यता की जरूरत है। ये ही हैं वे साधारण और तार्किक कारण जिनकी वजह से अपने तलाक़ क़ानूनों में सोवियत रूस ने रद्दोबदल की है। उन्होंने शुरू-शुरू में तलाक कानूनों की सख्ती को कम नहीं किया था। क्योंकि, जैसा हमें बताया गया था, समाजवाद का यही तकाजा था। ये क़ानून अस्थायी क़ानून थे। और इनका उद्देश्य था तलाक़ों को उठा देने या तलाक़ों की संख्या को बेहद कम कर देने के लिये रास्ता तैयार करना।

१८ दिसम्बर १६१७ को सोवियत अधिकारियों ने दो ऐसे क़ानून पास किये, जिनको लेकर दुनिया में बड़ी हाय–तोबा मच गई। ये क़ानून

थे : पहला—सिविल मैरिजों, बच्चों और सन्तान के रजिस्ट्रेशन, विवाहों और मौतों सम्बन्धी क़ानून; दूसरा—विवाह और तलाक़ सम्बन्धी क़ानून। इन क्रांतिकारी क़ानूनों का बड़े ज़ोर-शोर से विरोध किया गया। इनके विरोध में लम्बे-लम्बे लेख लिखे गये और लच्छेदार सदुपदेश झाड़े गये। अब, जब कि नयी घटनाओं और नये क़ानूनों ने इन दोनों ऐतिहासिक क़ानूनों को बहुत पीछे छोड़ दिया है यह जानकर सचमुच ताज्जुब होता है कि लोगों को इनके बारे में जानकारी कितनी कम है।

यहाँ क्षण भर रुक कर हम कुछ तथ्यों की छान-बीन करेंगे। ये तथ्य सोवियत संघ की सुप्रसिद्ध महिला वकील ज़ेनिया बेलोसोवा से हमें मिले थे। जहाँ तक तथ्यों पर विश्वास करने न करने की बात है, जागरूक पाठक अपनी समझदारी से काम लेंगे।

बेलोसोवा कहती हैं : "सोवियत रूस के पहले-पहल के विवाह क़ानूनों का महत्व इस बात में है कि इन्होंने औरतों को क़ानूनी स्वतंत्रता दी। उन्हें पुरुषों के समान अधिकार दिये। इन अधिकारों को इन क़ानूनों ने असमानता के अन्तिम गढ़—परिवार—तक पहुँचाया। परिवारों में युगों पुराने रीति रिवाज और तौर-तरीके महिलाओं की दासता को एक साधारण सी बात बनाये हुये थे। यह दासता एक स्वाभाविक चीज मानी जाती थी। परिवारों में महिला की दासता को बहुधा खानदान की इज़्ज़त के नाम पर उससे छिपाया जाता था।"

"१९१७ में पास किये गये विवाह-कानून ज़ारशाही के विवाह-संबन्धों को नये सोवियत राज्य के लिये उचित नहीं ठहरा सकते थे। और कारणों के अलावा एक सीधा-सादा कारण यही था कि ज़ारशाही रूस में विवाह-संबन्ध ऐसी परिस्थितियों में हुये जब विवाह जैसे महत्वपूर्ण प्रश्न पर स्वतंत्र रूप से अपना मत प्रकट करने की अधिकांश महिलाओं को न तो छूट थी, न आज़ादी थी, न कोई गुंजाइश ही। सोवियत

सिद्धान्त परिवार के उन आधारों को सही नहीं ठहराते थे जो जारशाही रूस की विरासत थे। और कारणों के अलावा, एक सीधा—सादा कारण यही था कि क्रांति से पहले के तमाम विवाह—संबन्ध सच्चे प्रेम और एक दूसरे की इज़्ज़त की भावना पर आधारित नहीं थे। इस के बजाय वे आधारित थे इन विचारों पर कि फलाँ से विवाह करने पर कितनी रकम हाथ आयेगी, किस-किस रिश्तेदार को क्या-क्या मिलेगा, वग़ैरा वग़ैरा।"

"अक्तूबर—क्रांति का लक्ष्य था मनुष्य और मनुष्य की असमानता और शोषण को ख़त्म करना। अस्तु, परिवार जैसा मानव—संबन्धों का महत्वपूर्ण क्षेत्र अछूता नहीं रह सकता था। दिसम्बर १६१७ के सोवियत विवाह-क़ानूनों ने परिवार के लिये एक नया सिद्धान्त क़ायम किया— अपने मनपसंद साथी के साथ परिवार की नींव डालने का सिद्धांत। इन क़ानूनों ने साफ़ जाहिर कर दिया कि सोवियत परिवार अब एक दूसरे के प्रति प्रेम एक दूसरे की इज़्ज़त तथा पुरुष और स्त्री की समानता पर आधारित होंगे।"

"साथ ही, प्रथम सोवियत क़ानून को तलाक़ संबन्धी रुकावटों को सदा के लिये दूर करना था। जारशाही रूस में पादरियों के हस्तक्षेप से ही तलाक़ मिलता था। लेकिन तब भी ऊपर बताये गये तमाम बन्धन जारी रहते थे।

जिन बन्धनों का ज़िक्र इस सोवियत महिला ने किया है वे तमाम रूस से बाहर के बहुसंख्यक देशों में आज भी जारी हैं संक्षेप में, हमारे तमाम क़ानूनों की तरह जारशाही तलाक़ क़ानूनों की मांग थी कि इस बात के गवाही पेश किये जायें कि पुरुष या स्त्री ने व्यभिचार किया है। बेलोसोवा ने टालस्टाय के उपन्यास अन्ना करेनिना और दी लिविंग कौर्प्स (जीवित शव) के उदाहरण देकर बताया कि किस तरह क़ानून की कुल्हाड़ी ने मानव भावनाओं को कुचल कर ख़त्म कर दिया था।"

१६१७ के तलाक क़ानून का कहना है : "विवाह बंधन से बंधे हुए एक या दोनों पक्षों की माँग पर विवाह को रद्द किया जा सकता है" (पैराग्राफ १)। दूसरी धारा भी इतनी ही महत्वपूर्ण है। उसमें कहा गया है कि रजिस्ट्रार के दफ्तर में दरख़ास्त देकर विवाह को रद्द किया जा सकता है (यानी तलाक हासिल किया जा सकता है)। इस धारा के मुताबिक अदालत में जाने की ज़रूरत ही नहीं है।

ज़ेनिया बेलोसोवा कहती हैं "निस्संदेह समाज के नैतिक रूप से ढुलमुल इन्सानों ने क़ानून के इस पहलू का गलत फायदा उठाया। और हालांकि तथाकथित मुक्त प्रेम के कुछ वकीलों ने सोवियत विवाह क़ानूनों के जनवादी सिद्धान्तों को तोड़मरोड़ कर यह साबित कर डालने की कोशिश की कि पारिवारिक जीवन एक निरर्थक चीज़ है—उससे व्यक्तिगत स्वाधीनता में बेड़ियाँ पड़ जाती हैं—फिर भी १६१७ का नया क़ानून बहुत ही ज़रूरी था। उसने सामाजिक जीवन पर गहरा असर डाला।"

"इस क़ानून ने इस बात की सम्भावना सदा के लिये ख़त्म कर दी कि विवाह को औरतों को गुलाम बनाने और परिवार में असमानता कायम करने का साधन बनाया जाय।"

हम उन अमली उपायों का ज़िक्र पहले ही कर चुके हैं जिनके द्वारा सोवियत महिला को आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता का हक़दार बनाया गया। बेलोसोवा ने उदाहरण देकर बताया है कि सोवियत रूस में महिला विद्यार्थियों की संख्या आज कितनी बढ़ी-चढ़ी है। दूसरे धंधों में भी स्त्रियाँ बड़ी संख्या में लगी हुई हैं। बेलोसोवा ने यह भी बताया है कि ट्रांसकाकेशस तथा मध्य एशिया के जनतंत्रों पर शुरू शुरू के तलाक़ क़ानूनों ने बहुत ज़बरदस्त असर डाला है।

"अब तो औरतें जन कमिसार तक के पद पर विराजमान हैं। औरतें सामूहिक खेतों की अध्यक्षा हैं। यह हालत वहां की है, जहां कुछ

साल पहले मर्द अपनी औरतों का क़त्ल सिर्फ इस बात पर कर डालने को तैयार रहते थे कि औरतें घूंघट काढ़ने से इन्कार करती हैं।"

सोवियत शासन के प्रारम्भिक दिनों में जीवन की कठिनाइयां बेशुमार थीं। बेलोसोवा कहतीं हैं "इन परिस्थितिओं में सोवियत महिला के सामने दो ही रास्ते थे : या तो वह चूल्हे-चक्की की ज़िन्दगी में जा गिरे या ज्ञान प्राप्त करने और किसी कौशल को सीखने की कोशिश करके वह आगे बढ़े, अपने देश के लिये उपयोगी नागरिक बने और प्रगतिशील विचारों के लिये अपने संघर्ष को जारी रखे। यह एक ऐसा संघर्ष था जो किसी व्यक्ति विशेष के हित का नहीं बल्कि समूची मानव जाति के हित का था। इसी एक रास्ते पर चलकर वह पुरुष की सच्ची सहयोगी और मित्र बन सकती थी। — — —स्त्री ने परिवार में नया सम्मानपूर्ण स्थान, समाज में नया सम्मानपूर्ण स्थान जीतने के साथ ही जीता।"

स्पष्ट है कि कोई भी क़ानून—वे कितने ही क्रांतिकारी क्यों न हों—पास कर देने से ही सामाजिक संबंध नहीं बदल जाते। सोवियत महिलाओं को पता लगते देर न लगी कि उन्हें जो नये अधिकार मिले हैं उन्हें जीवन की समस्यायें कोसों दूर ठेले रहती हैं। युगों पुरानी आदतों और रीति-रिवाजों के वशीभूत बहुसंख्यक लोग यही समझते कि विवाह के बारे में पुरानी धारणायें उचित और लाभदायक थीं। नये क़ानूनों ने महिलाओं की सामाजिक और नैतिक उन्नति का रास्ता तो साफ़ कर दिया था। लेकिन इस उन्नति तक सचमुच पहुँचने की इच्छुक महिलाओं को बहुत ज़बर्दस्त संघर्ष करना पड़ा। दादियों और नानियों ने उनका पूरी ताक़त से विरोध किया। उनका विरोध ऐसे पुरुषों ने भी किया जो महिलाओं की स्वाधीनता के कट्टर विरोधी थे और उसे असम्भव बनाने पर कमर कसे हुये थे।

सोवियत महिलाओं का क्या हश्र हुआ? बेलोसोवा की इस विषय में टिप्पणियाँ बहुत ही दिलचस्प हैं। शुरू-शुरू के सालों की हालत के

बारे में वह कहती हैं : "स्त्री को अपनी कुव्वत पर पूरा भरोसा करना पड़ा। उसे तमाम कठिनाइयों से टक्कर लेने का दृढ़ संकल्प करना पड़ा। एक के बाद एक, उसे अड़चनों के पहाड़ पार करने पड़े। इस दौरान में स्त्रियों को मानसिक परेशानियाँ भी काफी उठानी पड़ीं क्योंकि सहारे के लिये उनके सामने कोई ऐतिहासिक मिसाल मौजूद नहीं थी।"

"नई महिलाओं की अभी तक कोई मिसाल सामने नहीं आई थी। ऐसी महिलाओं की मिसाल सामने नहीं आई थी जिनमें मनुष्य के बराबर के दर्जे तक उठाने वाली व्यक्तिगत और सामाजिक स्वतंत्रता की भावना मौजूद हो, साथ ही जिनमें स्त्री-सुलभ गुण—स्त्रियत्व, कोमलता और मातृत्व की नम्रता—भी मौजूद हों। मानव-इतिहास नारी-चरित्र के केवल एक अङ्ग के विकास के दृष्टांत अब तक पेश कर सका था। वह सर्वाङ्गीण और सर्वमुखी विकास वाली महिला का उदाहरण न तो पेश कर सका था, न कर सकता था। अतीत नहीं, भविष्य ही उनके उदाहरण पेश करेगा।"

कानून के ज्ञान में दक्ष इस महिला ने नये कानूनों के शुरू शुरू के काल की बहुत सच्ची तसवीर पेश की है,—उस सम्बन्ध की जिसे हमारे देश में बहुत से लोग "रबड़ की मोहर वाली तलाक कहते हैं।"

"नई महिमा की स्थिति निर्धारित करने के लिये सोवियत समाज को खुद ही खोज-बीन में जुटना पड़ा। यह खोज-बीन उसने हवाई सिद्धांतों नहीं बल्कि जीवन के अनुभवों से की थी। कभी-कभी स्त्री और पुरुष की पीड़ाओं के साथ-साथ ग़लतियां भी जुड़ी-मिली रहीं। परिवार में कलह और विद्वेष भी बढ़े। इन बातों ने इस समस्या को और भी गंभीर बना दिया था।"

पाँच-साला योजनाओं के यशस्वी-काल में ही बड़ा महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। दसियों हजार औरतों ने बड़ी तेजी से अपने आर्थिक

और सांस्कृतिक स्तर को ऊंचा उठाया। उन्होंने उद्योग-धंधों में काम शुरू किया। विद्वान, इंजीनियरी, और कला-कौशल के कामों की तरफ उन्होंने हाथ बढ़ाया। लेकिन इसी दौरान में उन्हें कुर्बानियां भी सबसे ज्यादा करनी पड़ीं।

"एक सबसे बड़ी कुर्बानी" बेलोसोवा ने बताया है, "यह थी कि सोवियत महिला को अब अपने परिवार और बच्चों की तरफ ध्यान देने का वक्त कम मिलता था। इन्हीं कारणों से उसे अपने पति की देख-रेख और घर-गृहस्थी की देख-भाल के लिये बहुत कम वक्त मिलता था। कहने की जरूरत नहीं कि अपने कपड़े-लत्ते संभालने, बालों को संवारने और वेश-भूषा को संभालने का वक्त निकालना उसके लिये असंभव सा हो गया था।"

पूँछा जा सकता है कि १६३०-३६ में सोवियत रूस का दौरा करने वाले सोवियत जीवन-प्रणाली के कितने आलोचकों ने वहां की महिलाओं और नव-वधुओं की असुन्दरता के कारणों को जानने की कोशिश की? पूँछा जा सकता है: इन आलोचकों में से कौन है वह जिसने जानने की कोशिश की कि सोवियत महिला ने बालों को संवारना, नाखूनों को रंगना और नये-नये फैशन के जूते पहनना इसलिये छो दिया था कि वह "समूची मानव जाति के हित के संघर्ष" को जीतना चाहती थीं।"

जेनिया बेलोसोवा कहती हैं: "सोवियत महिला ने जिन्दगी की बहुत सी जरूरतों को त्याग दिया। सज-धज के कपड़ों की स्त्री-सुलभ अभिलाषा में उसने ज्यादा से ज्यादा कमी की। अपने वक्त को भी उसने ज्यादा से ज्यादा किफ़ायत से खर्च किया। इस तरह उसने हजारों वर्षों की कमी को पूरा किया और सच्ची समानता के मार्ग पर ज्यादा से ज्यादा आगे बढ़ सकी।"

आंखें फाड़-फाड़ कर देख आने के बाद हमारे देशों के आलोचक सोवियत महिलाओं के बारे में यह थोथा विचार व्यक्त करते हैं कि "सोवियत महिलाओं को मालूम नहीं कि उन्होंने क्या खो दिया है।"

बेलोसोवा का जवाब है: "यह अच्छी तरह जान लिया जाना चाहिये कि हरेक सोवियत महिला को इन अस्थायी, पर जरूरी, कमियों के बारे में अच्छी तरह मालूम था। स्थायी पारिवारिक जीवन के प्रति उसकी लालसा कभी कम नहीं हुई। मातृत्व के सुखद अनुभव, प्रेम की भावना, अपने पति की सच्ची सहयोगी बनने की भावना तथा जीवन और नारित्व के सुखों के लिये उसकी लालसा में कभी कमी नहीं हुई।"

फिर भी कुछ अरसे तक एक दूसरी धारा भी बलवती रही। कुछ औरतें दूसरी सीमा तक पहुंच गयीं। पुरुष से समानता हासिल करने का अर्थ उन्होंने यह लगाया कि पुरुष ही बन जाने की कोशिश की जाय। उन्होंने मर्दों के से कपड़े पहनना और उन्हीं के तौर-तरीकों की नकल करना शुरू कर दी। इन महिलाओं की सभी ने हंसी उड़ाई। क्रांतिकारी युग के शुरू-शुरू के कठिन काल में इनके लिये एक खास नाम चुन लिया गया था। उन्हें मजाक में "फौजी कम्युनिज़्म के नमूने" कहा जाने लगा था। सम्भवतः ये महिलायें समाज में सबसे निराली ही दिखाई पड़तीं —खास तौर से विदेशी आगन्तुकों को। पर इन औरतों की संख्या बेहद कम थी।

पाँच-साला योजनाओं की सफलता के काल में रहन-सहन के पूरे स्तर में आश्चर्यजनक उन्नति हुई। फलस्वरूप, महिलाओं की स्थिति में बुनियादी परिवर्तन हुआ। अब उनके सामने यह समस्या न रह गई थी कि हम घर का काम संभालें या नौकरी करें। अब उनके सामने समस्या न रह गई थी कि हम घरेलू जीवन के सुखों की तरफ झुकें या जनहित का कोई सामाजिक कार्य संभालें।

बेलोसोवा कहती हैं : "सोवियत महिला ने मजबूर कर दिया था कि आम लोग उसे इन्जीनियर, उड़ाका, डाक्टर, वैज्ञानिक, सामूहिक खेतों की अध्यक्षा और स्ताकनोवाइट कामगर के रूप में स्वीकार करें। अब वह अपने और अपने बच्चों के सुखी-जीवन का अच्छी तरह प्रबन्ध कर सकती थी। इस रूप में परिवार में उसका भी वही स्थान हो गया जो पुरुष का होता है और तब सोवियत परिवार के उन्नत होने का युग आरम्भ हुआ।"

इस नये युग की प्रमुख विशेषता बेलोसोवा यह बताती हैं कि,

"आज न तो रुपये-पैसे का सवाल, न कानूनी या वास्तविक असमानता ही औरतों को मजबूर कर सकती है कि वह इससे विवाह करे और उससे न करे। वह अब सोवियत समाज की सम्मान प्राप्त सदस्या है। अपना घर बसाने और पारिवारिक सुख का साज सजाने में वह किसी के आधीन या परवश नहीं है। वह पूरी तरह स्वाधीन और मुक्त है। औरत के प्रति पुरुष के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन हुआ है। औरत की तरफ़ नफ़रत और घृणा की भावना का तथा कदम-कदम पर अपना बड़प्पन जमाने की चेष्टा का जो पुराने रूस की विरासत थी—अब पूरी तरह लोप हो चुकी है। एक नये ही आधार पर सोवियत—पुरुषों और स्त्रियों के सुखी पारिवारिक जीवन का निर्माण हो रहा है।"

यदि स्त्री को दासता से मुक्त न किया जाता और समानता के स्तर पर खड़ा न किया जाता तो इस तरह के परिवार का निर्माण असंभव था। "आज" क्सेनिया बेलोसोवा कहती हैं, "वे सभी क़ानूनी और दूसरे साधन जुटा दिये गये हैं जिनसे पुरुष और स्त्री के बीच एक दूसरे के प्रति प्रेम, मित्रता, सम्मान, समान विचारों और हितों पर आधारित परिवार की नींव डालना सम्भव हो गया है।"

पारिवारिक जीवन के निर्माण में इस क्रांतिकारी प्रगति के फल-स्वरूप १६१७ के क़ानून पुराने पड़ गये। पारिवारिक-जीवन को

बुनियादी समस्याओं को ये क़ानून सुलझा चुके थे। रूस ही नहीं, हमारे देशों में भी, पहले महायुद्ध के पहले के काल में पारिवारिक जीवन में शिथिलता आ गयी थी। इस शिथिलता के कारणों को दूर करने के बाद सोवियत जनता ने दूसरी गम्भीर समस्याओं को सुलझाना शुरू किया। पहले महायुद्ध से पहले के काल की शिथिलता ने पारिवारिक सम्बन्धों को छिन्न-भिन्न कर दिया था। यह शिथिलता इस महाद्वीप पर तो और भी भयानक रूप धारण करती जा रही है।

सोवियत पुरुषों और स्त्रियों ने भविष्य की ओर देखना शुरू किया। उन्होंने अपने बच्चों की शिक्षा और उन्नति की ओर देखना शुरू किया। सोवियत सरकार की बार बार यह कह कर आलोचना की गई है कि उसने पारिवारिक जीवन को समाप्त करना चाहा और बच्चों को—राज्य की पैदावार के तौर पर—'उगाना' चाहा। नये सोवियत विवाह और परिवार क़ानूनों ने पिछले बीस सालों में परिवार को नये और ऊंचे धरातल पर पहुँचा दिया है। इस उन्नत धरातल पर पहुँचना तभी सम्भव हो सका जब पुरुष और स्त्री के सम्बन्ध में—पति और पत्नी के सम्बन्ध में—क्रांतिकारी परिवर्तन हुए।

८ जुलाई, १९४४ में सोवियत रूस में जो क़ानून बने उनको लेकर हमारे देश के अखबारों ने मनमानी बातें कह डालीं। ताज्जुब की बात यह है कि पुराने कानूनों का नाम नहीं लिया गया। नये क़ानूनों को पुरानी नीति में एकदम परिवर्तन का द्योतक बताया गया। पुरानी नीति तो मानो आसमान से टपक पड़ा हो।

बात यह है कि सोवियत के सबसे बड़े प्रजातंत्र में (जिसे रूसी प्रजा-तंत्र संघ कहते हैं) १९२७ में बड़े महत्वपूर्ण क़ानूनी परिवर्तन हुये थे। उस साल के नये विवाह-क़ानून ध्यान देने योग्य हैं।

इन क़ानूनों ने उस तरह के सम्बन्धों को क़ानूनी मान्यता दी थी जो हमारे देशों में भी माने जाते हैं जिन्हें कामन ला मैरिज (प्रचलित धर्म

विवाह) कहते हैं। १६२७ से पहले सोवियत संघ में जिन विवाहों को मान्यता दी जाती थी वे थे सरकारी रजिस्ट्रारों द्वारा कराये गये विवाह। १६२७ में कॉमन लॉ विवाहों को एक हद तक कानूनी मान्यता दे दी गयी।

इसका यह मतलब नहीं कि धर्म विवाहों को भी रजिस्टर्ड विवाहों के स्तर पर ला खड़ा किया गया। विवाह का रजिस्ट्रेशन विवाह सम्बन्ध का अब भी अकाट्य सबूत माना जाता था। किन्तु औद्योगिक और सामाजिक परिवर्तन के काल में (जिसकी कठिनाइयों का हम पहले भी जिक्र कर चुके है) स्त्रियों और बच्चों की स्थिति को और भी मजबूत बनाने की जरूरत पड़ी। इसीलिए कानून की नयी धाराओं में कहा गया कि प्रचलित धर्म विवाहों के अन्तर्गत विवाहित पुरुष और स्त्री को भी रजिस्टर्ड विवाह की जिम्मेदारियों को मानना पड़ेगा। इस सबूत की असली जरूरतें ये मानी जाती थीं कि—

—दोनों पक्ष साथ २ रहे हैं।

—वे पति और पत्नी माने जाते रहे हैं।

—उनकी अपनी सम्मिलित गृहस्थी रही है।

—वे अब भी एक दूसरे पर निर्भर हैं, या किसी समय थे और उन्होंने अपने बच्चों को साथ-साथ पाला है।

निस्संदेह, इस कानून का उद्देश्य उन स्त्रियों की स्थिति को मजबूत करना था जिनको खतरा था कि उनके पति रजिस्टर्ड-विवाह की जिम्मेदारियों से बचने के लिये उन्हें छोड़कर भाग जायेंगे। यह जानी-मानी बात है कि इस सुविधा के बावजूद कि बहुत कम खर्च पर बड़ी आसानी से तलाक़ हासिल किया जा सकता था, ज्यों—ज्यों वक्त बीता उन लोगों के खिलाफ़ जन-मत बढ़ने लगा जो बिना किसी न्यायोचित

कारण के ही तलाक़ के लिये दौड़ पड़ते थे। जिन लोगों ने बार–बार तलाक की तरफ कदम बढ़ाया उनके खिलाफ़ उनके मित्र और बड़े-बूढ़े अनुशासन की कारंवाइयाँ तक करने लगे। अस्तु, उन दिनों मौजूद वातावरण में गैर जिम्मेदार लोगों में अनुचित सम्बन्धों की प्रवृत्ति भी मौजूद थी।

यह बड़े महत्व की बात है कि १६२७ के कानून में पति और पत्नी की व्यक्तिगत सम्पत्ति पर खास ध्यान दिया गया है। अधिकांश लोगों की समझ में अब आया है कि सोवियत शासन का उद्देश्य व्यक्तिगत सम्पत्ति को खतम करना न तो था; न है। उसका उद्देश्य था तमाम उद्योग–धन्धों पर से निजी मिलकियत को खत्म करना ताकि दूसरों की मेहनत को मुनाफे ऐंठने का साधन न बनाया जा सके। सोवियत सरकार का उद्देश्य था पूँजीवादी सम्पत्ति को खत्म करना। प्रचलित धर्म–विवाहों के सम्बन्ध मे जो क़ानून बना उसमें इस बात की व्यवस्था की गयी कि सम्पत्ति पर पति और पत्नी, दोनों का अधिकार होगा। कानून में कहा गया कि पति और पत्नी में सम्बन्ध विच्छेद हो जाय तो सम्पत्ति का बराबर बराबर बंटवारा अदालतों के जरिये कराया जाय, अदालतों के जरिये ही बच्चों के लालन–पालन की व्यवस्था का भी प्रबन्ध कराया जाय।

आगे—क़ानून में यह भी कहा गया कि पति और पत्नी दोनों में से अगर एक काम कर सकने में असमर्थ हो तो दूसरा जो काम करने में समर्थ है, उसकी सहायता करेगा, भले ही दोनों में सम्बंध-विच्छेद क्यों न हो गया हो।

मास्को के कानून पंडित जे ग्रान्दोव ने बताया है कि सिर्फ इन्हीं दो बातों में १६२७ के क़ानून ने प्रचलित धर्म विवाहों को रजिस्टर्ड विवाहों के समानता दी थी। १६२७ के क़ानून से जायदाद के उत्तराधिकार के

हक़ और रजिस्टर्ड विवाहों में दिये गये उत्तराधिकार के दूसरे हक़ों को प्रचलित धर्म विवाहों के हक़ों में शामिल नहीं किया। अगर इस संबंध में कोई परिवर्तन किया जा सकता था तो प्रमुख न्यायालय द्वारा।

आन्द्रोव कहते हैं, "यह याद रखना चाहिये कि सोवियत रूस में—जिसमें ६० से ज्यादा राष्ट्रीय इकाइयाँ मौजूद हैं—अखिल—संघ—क़ानून विवाह तथा दूसरे रीति-रिवाजों से सम्बन्धित सभी प्रश्नों का समावेश नहीं कर सकते थे। इसीलिए इन मामलों में क़ानून बनाने का हक संघ के भिन्न-भिन्न प्रजातन्त्रों को है। सोलहों भिन्न २ प्रजातन्त्रों के अपने-अपने क़ानून हैं। इन कानूनों के साथ—साथ समूचे सोवियत प्रजातन्त्र संघ के कुछ क़ानून हैं जो भिन्न २ प्रजातन्त्रों पर भी लागू होते हैं।"

आन्द्रोव ने इस बात पर ज़ोर दिया है कि प्रचलित धर्म—विवाह संबंधी १९२७ का क़ानून यूक्रेनी जनतन्त्र पर लागू नहीं होता था। यूक्रेनी जनतंत्र में केवल रजिस्टर्ड—विवाहों को मान्यता दी गई है। आन्द्रोव ने यह भी बताया है कि न सिर्फ १९४४ के समय से बल्कि उससे १७ साल पहिले से ही सोवियत संघ में प्रचलित धर्म-विवाहों और रजिस्टर्ड विवाहों में अन्तर माना जाता था।

१९४४ में जो बड़ा परिवर्तन हुआ और जिसे आलोचक नजरन्दाज कर गये हैं वह यह कि प्रचलित धर्म विवाहों की वहाँ अब कोई क़ानूनी मान्यता नहीं रही। इस परिवर्तन का कारण बहुत साधारण है। सोवियत संघ में विवाह और परिवार की स्थिति इतनी उन्नत हो चुकी कि महिलाओं और बच्चों की सुरक्षा के लिये यदि किसी सम्बन्ध को मान्यता दी जाती है तो सामाजिक तथा क़ानूनी रूप से समर्थित विवाह सम्बंध को।

इस बारे में मुझे और अधिकृत सूचना सोवियत संघ की विज्ञान—

समिति के कानून—विभाग के सदस्य और नागरिक—क़ानून पर अनेकों पाठ्य पुस्तकों के रचियता प्रोफेसर जी स्वेर्दलोव से मार्च १९४५ में मिली।

उन्होंने बताया कि, "सोवियत संघ के धर्म-विवाह क़ानून का बड़ा शिक्षाप्रद इतिहास है। १९१८ में अनियमित विवाह—सम्बंधों को मान्यता नहीं दी गयी थी। कारण बहुत साधारण था: उनको मान्यता देने से परिवार के मूल आधार खोखले पड़ जाते—। सोवियत राज्य ने अपने आरम्भकाल से ही परिवार और परिवार को सुदृढ़ बनाने वाले उपायों पर खास ध्यान दिया है — ताकि शक्तिशाली और स्वस्थ परिवार का निर्माण सम्भव हो सके।"

अगर यह सच है तो फिर आठ साल तक मान्यता न देने के बाद १९२६ मे धर्म विवाहों को क्यों क़ानूनी बना दिया गया?

"इसलिये," प्रोफेसर स्वेर्दलोव उत्तर देते हैं, "कि सोवियत राज्य और सोविय त अर्थ व्यवस्था के विकास की प्रारम्भिक मंजिलों में धर्म-विवाहों को क़ानूनी मान्यता न देने से औरतों के हित खतरे में पड़ जाते। आम जनता का आर्थिक और सांस्कृतिक स्तर अभी ऊँचा नहीं था। पुनर्व्यवस्था के काल की आर्थिक कठिनाइयों ने बेरोजगारी और कंगाली का रूप धारण कर रखा था। इन परिस्थितियों में लाजिमी था कि जीविका के साधनों से वंचित महिलाओं को ऐसे पुरुषों से विवाह करने के लिए मजबूर होना पड़े जिनके पास खाने पहनने के लिए काफ़ी था।"

"धर्म विवाहों पर उत्तराधिकार आदि के हक़ न लागू करने से नुक़सान सब से पहले और सब से ज्यादा औरतों का होता। सोवियत राज्य ऐसी स्थिति को टिकाऊ नहीं बनने दे सकता था।"

प्रोफेसर स्वेर्दलोव ने आगे कहा; "बाद में भारी परिवर्तन हुए।

बेकारी को खत्म कर दिया गया। महिलाओं के लिए ऐसी परिस्थितियाँ तैयार कर दी गईं जिनके अन्तर्गत वे नौकरी या पढ़ाई, जो भी चाहें, कर सकती थीं। हजारों लाखों की तादाद में महिलाएँ उद्योग धन्धों में शामिल हो गईं। देश के आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन में महिलाओं का बहुत महत्वपूर्ण स्थान हो गया। देश पर जर्मनों के आक्रमण से पहले १ करोड़ १० लाख महिलायें उद्योग-धन्धों और दफ्तरों में काम करतीं थीं। १ करोड़ ६० लाख महिलाएं सामूहिक खेतों में काम करती थीं। युद्ध शुरू होने से पूर्व उद्योग-धन्धों में काम करने वालों में औरतों की संख्या ४५ प्रति शत थी।"

महिलाओं की आमदनी में भारी बढ़ती हुई। माताओं के लिए राजकीय सहायता भी बढ़ाई गई। स्कूलों, बाल उद्यानों, किंडरगार्टनों इत्यादि की संख्या कई गुना ज्यादा हो गई। सोवियत परिवारों की उन्नति के जितने भी साधन थे उन सभी में बढ़ती हुई।

प्रोफेसर स्वेर्दलोव ने ज़ेनिया बेलोसोवा के विचारों का समर्थन किया है। "इस आर्थिक पृष्ठभूमि के कारण ही वे नए तत्व उत्पन्न हुए जिन्होंने पुरुष और स्त्री, पति और पत्नी के सम्बन्धों को नियंत्रित किया। महिलाओं के हितों की रक्षा के लिए अनियमित विवाहों को कानूनी मान्यता और कानूनी सुरक्षा देने की अब जरूरत न रह गई थी। उल्टे, यह सोचने का अब हर एक को अधिकार था कि यदि कोई स्त्री किसी पुरुष से अनुचित सम्बन्ध करती है तो दोष स्त्री का है। उसका दोष यह है कि विवाह और परिवार के प्रति उसका रवैया गैरजिम्मेदारी का और विचार शून्य है।"

हम यह सोच कर आश्चर्यचकित रह जाते हैं कि विवाह सम्बन्धों को दृढ़ करने और मानव परिवार को सुरक्षित बनाने जैसी गम्भीर समस्याओं को कानूनी-पंडित सुलझा सकते हैं। किन्तु हमारे देश में

आज विवाह, तलाक, आदि आदि में कानूनी परिवर्तनों के लिए बड़ा शुल-गपाड़ा मचा हुआ है। मानना पड़ेगा कि जिन परिवर्तनों का सुझाव हमारे देशों में दिया गया है वे तलाक-कानून को सरल बनाने के लिए हैं। स्पष्ट शब्दों में हमारे देशों में आन्दोलन तलाक को और भी आसान बनाने के लिए है।

सोवियत रूस में विवाह सम्बन्धी कानूनी धाराओं और हमारे देशों में ऐसी ही कार्रवाइयों के बीच अन्तर को खास बात क्या है? इसका पता लगाना बहुत मुश्किल नहीं। सोवियत रूस में पिछले दिनों हुए अनेक कानूनी परिवर्तनों का उद्देश्य यह रहा है कि सोवियत समाज के सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों के साथ-साथ कानूनी विवाह पूरी तरह मेल खाएँ। हमारे देशों में भी विवाह कानून के "नवीनीकरण" की मांग का जाती है। किन्तु इस मांग का कारण "आगे बढ़े" वकील, न्यायाधीश, सभासद-यहाँ तक कि पुरोहित लोग भी-बताते हैं: "प्रेम और नैतिकता की तरफ अब हमारा नजरिया बदल गया है।"

लेकिन एक अन्तर और भी है। सोवियत विवाह कानूनों में जो परिवर्तन हुए उनका वास्तविक उद्देश्य सब से पहले स्त्रियों की स्थिति को सुदृढ़ बनाना रहा है। इनका उद्देश्य था यह कि विवाह सम्बन्ध को भी-पुरुषों और स्त्रियों के संबंध को अपने बच्चों से उनके संबंध को, तथा समूचे परिवारिक सम्बन्ध को—सुदृढ़ बनाया जा सके। हमारे यहाँ इन उद्देश्यों की चर्चा तक नहीं होती। उल्टे, तलाक कानूनों में परिवर्तनों का विरोध करने वाले वे लोग दिखाई देते हैं जो परिवार के और भी कमजोर हो जाने के डर से घबड़ा उठे हैं। हमारे यहाँ के 'अनुभवी' लोग बार २ विवाह-सम्बन्धों के पतन और तलाकों की बढ़ती की दुहाई देते हैं। वे कहते हैं, पारिवारिक जीवन के पतन को रोकने के लिए कानून में ही कुछ परिवर्तन किये जायें।

१६४४ के सोवियत विवाह और पारिवारिक कानूनों की मुख्य-मुख्य बातों को देखने से उपरोक्त कथन और भी स्पष्ट हो जायगा।

सब से पहली बात यह कि वहाँ धर्म विवाहों को कानूनी तौर पर उठा दिया गया। सोवियत रूस इस मामले में अन्य देशों से आगे बढ़ा हुआ है। इसका कारण यह नहीं है कि वहाँ कानून पास कर दिया गया था। इसका सब से बड़ा कारण यह है कि धर्म-विवाहों को न्याय-सगत ठहराने वाले आर्थिक और सामाजिक कारण सोवियत रूस में अब मौजूद नहीं हैं।

दूसरे यह कि सोवियत रूस में अब विवाह-संबंध उतना आसान नहीं है जितना पहले था। भावी पति और पत्नी को रजिस्ट्रार के सामने उपस्थित होकर यह घोषणा करनी पड़ती है कि उनके विवाह में किसी तरह की कानूनी बाधा मौजूद नहीं है। पुरुष और स्त्री घोषणा करते हैं कि एक दूसरे के स्वास्थ्य की स्थिति से वे भली भाँति परिचित हैं। फिर वे बताते हैं कि दोनों में से किसी ने पहले विवाह किया था या नहीं। यहाँ रजिस्ट्रार बड़ी सतर्कता से काम लेता है। पहले विवाह से अगर किसी के बच्चे हैं तो उनके पालन-पोषण सम्बन्धी तथ्यों की जाँच की जाती है। उनके पालन पोषण की उचित व्यवस्था न हुई तो विवाह नहीं हो सकता। सोवियत नागरिक "सौगन्ध" को बहुत महत्वपूर्ण मानते हैं। इसीलिए गलत-सलत सूचना दिये जाने की गुंजाइश नहीं होती है। अब रजिस्ट्रार का कर्तव्य होता है कि विवाह-इच्छुक पुरुष और स्त्री को वह विवाह सम्बन्धी कानून पढ़ कर सुनाये और झूठे बयान देने के कड़े दण्डों से उन्हें अच्छी तरह परिचित कर दे। इतना सब कुछ हो जाने के बाद ही विवाह हो सकता है।

एक दिलचस्प बात और भी है। नए सोवियत कानून में एक ऐसी धारा है जो दूसरे देशों में मौजूद धार्मिक रोक से बहुत भिन्न नहीं है।

सोवियत रूस में विवाह संबन्धी दरखास्त को सब के सामने पढ़कर सुनाने की प्रथा नहीं है। फिर भी यदि कोई पुरुष या स्त्री इस विवाह संबन्ध के बारे में सुने और इसे रोकने की जरूरत महसूस करे तो वह रजिस्ट्रार के सामने उपस्थित होकर विवाह को तब तक रुकवा सकता है जब तक उसकी शंकाएं दूर न हो जायें।

अमरीका, ब्रिटेन और कनाडा के लिए सोवियत रूस का तलाक कानून बहुत ही दिलचस्प सिद्ध होगा। इन देशों को यह जानकर कम ताज्जुब न होगा कि "नास्तिक" देश सोवियत रूस में तुर्त-फुर्त तलाकों को खत्म कर दिया गया है। वहाँ विवाह संबन्ध को भंग कर सकना आसान चीज नहीं रह गई, इसके रास्ते में नई-नई रुकावटें खड़ी कर दी गई हैं।

सोवियत रूस ही एक ऐसा देश है जहाँ तलाक आसान नहीं, मुश्किल होता जा रहा है।

८ जुलाई १९४४ से पहले—कम से कम कहने भर को तो—यह सम्भव था ही कि रजिस्ट्रार के पास अर्जी दे कर और थोड़ी सी फीस जमा करके तलाक हासिल कर लिया जाय। पुरुष या स्त्री कोई भी, यह कर सकता था। बाद में दूसरे पक्ष को सूचित कर दिया जाता था। कई सालों तक यही तरीका जारी रहा। किन्तु पिछले दस सालों में सोवियत नागरिकों ने तलाक की तरफ ज़्यादा गम्भीर रुख अपनाया है। बच्चों के पालन-पोषण इत्यादि सम्बन्धी कानूनों को देख कर गैर जिम्मेदार लोगों को तलाक के लिए दौड़ पड़ने से पहले चार बार सोचना पड़ता था कि वे क्या कर रहे हैं। इससे भी महत्व की बात यह है कि जनता का सांस्कृतिक स्तर उन्नत हुआ। स्त्रियों की स्थिति में मार्के का सुधार हुआ। फलतः तलाक की दर में लगातार कमी होती गई।

नये तलाक कानूनों ने पुराने नियमों को रद्द कर दिया। अब तलाक

हासिल करने के लिए सोवियत पुरुष और स्त्री दोनों को पहले अदालत में दरख्वास्त पेश करनी पड़ती है। इसका खर्चा लगभग दो सौ डालर बैठता है। साथ ही दरख्वास्त का एक नोटिस अखबारों में छाप दिया जाता है। ताकि जो लोग भी इस संबन्ध विच्छेद में दिलचस्पी रखते हों उन्हें सूचना मिल जाय।

इसके बाद पुरुष और स्त्री को जनता की अदालत में उपस्थित होना पड़ता है संबन्ध विच्छेद के बारे में दरख्वास्त में जो भी बातें कही गई होती हैं उनका अध्ययन किया जाता है और उन पर बहस होती है। जिस बात को जानकर हमारे देशों मे कानून-विज्ञों को आश्चर्य हुआ वह यह थी कि सोवियत तलाक कानून में तलाक की एक भी वजह का जिक्र नहीं किया गया है। इसका कुछ लोगों ने अर्थ यह लगाया कि सोवियत तलाक कानून महज दिखावे की चीज है। उन्होंने कहा कि यह नौकरशाही और डिक्टेटरी का कदम है और "अब स्तालिन ने तलाक न मंजूर करने का हुक्म दे दिया है।" लेकिन ये बातें झूठी साबित हो चुकी हैं। नए कानून के अन्तर्गत हजारों तलाक मन्जूर किए जा चुके हैं हालाँकि १६४४ से पहले के स्तर के मुकाबले तलाकों की संख्या बहुत कम हो गई है।

सोवियत तलाक कानून में "तलाक की वजह" का जिक्र क्यों नहीं है। यह मामूली समझदारी की बात है। आखिर कानूनी पंडितों को यह हक कैसे दे दिया जाता कि वे सदा के लिए ऐसे कानूनों की सूची पेश करदें जिनके अन्तर्गत पति और पत्नी का जीवन भार मान लिया जाय। विवाह-संबन्धों के टूटने के कारण अनगिनती होते हैं। जो कारण किसी एक विवाह सबन्ध के लिये घातक बन जाय वही मुमकिन है किसी दूसरे विवाह संबन्ध के विच्छेद में कतई महत्व की चीज न हो। संबन्ध-विच्छेद के कारणों की सूची बनाने बैठना—मानो वे ट्राफिक भंग करने के कारणों की सूची हों! हास्यास्पद नहीं तो और क्या है।

सोवियत क़ानून ने जिस उचित सिद्धांत को मान्यता दी वह यह था कि केवल पति-और पत्नी ही बता सकते है कि अब उनके आपसी सम्बन्ध अस्थिरता की कगार पर पहुँच चुके हैं। इसका यह मतलब नहीं कि उन्हें यह फैसला क़रने का हक है कि वे सम्बन्ध विच्छेद करें या नहीं। परिस्थिति की पूरी जांच तो जनता की अदालत ही करती है। तलाक के नए नियमों को संचालित क़रने वाला सिद्धान्त यह है कि विवाह सिर्फ निजी चीज नहीं है। सिद्धान्त यह है कि विवाह एक पारिवारिक, एक व्यापक सामाजिक, जिम्मेदारी है। अदालत इस सिद्धांत को अमल में लागू करती है और इस बात पर जोर देती है कि गवाह अपना स्पष्ट मत व्यक्त करें।

पति और पत्नी से भली भाँति परिचित दूसरे व्यक्ति जब तक स्पष्ट रूप से संबन्ध विच्छेद के पक्ष में अपना मत न दे दें तब तक सोवियत रूस में तलाक की मंजूरी नहीं हो सकती। इससे दो लाभ होते हैं। पहला तो यह कि तलाक के लिए निरुत्साहित किया जा सकता है। पति और पत्नी को अपनी सामाजिक जिम्मेदारी निभाने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। अपनी समस्यायें सुलझाने के लिए हर मुमकिन प्रयत्न करने की उनसे अपील की जा सकती है। दूसरे यह कि अदालत हर मामले को, उस मामले की जरूरतें देख कर ही निपटाती हैं।

उद्देश्य यह है कि तलाक को जब भी संभव हो, रोका जाय। संबन्ध-विच्छेद होने से पहले सोवियत पति और पत्नी को अदालत को पूरी तरह विश्वास दिला देना पड़ता है कि दोनो में समझौता और मेल हो सकना अब असम्भव है। पुराने फैसले क्या कहते है या नई 'जरूरतें' क्या हैं इस से कोई वास्ता नहीं। हर दरख्वास्त अलग से पूरी-पूरी तरह जांची जाती है और तब फैसला सुनाया जाता है।

क्या तलाक सम्बन्धी नए कड़े सोवियत कानून, जैसा कि अनेक

लेखकों का दावा है, हमारे तलाक कानूनों की नकल हैं ! नहीं कतई नहीं। सोवियत कानून के आलोचकों ने जिस चीज को भुला दिया वह है नए सोवियत कानून की असलियत। सोवियत कानून का प्रमुख उद्देश्य है— तलाक के लिए इच्छुक दम्पति में मेल और सुलह कराना।

दूसरे शब्दों में नई तलाक अदालतें गर्भ निपात सम्बन्धी, पुराने अस्पतालों में स्थित 'परामर्श समितियों की ही तरह हैं जिनका उद्देश्य तलाक को रोकना है। लेकिन क्या हमारे तलाक कानूनों का भी यही उद्देश्य नहीं है ? है, किन्तु सिद्धांत मात्र में। अमल में हमारे तलाक कानून दरअसल तलाक को जरा मुश्किल और मंहगा बनाने के जरिए हैं। मंहगे हो जाने से आबादी का थोड़ा हिस्सा ही उनका लाभ उठा सकता है। (पूंजीवादी) जनवादी देशों में कोई कानून यह नहीं कहता कि तलाक के लिए अर्जी देने से पहिले दूसरों से सलाह मशविरा करो और सुलह समझौते की कोशिश करो। मनोवैज्ञानिकों: चिकित्सकों और पादरियों ने सलाह मशविरे के लिए वैवाहिक शफाखाने खोले हैं। पर इन शफाखानों को कोई कानूनी समर्थन प्राप्त नहीं। इसके विपरीत नए सोवियत कानून का कहना है कि तलाक के लिए इच्छुक दम्पति जनता को अदालत में अपनी अपनी दलीलें पेश करें कि आखिर वे तलाक चाहते ही क्यों हैं। सोवियत तलाक पद्धति का हाल ही में अध्ययन करने के बाद इस पुस्तक के लेखक और लेखक की पत्नी ने जो बयान दिया था उसका एक अंश हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं :

"कुछ साल पहले जब जारशाही व्यवस्था की विरासत के रूप में अनेक अनुचित विवाह सम्बन्ध मौजूद थे तब सोवियत संघ में तलाक हासिल करना आसान था। किन्तु अब सोवियत संघ में तलाक हासिल करना कठिन है। यह कहना अनुचित न होगा कि कुछ मानों में कनाडा के मुकाबले भी सोवियत संघ में तलाक हासिल करना मुश्किल है।

हम तो इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि जो कठिनाई उपस्थित की जाती है उसका उद्देश्य तलाक में देर करना है। यूं तलाक विरोधी कोई कानून वहाँ मौजूद नहीं है। हमने जिस असलियत को देखा वह इस प्रकार है:

"लड़ाई झगड़े, 'असमर्थता', यहाँ तक कि अनाचार भी, स्वयं में, तलाक के कारण नहीं हैं। कानून की किसी धारा से मिलने वाली बातें "सिद्ध करके भी" पति और पत्नी तलाक हासिल नहीं कर सकते। जनता की अदालत में पति और पत्नी के अलावा तमाम ऐसे गवाहों को भी उपस्थित होना पड़ता है जो उनको अच्छी तरह जानते हों। उन्हें यह साबित करना पड़ता है कि विवाह—सम्बन्ध को कायम रखने का हर मुमकिन उपाय किया जा चुका है। उन्हें यह भी साबित करना पड़ता है कि अगर यह विवाह सम्बन्ध कायम रहा तो यह एक अनैतिक बात होगी, कि इससे बच्चे और उनके माता पिता स्वस्थ जीवन न बिता पाएंगे। अन्त मे पति और पत्नी को पूरी तरह साबित करना पड़ता है कि तलाक के परिणाम स्वरूप बच्चों का जीवन बिगड़ेगा नहीं, सुधरेगा।"

"जिस किसी भी केन्द्र में हमने तलाक के सम्बन्ध में प्रश्न किया हमें यही उत्तर मिला कि युद्ध के बाद के वर्षों में सोवियत रूस में तलाकों की संख्या बहुत तेजी से घटी है।"

इस सन्बम्ध में और टिप्पणी जोड़ने की जरूरत नहीं। २५ अक्तूबर १६४५ को अतलाँतिक नगर के समाचार पत्रों में पेनीसिल्वानिया स्टेट कालेज के विवाह सम्बन्धी सलाह—विभाग के संचालक डा० क्लिफर्ड आर० एडम्स के वक्तव्य की रिपोर्टें छपीं:

"१६५५ तक," इन्होंने घोषणा की, "हर दस विवाहों में से चार विवाहों का अन्त तलाक में होगा......... । आज से बीस—तीस साल बाद अविवाहित महिलाओं की पीढ़ी देखने में आयेगी, क्योंकि उनसे

ब्याह करने को पुरुष ही नहीं मिलेंगे। लेकिन ये महिलायें हाथ पर हाथ रखे मक्खियाँ नहीं मारा करेंगी। पति प्राप्त करने के लिये वे पत्नियों से होड़ लेने के लिये कमर कस कर सामने आ डटेंगी।"

डा० एडम्स ने आगे यह भी बताया कि अमरीका "दुनिया का एक ऐसा देश है जहाँ सबसे ज्यादा विवाह और सबसे ज्यादा तलाक़ होते हैं। यहाँ हफ्ते में १००० तलाक होते हैं। यह दर बढ़ती ही जा रही है।" उनकी भविष्यवाणी थी कि दस साल के भीतर ही भीतर "नवयुवक और नवयुवतियों में बुरी तरह अनाचार फैलेगा और नैतिकता यहाँ निम्नतम स्तर पर पहुँच जायेगी।"

एक सप्ताह बाद शिकागो विश्वविद्यालय में समाज शास्त्र के प्रोफेसर डा० अर्नेस्ट डब्लू बर्गेस ने घोषणा की कि तुर्त-फुर्त ब्याह रचाने की युद्ध—काल की प्रवृत्ति आगे आने वाले कुछ सालों में और भी बड़ा खतरा बन जायगी।

"विवाह अब थोड़े काल के ही परिचय, मेल-मुलाक़ात और मित्रता के बाद हो जाया करेंगे। लड़ाई के दिनों में वैवाहिक जीवन का सुख जबर्दस्ती टालते जाना पड़ा था। अब इसी कमी को पूरा करने के लिए तमाम लोग दौड़ पड़ेंगे।"

उन्होंने कहा: "लड़ाई के दिनों में अविवाहित रहने के कारण जिन लोगों की उम्र काफ़ी ज्यादा हो चुकी है वे भी विवाह करना चाहेंगे। यदि पिछले युद्ध के बाद का रवैया ही जारी रहा तो ये लोग आमतौर से नई उम्र की लड़कियों को ही चाहेंगे। ब्याह के बाजार में अपनी कीमत घटते देख ज़्यादा उम्र की औरतें जिधर मौक़ा लगा उधर हाथ मारेंगी। नतीजा यह होगा कि तलाक़ का दर और भी बढ़ेगा।"

युद्ध से पहले तलाक़ों की दर १६ प्रतिशत थी। डा० बर्गेस ने कहा

कि यह दर निकट भविष्य में २५ प्रतिशत हो जायगी। डा० एडम्स के मुक़ाबले डा० बर्गेस का अन्दाज़ा हल्का है। डा० एडम्स का कहना था कि यह दर ४० प्रतिशत होगी।

दोनों ही अन्दाज़ों की परख हो गई है। लाइफ इन्श्योरेन्स कम्पनी के "गणना संबन्धी बुलेटिन" (अंक ३०, नं० ४) में अमरीका में तलाक़ों की दर का विश्लेषण पेश किया गया है। उससे पता चलता है कि १९४६ में तलाक़ों की दर सचमुच ३१.९७ प्रतिशत तक पहुँच गयी थी। किन्तु १९४८ में वह २५ प्रतिशत से कुछ कम हो गयी।

इस तरह के विवाहों से जन्मे शिशुओं की ओर बहुत कम ध्यान दिया जा रहा है। परिस्थिति यह है कि हमारे यहाँ के अधिकारियों की एक पूरी की पूरी पीढ़ी ने यह कहते हुए अपनी जिन्दगी गुजार दी कि सोवियत रूस तो अनैतिक भौतिकवादियों का देश है। लेकिन हमारे देशों में जिस बेमिसाल तेज़ी से परिवार तितर-बितर हो रहे हैं और 'इतिहास में नैतिकता के निम्नतम स्तर' पर पहुँचने का जो नज़ारा सामने आ रहा है उसे रोकने की कोई कोशिश नहीं की जा रही है। इस बात पर अड़ रहकर कि ईसाई सभ्यता का तो आधार ही पारिवारिक जीवन की पवित्रता है, हम खड़े हुए अनैतिकता और तलाक़ों को बाढ़ का इन्तज़ार कर रहे हैं। उधर समाजवादी राज्य में पारिवारिक जीवन को नए और उन्नत स्तर पर पहुंचाने की वैज्ञानिक योजनाओं को आश्चर्यजनक सफलता मिल रही है।

ऐसे आलोचक कितने हैं जिन्होंने मातृत्व सम्बन्धी सोवियत कानूनों का दूसरे देशों में प्रचलित ऐसे ही कानूनों से तुलनात्मक अध्ययन किया हो? बहुत थोड़े। कुछ आलोचक ऐसे हैं जिन्होंने नए क़ानूनों की बाबत सिर्फ यह कहकर संतोष कर लिया कि इन्होंने 'मातृत्व को उचित सम्मान' प्रदान किया है।" हम देख चुके हैं कि अब से एक पीढ़ी पहले सोवियत

रूस में गर्भवती स्त्रियों और बच्चों की सुरक्षा के केन्द्र बड़ी लगन से खोले गए थे। हम यह भी देख चुके हैं कि स्त्रियों की स्थिति सुधारने के लिए किस तरह वहाँ अथक प्रयत्न किया गया।

नए कानून पास होने से पहले गर्भवती स्त्रियों की मदद के लिए राज्य की ओर से सहायता मिलती थी। सिर्फ बच्चों के खाने खर्चे के लिए सालाना लगभग १५०,०००,००० डालर खर्च होते थे। यह दान नहीं था। माताएँ इसे उसी रूप में स्वीकार करती थीं, जिस रूप में कि हम पब्लिक स्कूलों की सहायता को स्वीकार करते हैं। बड़े–बड़े परिवारों को नगद सहायता दी जाती थी। सातवां बच्चा पैदा होने पर सालाना ४०० डालर की सहायता बाँध दी जाती थी। सातवें बच्चे के बाद पैदा होने वाले हर बच्चे पर १००० डालर की सहायता दी जाती थी। दसियों करोड़ औरतों को इस योजना के अन्तर्गत सहायता मिलती थी, ताकि ज्यादा बड़े परिवार के बच्चों और माता पिता को अड़चनों का शिकार न बनना पड़े।

नये क़ानून के पास होने के बाद के पांच सालों में सोवियत माताओं को लगभग ३५ अरब (साढ़े तीन बिलियन) डालरों की नगद सहायता मिली। जिस साल मैंने रूस का दौरा किया अकेले उस साल में गर्भवती स्त्रियों को ५० करोड़ डालरों की सहायता मिली थी। बड़े-बड़े परिवार वाली माताओं को अपने बच्चों की सहूलियत के लिये पन्द्रह हजार या उससे भी ज्यादा डालर मिले हैं।

नये क़ानून और भी ज्यादा प्रगति के द्योतक हैं। किन्तु पुराने नियमों और उनमें कोई गम्भीर अन्तर नहीं। मातृत्व के महत्व को स्वीकार करते हुए माताओं के लिये तीन पदकों की व्यवस्था की गई है। ये पदक हैं : मातृत्व का पदक, मातृत्व के गौरव का पदक, और वीर माता का पदक।

अभी तक पैंतीस हजार सोवियत माताओं को सब से ऊंचा पदक—वीर माता का पदक—मिल चुका है। लगभग तीस लाख माताओं को अन्य दोनों पदक मिले हैं।

किन्तु अब सभी माताओं को और भी ज्यादा नगद सहायता से लाभ पहुँचाया जायगा। गर्भवती स्त्रियों को मुफ्त चिकित्सा तथा दूसरी सुविधायें तो मिलेंगी ही। हर माता को तीसरा शिशु पैदा होने पर अब अस्सी डालर की नकद सहायता मिलेगी। चौथा शिशु पैदा होने पर २५० डालर नकद और लगभग १६ डालर माहवारी मिलेंगे। पाँचवा शिशु पैदा होने पर ३४० डालर नकद और २४ डालर माहवारी मिलेंगे। इसी तरह ग्यारवें बच्चे पर नकद और माहवारी सहायता बढ़ती जाएगी और ग्यारहवें शिशु पर १००० डालर नकद और ६० डालर माहवारी की सहायता मिलेगी।

एक तो नैतिक समस्याओं की ओर समझदारी के रवैए के कारण, दूसरे, युद्ध के बाद की असली समस्याओं के कारण अविवाहित और विधवा माताओं को अब पहले से ज्यादा सहायता मिलती है। माहवारी नकद सहायता के रूप में उन्हें राज्य की ओर से खुद बखुद मदद मिलती रहती है। इस तरह हर शिशु पर बारह साल तक उन्हें २० से लेकर ४० डालर तक माहवारी सहायता मिलती है। मेहनतकश माताओं के शिशुओं के लिए शिशु शालाओं की व्यवस्था है। यहाँ वे अपने बच्चों को जितने भी अर्से के लिये छोड़ना चाहे छोड़ सकती हैं। किन्तु बच्चे उन्हीं के होते हैं उनसे लिये नहीं जा सकते।

परिवार के प्रति ऐसी जिम्मेदारी की मिसाल दूसरे देशों में देखने को नहीं मिलती। इसने दूसरे देशों के लोगों को भी प्रभावित किया। आज घोर प्रतिक्रियावादी तबकों में भी ऐसे डाक्टर, अध्यापक, वकील, व विद्यार्थी मिलेंगे जो खुल्लमखुल्ला या व्यक्तिगत रूप से स्वीकार करते हैं

कि पारिवारिक सम्बन्धों को दृढ़ बनाने में सोवियत रूस ने बड़ी कामयाबी हासिल की है। इस तरह की स्वीकृति की एक मिसाल शिकागो की कैथोलिक लोयोला यूनिवर्सिटी के चिकित्सा-प्रोफेसर डाक्टर हर्बर्ट ए० रैटनर के एक भाषण में कही गयी बातें हैं। २४ जनवरी १९५१ को डाक्टर रैटनर ने कैथोलिक गिल्ड ऑफ सेन्ट पॉल की ओर से आयोजित एक सभा में टोरोन्टो में भाषण दिया था। आश्चर्यचकित कैथोलिक श्रोताओं से उन्होंने कहा: "समाज के आधारबिन्दु—परिवार—को सुसंगठित रखने में रूसी लोग पश्चिम से कहीं आगे बढ़े हुए हैं।" उन्होंने बताया कि सोवियत पुरुषों और स्त्रियों का नैतिक स्तर बहुत ऊँचा है, वहाँ तलाकों की संख्या गिनी-चुनी है, भ्रूण-हत्यायों की संख्या नहीं के बराबर है और परिवार सच्चे प्रेम की भावना पर आधारित हैं। इस कैथोलिक डाक्टर ने इस बात की भी प्रशंसा की कि सोवियत स्कूलों में अब 'इन्द्रिय—शिक्षा' नहीं दी जाती—क्योंकि यह शिक्षा हानिकारक साबित हुई। "बच्चों को इन्द्रिय शिक्षा देने का सबसे अच्छा उपाय' उन्होंने कहा "यह है कि इन्द्रिय—भोग और विवाह के प्रति हम खुद सही नज़रिया अपनायें"

अनैतिकता के विरुद्ध, नए मानव के निर्माण की योजना के अन्तर्गत ये हैं सोवियत रूस की ऐतिहासिक सफलतायें —

१ सोवियत रूस में पहले भ्रूण हत्या को कानूनी बनाया गया और फिर सहज वैज्ञानिक तरीकों से उस को खत्म कर दिया गया।

२ आर्थिक, सामाजिक और नैतिक प्रगति के बाद जब भ्रूण हत्या अक्षम्य मानी जाने लगी तो सोवियत रूस में उसे व्यक्ति और समाज के प्रति अपराध घोषित कर दिया गया।

३ तलाक सोवियत रूस में पहले, मांग करते ही हासिल हो जाता

या। लेकिन बीस साल के भीतर ही भीतर तलाक की दर को निम्नतर स्तर पर ला दिया गया।

४ तलाक के मर्ज को खत्म करने के लिए सोवियत रूस में समझौते की अदालतें कायम की गईं जिनका उद्देश्य पति और पत्नी के बीच के सम्बन्ध को टूटने से बचाना है।

५ इन्द्रिय रोगों को खत्म कर दिया गया है।

६ वेश्या वृत्ति वहाँ के समाज के लिए एक आश्चर्य की वस्तु है।

७ मातृत्व के रास्ते की अड़चनों को दूर कर दिया गया है।

८ पुरुषों और स्त्रियों के बीच वहाँ पूरी २ और सच्ची एकता कायम की गई है।

९ अब वहाँ प्रेम और विवाह को अभिन्न रूप से जोड़ने का प्रयत्न जारी है। प्रेम और विवाह के इस सम्बन्ध का आधार नैतिकता की नई चेतना है। अब किसी तरह का जोर—दबाव कारगर नहीं होता।

कितने ही बरस पहले सुप्रसिद्ध समाजवादी दार्शनिक फ्रेडरिक ऐंगेल्स ने अपने अनन्य मित्र कार्ल मार्क्स से आगे आनेवाले युग के बारे में एक भविष्यवाणी की थी। वह भविष्यवाणी यह थी;

"आगे आने वाले काल में एक नई मानवता का जन्म होगा। तब, पुरुषों की एक ऐसी पीढ़ी आयगी जिन्हें कभी यह ही न मालूम होगा कि धन से या किसी दूसरी शक्ति से औरतों के सम्मान को खरीदा जा सकता है। तब, औरतों की भी एक ऐसी पीढ़ी आएगी जिन्हें यह ही न मालूम होगा कि सच्चे प्रेम के अलावा किसी और विचार से भी अपने आप को किसी पुरुष को समर्पित किया जा सकता है।"

-:०:-

शराबबन्दी : संगीनों के बल पर।

अब तक जितनी बातों पर हमने विचार किया है, सभी का सीधा संबन्ध योनि-समस्याओं से रहा है। अनैतिकता के कुछ और पहलू भी हैं। शुरू शुरू में हमने अपने आप को उस 'पापमय व्यवहार' तक सीमित रखा 'जिसका परिणाम समाज के लिए अहितकर होता है।' अब तक अधिकांश पाठकों को एक कमी खटकने लगी होगी। जिस समस्या की ओर हमारा इशारा है उसका हमने जिक्र भर किया है; विस्तार से उस पर विचार नहीं किया।

यह समस्या है नशेबाजी की।

नशेबाजी एक नैतिक समस्या है। शराबखोरी अनैतिकता का एक ऐसा पहलू है, कि चाहे उसे पापमय माना जाय, या नहीं, उससे भयानक सामाजिक, अहित होता है। शराबखोरी को लेकर आदिम काल से आज तक जो बहसें होती चली आई हैं उनमें गोता लगाने की मेरी इच्छा नहीं है। मेरा विचार तो यह है कि सोवियत रूस में पक्ष और विपक्ष दोनों तरफ की दलीलों को वैज्ञानिक और अमली तरीके से एक सामाजिक आधार पर सही या गलत साबित किया जा चुका है। वहाँ शराबखोरी की समस्या उस रूप में मौजूद नहीं जिस रूप में कि शराबखोरी की समस्या को हम लोग जानते हैं। वेश्यावृत्ति और व्यभिचार की समस्या के साथ-साथ वहाँ इस समस्या को भी हल किया जा चुका है।

आप पूछेंगे : क्या शराबखोरी सचमुच एक समस्या है?

सोवियत रूस में आज से बीस साल पहिले, और हमारे देशों में अब, व्यभिचार को बढ़ावा देने और इन्द्रिय रोगों को फैलाने में शराबखोरी का जबर्दस्त हाथ रहा है। हरेक ईमानदार पादरी, पुलिस अफसर,

चिकित्सक, पब्लिक हेल्थ आफ़सर, फौजी कमान्डर और सामाजिक कार्यकर्ता इस बात को सच्चाई को मानता है।

पाप का ढकोसला तो छोड़िये; सच्चाई यह है कि बहुसंख्यक पुरुष, स्त्री और युवा शराब के दुष्प्रभावों के बड़ी जल्दी शिकार बन जाते हैं। इन प्रभावों का नतीजा यह होता है कि अनैतिक कार्यों से अपने को रोक सकने की मनुष्य की स्वाभाविक क्षमता में बेहद कमी हो जाती है।

अधिक स्पष्ट शब्दों में यूँ कहा जा सकता है: शायद ही कोई फौजी या नौसैनिक ऐसा हो जो साधारण, यानी बिना नशे की अवस्था में, वैश्याओं के यहाँ जाता हो। युवा अपराधियों के बारे में अदालतों में मौजूद दस्तावेजों से साफ पता चलता है कि बहुत थोड़ी ही लड़कियां ऐसी होती हैं जो बिना शराब पिये हुये व्यभिचार में हिस्सा लेती हों। फ़ौज के डाक्टरों को इस बात का कड़ा तजुर्बा है कि कई बोतलें चढ़ा चुकने के बाद अधिकांश लोगों में ज्ञान और जिम्मेदारी इस कदर खतम हो जाते हैं कि वे न सिर्फ किसी भी बदशक्ल औरत पर टूट पड़ने को तैयार रहते हैं बल्कि वे इन्द्रिय-रोगों से बचाव के साधारण साधन स्तेमाल करना भी भूल जाते है।

भौतिक शास्त्री और मनोवैज्ञानिक दोनों ही इस बात से सहमत हैं कि शराब से समझ-बूझ बड़ी जल्दी खो जाती हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि बहुत से सम्मानित व्यक्ति भी शराब पीते-पिलाते हैं। यह कम महत्व की नैतिक, सामाजिक समस्या नहीं है। मैसाचुसेट्स जनरल हास्पिटल के प्रमुख मनोवैज्ञानिक हार्वर्ड मेडिकल स्कूल वाले डा० स्टैनले कौब ने शराब के चिकित्सा सम्बन्धी उस पहलू पर बड़ी अच्छी तरह प्रकाश डाला है जिसका व्यभिचार या अपराध से कोई ताल्लुक नहीं। यह बताकर कि इस महाद्वीप पर अभी भी साठ लाख लोग ऐसी मानसिक पीड़ाओं के शिकार हैं कि वे "पागलपन की कगार

पर खड़े हुये हैं" डा० कीब ने कहा है कि, "इनमें से १५ लाख ऐसे हैं जिनकी जिन्दगी न तो शराब पीने से चल सकती है और न शराब के बिना।" लगभग इतने ही लोग, कहा जा सकता है, नशेबाजी के खास मरीज हैं।

बेशक, इनमें से अधिकांश न तो व्यभिचारी हैं और न इन्द्रिय रोगों के शिकार। फिर भी, वे धीरे धीरे अपने आप को मिटा रहे हैं। वे अपनी शक्ति का हनन कर रहे हैं। अपने परिवार वालों और सहयोगियों के सुख को वे धूल में मिला रहे हैं। अपनी मिसाल से वे समाज को अवनति की ओर ढकेल रहे हैं। सामाजिक रूप से उनकी शराबखोरी को एक अनैतिक काम ही माना जाना चाहिये।

सोवियत रूस में परिस्थित क्या है?

वहां की परिस्थिति जानने के लिये बड़ी उत्सुकता जाहिर की गई है। सोवियत रूस में शराबखोरी की समस्या के बारे में जो कुछ हमें मालूम होता है वह सम्वाददाताओं की रिपोर्ट में कही गई संक्षिप्त बातों से ये रिपोर्टें अन्तर्विरोधी होती हैं। एक रिपोर्ट में आज हम पढ़ते हैं कि लाल सेना का एक प्रसिद्ध कमान्डर शराब का नाम सुनना भी पसंद नहीं करता। शराबबन्दी और सदाचार के उपदेशकों की आंखें खिल उठती हैं। वे बड़ी सावधानी से इस बात को नोट कर लेते हैं। पर दूसरे ही दिन यह पढ़ कर उनके उत्साह को लकवा मार जाता है कि दो और भी ज़्यादा प्रसिद्ध जनरलों ने मित्र-राष्ट्रों की सफलता की खुशी में शराब पी और यह कि सरकारी भोज के अवसरों पर वोद्का और शराब पी जाती है। अस्तु हमारे यहाँ के विशेषज्ञों ने यह निष्कर्ष निकाल लिया कि शराबखोरी सोवियत रूस में सामाजिक-व्यवहार का एक ऐसा अंग है जिसे अपनाना या न अपनाना अलग-अलग इन्सानों की मर्जी पर है इतना कह कर वे चुप बैठ गये। फिर उन्होंने पता लगाने की कोशिश नहीं की कि

सोवियत रूस में शराब का क्या हुआ।

परिस्थिति यह है :

व्यभिचार, वेश्यावृत्ति और इन्द्रिय रोगों के खिलाफ़ संघर्ष के दौरान में सोवियत वैज्ञानिकों को यह पता चल गया कि जब तक शराबखोरी की समस्या को भी हल नहीं किया जाता तब तक व्यभिचार की समस्याओं को हल नहीं किया जा सकता। उन्होंने यह काम शुरू भी किया। और उसी लगन और समझदारी के साथ जिसके कारण योनि-सम्बन्धी अनैतिकता को जीतने में उन्हें सफलता मिली थी। प्रयोगों के इतिहास में शराबखोरी के खिलाफ़ सोवियत संघर्ष की कहानी बड़ी दिलचस्प कहानी है।

बहुत-बहुत बरस पहले की बात है। एक हज़ार साल से पहले से जो यात्री रूस आते जाते रहे उन्होंने ज़ारों के साम्राज्य की भयानक शराबखोरी का वर्णन किया है। मनमानी शराबखोरी और मनमानी उद्दंडता—निकृष्टतम व्यभिचार, आगज़नी, हत्या, लूट-पाट—रूसी जीवन के हरेक स्तर की ये आम बातें थीं। क्या महलों में रहने वाले शहंशाह और क्या झोपड़ों में बसने वाले किसान,—कोई इनसे अछूता नहीं था।

रूसी उपन्यासकार तुर्गनेव ने इसी बात को इन शब्दों में व्यक्त किया है : "आम तौर से रूसी नागरिक नशे में रहता ही है; पर त्योहार के दिन तो वह गले तक पिये बिना नहीं मानता।"

और, पुराने रूसी पंचांग में तो इतने त्योहार हैं कि यह गले तक शराबखोरी मानो दैनिक चीज़ बना दी गई हो। क्रांति के बाद के पंद्रह सालों में हालत पूरी तरह बदल गई। सुप्रसिद्ध अमरीकी डाक्टर किंग्सबरी और न्यूज़ होम ने यह देखा और लिखा कि काले समुद्र से वोल्गा नदी तक यात्रा करने वालों में त्योहार के दिन भी उन्होंने बहुत

कम को शराब पीते देखा। नशे में धुत तो उन्होंने किसी को देखा ही नहीं। हाँ, इस त्यौहार के दिन स्टीमरों पर और दूसरे स्थानों पर (चढ़ने–उतरने के स्थानों पर) वोद्का बिना किसी रोक–टोक के बिक रही थी।

यह एक अन्तर्विरोध दिखाई पड़ता है। लीजिये, हम अब उन तथ्यों की जाँच करेंगे जो इस अन्तर्विरोध को समझने में मदद देते हैं। हमारे देशों में इन तथ्यों को छिपाया गया है। कारण? कारण यह कि ये तथ्य इस बात का अकाट सबूत पेश करते हैं कि वैज्ञानिक सिद्धाँतों पर आधारित शराब कन्ट्रोल के उपायों से एक बड़े पैमाने पर शराबखोरी को खत्म किया जा सकता है; शराब बन्दी लागू करने की कोई जरूरत नहीं। शराब बन्दी के लिए आन्दोलन छेड़ने वाले हमारे देशों के लोग सोवियत रूस का नाम नहीं लेते। शायद उनको यह मालूम नहीं कि लगातार सौ साल से भी ज़्यादा रूस ने लम्बे चौड़े पैमाने पर हर कोशिश उपाय करके देख लिया, शराब खोरी को रोका जाय... अन्त में जाकर कहीं यह अमली तरीका मिला और उसे अमल में लाया गया। दूसरे तरीकों से अगर यह भिन्न है तो इस बात में कि यह तरीका कामयाब हुआ।

शराबखोरी को रोकने के संगठित उपाय सन् १८१६ से शुरू होते हैं। तब तक वोद्का की बिक्री लगभग हर जगह होती थी। तब तक लगभग हर कोई इसकी बिक्री करता था। शराबखोरी को रोकने के लिए जो उपाय इंगलैंड और अमरीका में पेश किये गये थे, जार सरकार ने उसका अध्ययन किया। तब उसने सरकारी नियंत्रण में शराब की इजारेदारी कायम करने का फैसला किया। आठ साल तक यही व्यवस्था रही। सरकार के लिए यह व्यवस्था बड़ी लाभदायक सिद्ध हुई। पर शराब की बिक्री में इससे कोई फ़र्क नहीं आया। दूसरे, इस व्यवस्था पर

सख्ती से अमल कराना भी मुश्किल था। धीरे-धीरे इसमें घुन लगने लगा। १८२६ में ज़ार ने बिक्री का सारा बन्दोबस्त नागरिक संस्थाओं के हाथ में सौंप दिया। साथ ही, सब तरह की शराब पर उसने बिक्री-कर लागू कर दिया। यह दर असल उसी आधुनिक व्यवस्था का ढाँचा था जिसके अन्तर्गत शराब पर टैक्स तो लगा रहता है पर शराब बनाने और बेचने पर कोई रोक नहीं होती। बहुत से देशों में आज यही व्यवस्था मौजूद है। ज़ार का इरादा यह कि औसत नागरिक के लिए तो शराब मँहगी हो जाय पर राज्य के लिए ज़्यादा मुनाफ़ा आने लगे।

ज़ारशाही रूस में शराब का इस तरह रियासती कन्ट्रोल सरकार के लिये बहुत ही मुनाफ़ेमन्द साबित हुआ। उन लोगों की जेबों से पैसा दनादन खिंचा चला आता जो रोटी-दाल के खर्चे में तो कमी कर सकते थे पर वोद्का के खर्चे से किफ़ायत करने को तैयार न थे। टैक्स की बढ़ती हुई दर भी शराब की खपत में कमी करने में कामयाब नहीं हुई।

कोई तीस साल तक शराबखोरी बराबर बढ़ती ही गई। साम्राज पर इसका जो हानिकर असर पड़ना था, वही पड़ा। हालत जब और भी बेक़ाबू हुई तो सदाचार का उपदेश देने के लिये पादरी लोग गिरजा-घरों से निकल पड़े। १९वीं शताब्दी के मध्यकाल में छिड़ने वाले राजनीतिक सुधारों के आन्दोलन ने १८५६ में बहुत उग्र रूप धारण कर लिया। पादरियों के समझाने बुझाने से ज़ार ने अब उन सभी अड्डों को बन्द करवा दिया जहाँ शराब बनाई जाती थी। ज़ार की रियाया किसी से पीछे न थी। हाँ, कुछ रूसी जो "बीयर" (एक तरह की शराब) पीने के आदी थे? अब ज़्यादा तीखी वोद्का पीने लगे। अंतःकरण परिवर्तन उनमें नहीं हुआ।

तीन साल बाद सरकारी कन्ट्रोल उसी दिशा में मुड़ चला जिससे हम सभी लोग परिचित हैं। यानी, शराब की छोटी २ दूकानों की संख्या

घटा दी गई और लाइसेंस व्यवस्था जारी कर दी गई। यह क़दम ज़ार ने नशाबन्दी आन्दोलन को ज़्यादा तीव्र होता देख कर उठाया था।

बाद के तीस सालों में हालत में परिवर्तन हुआ। परिवर्तन यह हुआ कि राज्य और शराब बनाने वालों ने शराब की दुकानों की संख्या २५०,००० से घटाकर ११५,००० से भी कम कर दी। पर, इन दिनों वोद्का की बिक्री में खूब बढ़ती हुई।

सन् १८८६ की एक खास घटना यह भी है कि डा० पीटर सेम्योनोविच एलेक्सियेफ़ ने अमरीका का दौरा किया। यह डाक्टर सुप्रसिद्ध लेखक और दार्शनिक लियो ताल्सताय के घनिष्ट मित्र भी थे। अमरीका में इनका परिचय बड़े पैमाने पर जारी नशा विरोधी कार्रवाइयों से कराया गया। जब वह वापिस लौटे तो बहुत ही उत्साहित। उनका विचार था कि रूसी जनता को अपने आप शराब छोड़ने के लिये वे शिक्षित करेंगे। इस सम्बन्ध में उन्होंने कई पुस्तकें लिखीं। उनकी कार्रवाइयों का एक ही परिणाम हुआ; ज़ार ने एक कानून के द्वारा यह घोषणा कर दी कि यदि मालिक नौकरों की तनखा कुछ पैसे और बाक़ी वोद्का के रूप में देंगे तो इसे अपराध माना जायगा!

रूस के उन क़स्बों ने जहाँ फैक्टरियाँ थीं अब 'पच्छिमी' रूप धारण करना शुरू कर दिया। उनकी दशा भी वैसी ही हो चली जैसी शुरू-शुरू में अमरीका के खदान-केन्द्रों की थी: तनखा मिलते ही सारे पैसे लेकर मजदूर शराब की दूकान पर जा पहुँचते। लेकिन इस बेरोक शराबखोरी का सामाजिक दुष्परिणाम शीघ्र ही सामने आया। अब उद्योग के मुनाफ़ों में कमी आने लगी। अब, रूसी और विदेशी पूँजीपतियों ने ज़ार के वैभवशाली साम्राज्य और करोड़ २ मजदूरों से मुनाफ़े ऐंठना शुरू किया। उन्होंने उत्पादन के नये उसूल काम में लाने शुरू किये। जैसे-जैसे उद्योग का मशीनीकरण हुआ वैसे-वैसे ही मजदूरों से ज़्यादा

कौशल और ज़्यादा मेहनत की माँग की जाने लगी। शराब के नशे में झूमता हुआ भी किसान अपने खेत पर काम कर ही सकता। और उसका अप्रगतिशील मालिक भी इससे नाराज़ नहीं होगा। लेकिन फैक्टरियों में शराब पीकर पहुँचने वाले मज़दूरों से काम में नुक़सान के अलावा दूसरी सूरत नहीं। अस्तु पिछली शताब्दी के ख़त्म होते-होते रूस में नशेबन्दी का ज़बर्दस्त आन्दोलन छिड़ा। इस आन्दोलन की प्रेरक शक्ति न तो सरकार थी और न गिरजाघर। इस आंदोलन के सबसे बड़े समर्थक नये उद्योगपति थे।

डा० निकोलाई ग्रिगेरियफ़ में उन्होंने (उद्योगपतियों) इस आंदोलन का अच्छा नेता बन सकने के सभी गुण देखे। १८६४ में डा० ग्रिगेरियफ़ ने एक पत्रिका निकाली जिसका नाम ही था; नशा विरोधी दूत। इसका आंदोलन बहुत संगठित था। शराब के व्यवसाय में सरकारी पैठ को उसने अनैतिक घोषित किया। अर्थात् दिनों दिन ज़ार द्वारा शराब पर टैक्सों की बढ़ती को उसने अनैतिक बताया। डा० ग्रिगोरियफ़ का मक़सद 'सरकारी कन्ट्रोल' के ढकोसले का पर्दाफ़ाश करना था। अपने प्रचार के लिये उसे पैसे की कमी भी कभी नहीं खटकी।

पर आंदोलन बुरी तरह असफल रहा। यह आंदोलन मानों एक चट्टान पर आकर टकराया हो और टुकड़े-टुकड़े हो गया। यह चट्टान थी सरकार को शराब पर टैक्सों से होने वाले मुनाफ़े की। शराब पर टैक्सों से ज़ार की आमदनी दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ रही थी। अमरीका में भी आज यही हालत है। कनाडा में भी टैक्सों में बेहद बढ़ती हुई और शराब पर कन्ट्रोल सख़्त किया गया। नतीजा: शराब की खपत और भी बढ़ी।

फिर भी शराब-विरोधी तूफ़ान को रोका नहीं जा सका। १८६८ में इसी मसले को लेकर ज़ार के सलाहकारों में फूट पैदा हो गई। प्रिंस

अलेक्जेन्डर नामक जार का एक चचेरा भाई दरबार से अलग हो गया। उसने दूसरे सरदारों को भड़काना शुरू किया। उसका मक़सद साफ़ था। धनी जागीरदार होने की हैसियत से उसने परख लिया था कि नशेबाज़ मजदूरों की तरह नशेबाज़ किसानों से भी पैदावार को नुकसान होता है। उसने दूसरे देशों के आत्म-सुधार प्रोग्रामों का अध्ययन किया। नशा-विरोधक शिक्षा-आन्दोलन के समर्थन में उसने अपनी पूरी ताकत लगा दी।

शराब का विरोध करने वाले भिन्न-भिन्न छुट-पुट दलों को उसने एक सूत में बाँधा। इस संगठन का नाम नशा निरोधक संगठन था। अपने और अपने दोस्तों की दौलत से उसने इस संगठन को मालामाल कर दिया। उन दिनों जब रूबल की कीमत आधे डालर के बराबर थी, संगठन के पास हज़ार-दो-हज़ार नहीं बल्कि लाख दस लाख रूबल थे। अब, उसने दौलत की इस ताक़त को चौतरफ़ा इस्तेमाल करना शुरू किया।

प्रिंस अलेक्जेन्डर के आन्दोलन का मुख्य केन्द्र था मास्को-स्थित एलेक्सिस नशानिरोधक भवन। इस केन्द्र में शिक्षित कार्यकर्ताओं का एक बड़ा दल मौजूद था। शराब से बचाव की शिक्षा के लिये दुनिया के इस पहले वैज्ञानिक केन्द्र में ये कार्यकर्ता ही तमाम योजनायें बनाते और उन्हें कार्यान्वित करते। एक दूसरे घर में उन्होंने हज़ारों किताबों का पुस्तकालय बनाया था। रसायन तथा भौतिक विज्ञान सम्बन्धी प्रयोग-शालायें भी उन्होंने खोलीं जिनमें विशेषज्ञ काम करते थे। दाम देकर वे लेखकों, अध्यापकों, खोज-बीन करने वालों और वक्ताओं को बुलाते थे। शराब की समस्या के आज जो हमारे खोज-बीन सम्बंधी केन्द्र हैं उनको यह पहली मिसाल था। उदाहरण के लिये येल-विश्वविद्यालय के शराब सम्बंधी स्कूल को ही लीजिये। वहाँ आज चिकित्सक मनोवैज्ञानिक,

समाजशास्त्री; पादरी सभी मौजूद हैं जो बड़ी-बड़ी पोथियाँ लिए मानव शरीर, मस्तिष्क और सामाजिक-संबंधों पर शराब के असर का अध्ययन करने में जुटे हैं—मानो शराबी बाप का बेटा यह सब बता सकने को काफ़ी न हो। प्रिंस अलेक्ज़ेन्डर के नशानिरोधक संगठन ने सच्ची और काल्पनिक, दोनों तरह की बातों का, मुलम्मा तैयार किया। इस संगठन ने वह काम कर दिखाया जो येल-विश्वविद्यालय के लिये अब भी बहुत दूर की चीज़ है। उसने इस मुलम्मे को बहुत ही आकर्षक रूप में करोड़ों लोगों तक पहुँचाया।

शिक्षा सम्बन्धी कार्रवाइयों को तो बहुत ही विशाल पैमाने पर शुरू किया गया। प्रिंस अलेक्ज़ेन्डर ने बूढ़ों और जवानों की सुविधा के लिये तमाम पार्कों और उद्यानों की व्यवस्था कर दी। उनके सुख और मनोरंजन केन्द्र और नाटक-गृह बनवाये। इनमें से ज़्यादातर स्थान ऐसे थे जिनमें पैसा खर्च नहीं करना पड़ता था। ये स्थान बहुत ही लोकप्रिय हुये। यद्यपि सभी तरह के लोग वहाँ आते-जाते, पर ढूँढ़े से भी शराब की एक बूँद वहाँ न मिल सकती थी। नियमित समय पर कुशल वक्ताओं के भाषण होते जिन्हें उपस्थित लोग बड़े ध्यान से सुनते। ये वक्ता शराब के बारे में वैज्ञानिक तथ्य पेश करते थे। ये कार्रवाइयाँ १९०३ में शिखर पर थीं। इस साल अकेले मॉस्को में ही पच्चीस लाख डालर खर्च हुये। ज़ार सम्राज्य के इस कोने से उस कोने तक इस संगठन की ३७० शाखायें फैली हुई थीं।

पर, नतीजा?

नतीजा: शून्य॥

सुधार कार्रवाइयों के प्रति विरोध ने १९०५ में उग्रतम रूप धारण कर लिया। इसी साल, राजनीतिक दमन भी उग्रता की सीमा पर पहुँच गया था। ज़ार का एक चाचा मास्को का गवर्नर जनरल था। इसका

नाम था, ग्रांड ड्यूक सर्गियस। रूस के अत्यन्त महत्वपूर्ण और निर्दई सरदारों में उसकी गिनती थी। उसने भी आत्म-सुधार संगठन को अपनाया। राज-परिवार के और भी लोगों को वह अपने साथ खींच लाया। इनमें एक, ग्रांड ड्यूक कान्स्टेन्टिन भी था। यह भी ज़ार का चाचा लगता था। यही ईसाइयों के तथा कथित अखिल-रूसी मज़दूर संगठन का व्यवस्थापक और अध्यक्ष भी था। कान्स्टेन्टिन शराब को एक दम खतम कर देने का समर्थक था। यानी, वह पूरी शराबबन्दी का समर्थक था। इससे ज़्यादा ब-असर और मालो प्रोग्राम की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

इन कार्रवाइयों—और इन्हीं के साथ-साथ औद्योगिक-शोषण—के प्रति जनता की प्रतिक्रिया भी व्यक्त हुई। वह इस रूप में कि ग्रांड ड्यूक सीर्गयस के सामने बम गिरा। इस हिंसात्मक घटना के बाद नशा निरोधक आंदोलन और ड्यूक ने अलग-अलग दिशाओं में अपना मुँह घुमा लिया। न तो तमाम वक्तागण और न शराब के दुष्परिणामों के बारे में वैज्ञानिक तथ्य ही दोनों का मेल करा सके।

नशानिरोधक शिक्षा की असफलता में सरकारी कंट्रोल का कितना हाथ था, इसकी जानकारी कम दिलचस्प नहीं है। १८६४ में शराब की बिक्री को राज्य ने अपने हाथों में ले लिया था। तब पादरियों ने नई दूकानों को अपने आशीर्वाद से पवित्र किया था। जिस दिन नई दूकाने खुलीं बड़े-बड़े सरदारों और उद्योगपतियों ने खुद पधार कर वहाँ की शोभा बढ़ाई थी। पन्द्रह साल बाद क़ानूनी तौर पर वोद्का की खपत ४४,०००,००० गैलन से बढ़कर २५०,०००,००० हो गई। (कुछ इसी तरह की व्यवस्था अब कनाडा में है)। शराब की फुटकर दूकानों से सरकार को १९०४ से १९१३ के बीच ५,०००,०००,००० रूबल का मुनाफ़ा हुआ। इन आँकड़ों के महत्व को समझने के लिये एक बात और

जाननी जरूरी है। वह यह : इस काल में रूसी साम्राज्य का कुल बजट २०,०००,०००,००० रूबल का था। पहला महायुद्ध शुरू होने के वक्त जार–सरकार की कुल आमदनी का चौथा हिस्सा शराब की बिक्री से ही पूरा होता था। इसी तरह की हालत कनाडा के अधिकांश प्रान्तों में भी है। वहाँ सालों से हालत यह है कि बजट में जो भी कमी होती हैं उसे शराब के मुनाफ़ों से पूरा कर लिया जाता है।

नशा विरोधी आंदोलन और शराब पर सरकारी कन्ट्रोल शुरू होने के समय से १९१४ तक रूस में वोद्का की बिक्री ५०० प्रतिशत से भी कुछ ज्यादा बढ़ गई। नशेबाजी का आर्थिक दुष्परिणाम लोगों को और भी खटकने लगा था। काफी रक़म उनकी जेब से शराब–टैक्स के रूप में निकल जाती थी।

शराबखोरी के खिलाफ संघर्ष जारी रहा और नया संगठन देखने में आया : स्कूलों में शराबखोरी के खिलाफ लड़ने वालों का संगठन। विश्व-युद्ध के पहले रूस में जितने नशेबाज थे, दुनिया के किसी भी दूसरे सभ्य देश में इतने नहीं थे। उपरोक्त संगठन ने पूरे साम्राज्य के इस कोने से उस कोने तक छान–बीन की। इस सम्बन्ध में १९१३ में उसने कुछ आँकड़े प्रकाशित किये। याद रखना चाहिये कि जार सरकार की कतरब्योंत के बाद ये आंकड़े प्रकाशित हुये थे। इन आँकड़ों के अनुसार स्कूल में पढ़ने वाले ८० फी सदी से ज़्यादा बच्चे वोद्का पीने के आदी थे। लड़कियों की संख्या ६० प्रतिशत से ज़्यादा थी। एक जिले में कोई स्कूल था जिसमें ५,७०० विद्यार्थी पढ़ते थे। उपरोक्त संगठन के कार्यकर्ता वहाँ पहुंचे। उन्होंने २,५०० विद्यार्थियों के सामने भाषण दिया। इनमें से सभी विद्यार्थी या तो पूरी तरह नशे में थे या आधे नशे में।

फैक्टरी–मालिकों के कहने पर मास्को की नगर–काउंसिल ने दूसरी जाँच–पड़ताल की व्यवस्था की। पता चला कि मास्को के ६० प्रतिशत युवक गहरे नशेबाज हैं।

धीरे-धीरे स्थिति इस हालत को पहुँची थी। ज़ार का मन्त्री, निकोलस द क्रैमर, नशा निरोधक आन्दोलन की कमज़ोरियों को १६०६ में ही भाँप गया था। ज़ार के लिये तैयार की गई अपनी अधिकृत रिपोर्ट में उसने कहा था: "यह सोचना बड़ी भारी गलती होगी कि मनोरंजन के साधन लोगों से शराब छुड़वाने में कामयाब होंगे। यह सोचना ग़लत होगा कि नाटक दिखाकर और बगीचों में बाजे बजवाकर लोगों से शराब खोरी छुटवा दी जायगी।" क्रैमर ने जो सुझाव पेश किये वे महत्वपूर्ण नहीं थे। पर वह अच्छी तरह देख और समझ चुका था कि नशा विरोधी प्रचार को ऐसे लोग ही पढ़ और मान रहे हैं जो पक्के सात्विक यानी शराब विरोधी हैं। हमारे देशों में भी ऐसे प्रचार को ऐसे ही लोग पढ़ व मान रहे हैं जो पियक्कड़ थे वे प्रचार सम्बन्धी पर्चियों और पोथियों को लेते और फेंक देते। बड़े मज़े से वे प्रिंस अलेक्ज़ेन्डर द्वारा दिये जाने वाले मुफ़्त भोजन से अपना पेट भरते, मुफ़्त थियेटर देखते और जो पैसा बचता उससे ख़रीदकर वोद्का पीते। १६१० में देश भर में हालत यह थी कि एक नशा विरोधी कमिटी के पीछे सात सरकारी शराब की दूकाने थीं।

दमन के बावजूद शराब-विरोधी संगठनों ने १६१० में नशेबाजी की बला से लड़ने के लिये अखिल-रूसी काँग्रेस बुलाई। मज़दूर-सभाओं ने भी इसका समर्थन किया। उन्होंने इस समस्या के सामाजिक और आर्थिक पहलुओं को उभाड़ कर रखा उन्होंने पार्लामेंट (ड्यूमा) पर भी दबाव डाला। उन्होंने माँग उठाई कि सरकारी दूकानों पर शराब की बिक्री के घंटे सीमित करने का क़ानून बनाया जाय और दूसरे क़ानूनों को मुस्तैदी से लागू किया जाय। लेकिन इतने शोर-गुल का जो नतीजा हुआ वह यह कि एक बिल पार्लामेंट में पेश किया गया और उसमें कहा गया कि वोद्का में अल्कोहल की मात्रा ५० फ़ी सदी से घटाकर ३० फ़ी सदी कर दी जाय। यह बिल भी — पास नहीं हुआ!

चार साल बाद ज़ार सरकार के लिये समस्या बड़ी संगीन बन गई। शाही दरबार ने इंगलैंड और फ्रांस के साथ संधि करने का फ़ैसला कर लिया था। दसियों लाख फौजियों की सेना को नये से नये हथियारों से लैस करने की समस्या ज़ार के सामने आ खड़ी हुई थी। अस्तु, उद्योगपतियों से मामला निबटाने के अलावा उसके सामन दूसरा कोई चारा न था।

शराब के मसले पर उद्योगपति बड़ी ज़िद पकड़े हुये थे। उनका कहना था कि राज्य शराब–टैक्सों के प्रति नीति बदले और वोद्का की बिक्री में भारी कमी करे।

ज़ार ने आखिर १६१४ में एक घोषणा की। उसने कहा कि राज्य की आय में अब शराब से बढ़ती नहीं की जायगी। उसी साल पूर्वी मोर्चे पर युद्ध की लपटें जल उठीं। युद्ध-काल में खन्दकों में बैठकर शराब पीना बहुत खतरे की बात नहीं थी। लेकिन शहर के मज़दूर और गाँव के किसान शराब पीते तो फैक्टरियों और खेतों की उपज को फालिज मार जाती। उद्योगपतियों ने दरबार के सामने फ़तवा पेश कर दिया।

शराबी के लिये खतरे की घंटी बज उठी। शाही और नाटकीय फुर्ती से ज़ार ने घोषणा कर दी: रूस में अब शराब नहीं पी जायगी। उसने घोषणा की कि १ जुलाई १६१६ की भोर से जो भी वोद्का या बीयर बनायगा या इनकी बिक्री करेगा, वह अपराधी माना जायगा। जिलाधीशों को छूट थी कि वे चाहें तो अपने हल्कों में हल्के किस्म की शराब बिकवा सकते हैं।

यह घोषणा इतनी जल्दी की गई थी और इसे इस सख्ती और बेमुरौवती से लागू की गयी थी कि रूसी आँखें फाड़े देखते रह गये।

इस सम्बन्ध में कोई ताम–झाम नहीं देखने में आया। प्रचार भी

बहुत मामूली किया गया। हतबुद्धि जनता के देखते ही देखते खौफ़नाक गुप्त पुलिस के इशारे पर फौजी दस्ते एक के बाद एक शराब की दूकानें बन्द करने लगे। पहले से इकट्ठा माल को वे बरबाद कर देते। शराब बनाने के अड्डों पर तो भूत लोटने लगे थे। बड़े से बड़े सरदार को शाही फरमान की मुखालफत करने की हिम्मत नहीं हुई। राष्ट्र के इस कोने से उस कोने तक शराब बनाने के सभी अड्डों ने फ़ौजी बूटों की धमक सुनी। फ़ौजी दस्तों ने शराब के हण्डे के हण्डे नदियों में लौट दिये। और तब शराब बनाने के यन्त्रों को इस तरह बरबाद करने पर जुट पड़े कि फिर ठीक ही न हो सकें। कुछ ही हफ्तों के भीतर ज़ारशाही रूस की शराब बनाने की भारी कुव्वत तहस-नहस कर दी गई।

रूस में पहली बार और अन्तिम बार इस तरह शराब बन्दी लागू की गई।

जनता खुल कर अपना विचार भी व्यक्त न कर पाई थी। क्या शराब-विरोधियों और क्या शराबिये, सभी की ज़बान को ज़ार की तुर्त-फुर्त कार्रवाई ने बन्द कर दिया था। सोलह करोड़ लोग चुपचाप सब से सब कुछ देखते रहे।

अमरीका में उसी समय जो आंदोलन चला वह भी इसी एक तथ्य से प्रेरित था कि ज़ार के विशाल साम्राज्य में एक ही झटके में लोगों मुँह से शराब छुड़ा दी गई थी। यह सुनकर कि लाखों करोड़ों गैलन बढ़िया शराब रूस में नालियों के रास्ते बहा दी गई है, कुछ लोग तो खुशी से पागल हो उठे। अपनी प्रचार रूपी तोपों के लिये अब गीले बारूद ढूँढ़ने की उन्हें ज़रूरत नहीं थी। शराब छुड़वाने के लिये ज़ार ने तो क़ानून का सहारा भी नहीं लिया था। चुटकी बजाते ही उसने रूस से शराब को छू मंतर कर दिया था। ज़ार की रिआया ज़बरियन सात्विक बना दी गई थी। १६१६ के प्रारम्भिक महीनों में रूसियों ने शराब नहीं छुई। वोद्का

के नालियों में बहा दिये जाने के बाद लाखों युवकों और बच्चों की जबान से ४० प्रतिशत अल्कोहल वाली वोद्का छूट गई। पहले तो वे इस वोद्का की बोतलें चढ़ा जाते थे। स्वाभाविक ही था कि उनके स्वास्थ्य में भी भारी सुधार हुआ।

शराबबन्दी को, इस तरह पूरी सफलता मिली।

यह दशा लगभग ६ महीने तक रही।

उसके बाद ?

उसके बाद लोग जैसे नींद से उठ बैठे हों। लाखों-करोड़ों लोगों को जैसे प्यास से उनके गले सूखे जा रहे हों। लड़ाई के मैदान में रूसी सेना कुट्टी की तरह काटी जा रही थी। भुखमरी और बीमारी से लोग तबाह थे। चारों तरफ़ मायूसी छाई हुई थी। हरेक इन्सान बचाव का रास्ता खोज रहा था। ला-मुहाला उनका ध्यान उसी तरफ़ घूमा: शराब की तरफ़।

वे इसकी तरफ़ लपके। देखते ही देखते जैसे सारा रूस शराब में डूबने - उतराने लगा हो। ठीक उसी फुर्ती से जिस फुर्ती से ज़ार की शराबबंदी जारी हुई थी, शराब का बाँध खुल गया। शराब, कच्ची से कच्ची शराब। किसानों ने अनाज की जगह आलू की खेती शुरू की। आलुओं को सड़ाकर जैसे भी बनता वे शराब निकालते। जर्मन आक्रमणकारी देश में धँस रहे थे। रूसी किसान बचे हुये अनाज को शराब में बदल रहे थे। ताकि नकद रकम हाथ आये। यह कच्ची वोद्का तैयार होते ही शहरों में और फौजी दस्तों के बीच बिक जाती, देर न लगती। अमरीका में जो कुछ हुआ वह इसके मुकाबले कुछ भी नहीं था। कुछ ही महीनों के भीतर ज़ार की रिआया गैर क़ानूनी तरीके से बनाई वोद्का से सराबोर हो गई।

इस तरह बनाई गई शराब ज़्यादातर जहरीली थी; खतरनाक

ज़हरीली। लाखों रूसी समझने लगे थे कि शुद्ध अल्कोहल भले ही बहुत खतरनाक हो, पर गंदे तरीकों से बनाई गई यह शराब कुछ ही दिनों में अच्छे हट्टे-कट्टे आदमी को भी नाकाम बना सकती थी। यह शराब बिना किसी तरह की वैज्ञानिक निगरानी के बनाई जाती थी। इस तरह की शराब के खतरनाक होने का कारण अल्कोहल की मौजूदगी नहीं थी। इसका कारण यह था कि पदार्थों को बुरी और गंदी तरह से सड़ाया जाता था और फिर उन्हें अच्छी तरह छाना तक नहीं जाता था। इसलिए यह शराब बहुत ज़हरीली हो जाती थी।

पूर्ण शराबबन्दी का एक और मार्के का असर हुआ। वोद्का चूंकि खुलासा तौर पर नहीं बेची जा सकती थी इसलिये चाय की दूकानों और बदनाम घरों में इसके अड्डे बन गये थे। वोद्का की गुप्त-बिक्री की इस व्यवस्था के परिणाम स्वरूप अनाचार अपना सर उठाने और पनपने लगे। शराब की बिक्री, खरीद या इस्तेमाल के लिये खौफनाक सजायें मौजूद थीं। पर कट्टर से कट्टर पुलिस अफ़सर भी इन सजाओं का इस्तेमाल करने में हिचकता था।

इस तरह, संगीन के बल पर पूर्ण शराब बन्दी की मूर्खतापूर्ण योजना देखते ही देखते टाँय २ फिस हो गई।

इवान्जेलिक इसाइयों के अखिल रूसी संगठन के अध्यक्ष, प्रोटेस्टेन्ट मतावलम्बी पादरी, रेवरेन्ड प्रोकोनौफ ने अमरीका आने पर रूस की स्थिति का वर्णन इन निम्नलिखित शब्दों में किया: "शराब बन्दी के पहले हर घर में अगर एक शराबी था तो शराबबन्दी के काल में हर घर शराब बनाने वालों और पियक्कड़ों का अड्डा बन गया। कानून को खुल्लम-खुल्ला भंग करके हर जगह लोग-मर्द और औरतें — वोद्का बनाने लगे। लोग सोने से पहले पीते, सुबह नाश्ते के वक्त पीते। यहाँ तक कि काम करने जाते तो नशे में झूमते हुये। मातायें अपने बच्चों को खाना परसतीं तो उसके साथ वोद्का जरूर होती।"

—:०:—

दुनिया में सबसे सस्ती शराब

१९१७ की क्रान्ति के बाद ग़ैर कानूनी तौर से बनाई गई वोद्का की खपत देहात में इतनी ज़्यादा बढ़ गई थी कि उससे नया खतरा पैदा हो गया। नशे का जो खराब असर होता है वह तो था ही, कच्ची शराब का ज़हरीलापन और भी खतरनाक हो गया था। अनगिनती किसान अपने घरों में शराब बना रहे थे। नतीजा यह कि अनाज बाजार में न पहुंच पाता। अनाज की खपत शराब बनाने में होती। इससे अकाल ने और भी भयानकरूप धारण करना शुरू कर दिया।

सोवियत अधिकारी एक ही उपाय कर सके। उन्होंने आलू से वोद्का तैयार किया जाना कानूनी घोषित कर दिया। शराबबन्दी को उन्होंने कानूनी तौर पर खत्म कर दिया और बड़े २ शराब—कारखानों के पुनर्निर्माण की इजाजत दे दी। वास्तव में यह सब जनता के स्वास्थ्य का सुधारने के लिए था। उद्देश्य था, बाजार में ज़हरीली शराब की बिक्री खत्म करना और भुखमरी की अवस्था को रोकना।

इस संबंध में उठाये जाने वाले कानूनी कदमों की लेनिन और स्तालिन ने खुद अच्छी तरह जाँच-पड़ताल की।

सोवियत सरकार के पास इस सम्बन्ध में तमाम तथ्यों का भण्डार था। जाँच—पड़ताल की तमाम रिपोर्टें भी उसके पास मौजूद थीं। सोवियत सरकार ने इन तथ्यों और रिपोर्टों को जन—स्वास्थ्य—कमिसरियट की वैज्ञानिकों और राजनीतिज्ञों की कमिटियों के हवाले कर दिया। उसने इन कमिटियों से माँग की कि वे जल्दी से जल्दी अपने रचनात्मक सुझाव पेश करें।

भिन्न–भिन्न प्रकार के और एक दूसरे के विरोधी तमाम विचारों से पाँच मुख्य धारणाओं का जन्म हुआ। इनमें से हर धारणा के अलग २ तमाम समर्थक हमारे देशों में आज मौजूद हैं। अस्तु, इनका संक्षेप में वर्णन अनुचित न होगा।

१– शराबबन्दी। ज़ार ने जिस सख्ती और निर्ममता से शराबबन्दी लागू की थी, उसे सोवियत सरकार नहीं बरत सकती थी। उस काल में अमरीका में इसी तरह का जो प्रयोग जारी था, उससे भी बुरी तरह ज़ार की शराबबन्दी योजना असफल हुई थी। यह योजना मूर्खतापूर्ण तो थी ही, यह रूसी नैतिकता के भी विरुद्ध थी। डन्डे के बल पर तो रूसी किसी भी बात को मानने को तैयार नहीं थे, पर समझाने से मानने को तैयार थे।

२– जनता की शिक्षा। सोवियत अधिकारियों ने प्रिंस अलेक्जेंडर द्वारा चलाये गये आंदोलन का गम्भीरता से अध्ययन किया। यह आँदोलन ऊपरी तौर पर सफल नहीं हुआ था। अधिकारियों ने देखा कि इस आँदोलन में व्यक्ति को विशेष महत्व दिया गया था। आँदोलन की अपील कुछ स्वार्थों से सराबोर थी। लोग निजी सन्तोष के लिये शराब पीते हैं। क्या नशेबंदी की अपील एक दूसरे स्वार्थ–अच्छे स्वास्थ्य के को लेकर नहीं है? और यदि है, तो इसकी सफलता की उम्मीद करना क्या गलती न होगी? कारण कुछ भी रहे हों, ऐतिहासिक सत्य ने सिद्ध कर दिया था कि कोरी शिक्षा से राष्ट्र को शराबखोरी से विमुख नहीं किया जा सका।

३– धर्म। "अल्कोहलिक्स एनोनिमन्स" नामक, संगठन की कार्रवाइयों में हम धार्मिक प्रचार द्वारा शराबखोरी छुड़ाने का प्रयत्न देखते हैं। कुछ विशेष प्रकार के लोगों के लिए तो निस्संदेह यह अच्छा उपाय हो सकता है। पर सोवियत–शासन इस योजना का समर्थन नहीं

कर सकता था। कारण स्पष्ट है। कारण यह था कि उस काल में सर्वशक्तिमान आर्थोडाक्स चर्च से सम्बंधित गाँव के पादरी खुद ही अच्छे खासे पियक्कड़ थे।

४– चेतना विश्लेषण। चेतना विश्लेषण के उपायों को अमल में लाने की कल्पना कर सकना भी कठिन था। कारण यह कि दुनिया भर के चेतना वैज्ञानिक भी इकट्ठे हो जाते तो अकेले मास्को के पुराने पियक्कड़ों का इलाज करने के लिये काफ़ी न होते। अमली नजरिये से, शराबखोरी के मानसिक इलाज को धार्मिक उपायों" के अन्तर्गत ही माना जाना चाहिए। इसकी वजह है। वजह यह है कि इने–गिने चन्द लोगों का ही इससे भला हो सकता है। इसके प्रचारक कहते सुने जाते हैं कि इसे अगर बड़े पैमाने पर अमल में लाया जाय तो यह उपाय अवश्य सफल होगा। लेकिन, लाखों करोड़ों इन्सानों तक मनोविज्ञान पहुँचे कैसे, यही किसी ने आज तक नहीं बतलाया। दूसरे सोवियत अधिकारी अपनी सहज बुद्धि के कारण यह मानने को तैयार नहीं थे रूस के सभी पियक्कड़ मानसिक रोगी हैं। उनका कहना था शराबखोरी के मानसिक–विकारों के अलावा दूसरे गम्भीर कारण हैं।

५– सरकारी कन्ट्रोल। सोवियत अधिकारियों ने इस उपाय के सम्बन्ध में तमाम पिछले तजुर्बों का अध्ययन किया। बिक्री पर रोक लगाने के जार ने जो-जो उपाय किये, सभी का परिणाम यह हुआ था कि शराब की बिक्री और भी बढ़ गई थी। अन्त में दशा यहाँ तक पहुँच गई कि औसत आदमी के लिए 1⅔ गेलन शराब की सालाना खपत होने लगी थी। सोवियत विशेषज्ञ इस नतीजे पर पहुंचे कि शराब के सरकारी-कन्ट्रोल से कोई लाभ नहीं होने का। इससे कोई नतीजा निकल सकता है तो यह कि शराब की खपत और भी ज़्यादा बढ़ जाय।

सोवियत विशेषज्ञों के अनुमान की सच्चाई का पता आज कनाडा के

अनुभव से लग जाता है। सरकारी—कन्ट्रोल के बरसों तक बड़ी मुस्तैदी और सख्ती से जारी रहने के बाद आज कनाडा में शराब की खपत और भी ज्यादा बढ़ गई है। युद्ध-काल में राशनिंग व्यवस्था बहुत सख्त हो गई थी। पर उससे पहले भी, १६४१, में कनाडा शराबियों का देश नहीं माना जाता था। पर असलियत यह है कि १६४१ में कनाडा वासियों के बीच १२,०००,००० गैलन अल्कोहल अर्थात् गहरी शराब, बीयर इत्यादि की खपत हुई थी। इस तरह औसतन हर इन्सान एक गैलन से भी ज़्यादा शराब पीने वाला था। युद्ध—कालीन राशनिंग का कोई स्थायी असर नहीं हुआ। राशनिंग के खतम होने के बाद १६४१ के मुकाबले शराब की खपत वहाँ दुगनी से भी ज्यादा बढ़ गई। नशेबाज़ी के सिलसिले में (अर्थात शराब पीकर इधर—उधर घूमने और गिरफ्तार किये जाने का कोई न कोई काम कर बैठने के सिलसिले में) दण्ड पाने वाले पुरुषों की सख्या में ४० फीसदी और स्त्रियों की संख्या में ६० फी सदी से भी कुछ ज़्यादा बढ़ती हुई। इतने पर भी कनाडा के शराबियों की संख्या अमरीका के शराबियों के मुकाबले नहीं के बराबर है। ज़ार कालीन रूस में अन्धाधुन्ध शराबखोरी के दिनो में जो दशा थी वही दशा आज उत्तरी अमरीका की होने जा रही है। शायद उत्तरी अमरीका इस दशा पर पहुँच भी गया है।

अपनी छान—बीन खतम कर चुकने के बाद सोवियत अधिकारियों ने शराबखोरी की व्यापक समस्या की फिर से जाँच—पड़ताल की। वे जिस निष्कर्ष पर पहुँचे उसे फ्रान्सिस विलार्ड द्वारा कहे गये शब्दों से ज़्यादा संक्षेप में व्यक्त नहीं किया जा सकता। फ्रान्सिस विलार्ड ईसाई महिलाओं के आत्म—सुधार संगठन की व्यवस्थापिका थीं और आजीवन अध्यक्ष रही थीं। उन्होंने जो कुछ कहा था उसे भुलाया जा चुका था। फ्रान्सिस विलार्ड ने कहा था: "ज़्यादातर लोग शराब इसलिए पीते हैं कि वे ग़रीब हैं। यह कहना गलत होगा कि वे ग़रीब इसलिए हैं कि वे शराब

पीते हैं।"

शराब के बारे में यही सब से बड़ा सत्य है। अपनी शुभेच्छाओं के बावजूद महिला संगठन की सदस्यायें इस महान सत्य को कभी का भुला चुकी हैं। मनोविश्लेषण की गुत्थियों और उलझनों को फ्रान्सिस विलार्ड ने उठाकर एक कोने में रख दिया। उन्होंने धर्म, शिक्षा और कन्ट्रोल की लम्बी-चौड़ी बातों को भी एक तरफ़ हटा दिया। उन्होंने शराबखोरी की समस्या को जड़ से पकड़ा। उन्होंने बताया कि यह समस्या एक सामाजिक और आर्थिक समस्या है। उन्होंने बताया, लोग शराब की तरफ तब लपकते हैं जब वे अपने आप को चारों तरफ़ निराशा से घिरा देखते हैं। वे शराब के लिए तब ललक उठते हैं जब वे देखते हैं कि सब तरफ़ दुःख और दारिद्रय है तथा संतोष की सांस ले सकने का कोई सहारा नजर नहीं आता। उनके सामने सदुपदेश और शिक्षा की लम्बी-चौड़ी बातें झाड़ना तब तक व्यर्थ है जब तक जीवन की ऐसी परिस्थितियाँ तैयार न कर दी जायें जिनमें शराब के लिए ललकने की जरूरत ही महसूस न हो। जिस प्रकार व्यभिचार को तब तक नहीं रोका जा सकता जब तक लोगों को वैश्यागमन की ओर ढकेलने वाले तत्वों को खत्म न किया जाय, उसी तरह शराबखोरी को तब तक नहीं रोका जा सकता जब तक शराबखोरी की तरफ़ ढकेलने वाली परिस्थितियों को खत्म न किया जाय।

अपनी बेबर्दास्त गरीबी और दरिद्रता के कारण ही जार की रिआया शराबखोरी के लिए लपकती थी। शराब-समस्या का अध्ययन करने वाले सोवियत विद्यार्थी समझ गये थे कि आम जनता के जीवन में चौतरफ़ा उन्नति के द्वारा ही इस समस्या को हल किया जा सकता है।

उनका एक दूसरा बुनियादी निष्कर्ष यह था कि अलग-अलग व्यक्ति यदि जीवन की परिस्थितियों के कारण शराब की ओर लपकते हैं तो

समूचे राष्ट्र को शराबी बनने के लिए बढ़ावा इसलिये दिया जाता है कि सरकार को शराब-करों से अच्छा-खासा मुनाफा होता है।

तो फिर, सोवियत अधिकारियों ने कौन से अमली कदम उठाये ?

तलाक और भ्रूणहत्याओं के सम्बन्ध में उठाये गये कदमों की तरह, सोवियत अधिकारियों के शुरू २ के नशा-विरोधी कदम भी एक दूसरे के विरोधी मालूम होते हैं। १९२६ में सोवियत सरकार ने एक घोषणा की। इस घोषणा ने सब को चौंका दिया।

सोवियत अधिकारियों ने घरेलू-शराब बनाने वालों को बाजार से खदेड़ भगाने का फैसला कर लिया था। साथ ही उन्होंने शराब पर टैक्सों को खत्म कर देने का भी फ़ैसला कर लिया था।

यह काम एक ही दिन में पूरा भी कर लिया गया। किन्तु जार की तरह फ़ौजी-मदद से यह काम पूरा नहीं किया गया था। जो साधारण उपाय काम में लाया गया वह देखने में बड़ा हास्यास्पद लगता है। उपाय यह था कि शराब पर से टैक्स उठा दिये गये और फुटकर शराब की कीमत घटाकर लगभग ६ आने बोतल कर दी गई।

शराबी लोग दाँतों तले जीभ दबाकर रह गये। सोवियत सरकार की उपरोक्त घोषणा के साथ-साथ सोवियत अखबारों ने शराब के व्यवसाय में जार सरकार के हिस्से के बारे में भी तथ्य छापे। इन तथ्यों से पता चल गया कि पुरानी सरकार को अनगिनती रुपया शराब की मद में दिया गया था। इन तथ्यों को छापने से जनता पर जिस प्रभाव की कल्पना की गई थी, वही पड़ा भी। शराब पीने वाले और न पीने वाले, सभी पर अच्छा असर हुआ। उनकी समझ में आ गया कि अब उनकी सरकार शराब से मुनाफा नहीं बटोरना चाहती। फुटकर शराब की बिक्री पर जरूर थोड़ा सा कर था। पर इस कर को शराबखोरी से लड़ने के लिये

जनता के स्वास्थ और शिक्षा सम्बन्धी अधिकारियों को सौंप देने की पहले से ही व्यवस्था कर दी गई थी।

जनता की उत्सुकता बढ़ रही थी। कीमतों में चौंका देने वाली कमी की गई थी। जिस दिन से कीमतों में कमी शुरू हुई थी। वह दिन खुद-ब-खुद राष्ट्रीय त्योहार का दिन बन गया था। उस दिन लोगों ने मन भर कर नई, सस्ती, बढ़िया किस्म की वोद्का पी। पर उस दिन से ही घरेलू और छिपकर शराब बनाने वालों और बेचने वालों की बधिया बैठने लगी।

खुशी और उत्साह की पहली लहर के थमते ही अधिकारियों ने और भी नियमों की घोषणा की। घोषणा यह थी : अब फैक्टरियों के पड़ोस में शराब नहीं बेची जायगी, छुट्टियों के दिन या तनखा बँटने के दिन भी वहाँ शराब नहीं बिकेगी। घोषणा की गई कि जो लोग भी नवयुवकों या नशा किये हुए लोगों को शराब बेचेंगे उन्हें पुलिस सख्त सजा देगी।

रूस के एक कोने से दूसरे कोने तक नई तरह का प्रचार शुरू हुआ। शराबखोरी के खिलाफ़ यह नया वैज्ञानिक आंदोलन था। शराब-निरोधक संगठन के प्रयत्नों से यह सिद्धांततः भिन्न था। शराब के व्यक्तिगत प्रभावों का इसमें कभी-कभी ही ज़िक्र किया जाता।

हाँ, अलकोहल के सम्बन्ध में "वैज्ञानिक तथ्यों" को बड़े स्पष्ट रूप से और बिना बढ़ाये-चढ़ाये पेश किया जाता।

सोवियत वैज्ञानिकों ने बताया कि अलकोहल का वही असर होता है जो हलके नारकोटिक का। इससे थकावट दूर होती है। यह कभी-कभी लाभदायक भी होता है। बेहोशी लाने में यह उपयोगी होता है। दिमाग में यह सुस्ती लाता है और नसों को ढीला करता है। साधारण

उपयोग से यह मेहनतकश की फुर्ती को बनाये रखता है। लेकिन लगातार शराब पीते रहने से खून में शुद्ध वायु के संचार को नुकसान पहुँचता है। इससे दिमागी नसों की गहरी क्षति पहुंच सकती है। कितने ही मस्तिष्क-रोग अल्कोहल के प्रयोग से ही पनपते और बढ़ते हैं। अन्त में ज़्यादा शराब पीने से थकावट महसूस होती है, दुर्घटनायें होने और अक्सर बीमार पड़ जाने की संभावना रहती। संक्षेप में रूसी जनता को बताया गया कि शराब पीना आवश्यक नहीं है। उसे बताया गया कि शरीर या मस्तिष्क पर इसका कोई लाभदायक प्रभाव नहीं होता। अलग-अलग लोगों पर इसका अलग-अलग प्रभाव होता है; हाँ, इससे भला किसी का नहीं होता।

जनता के सामने जिस तरीके से ये तथ्य पेश किये गये, वह नया ही तरीका था। इस सिलसिले में नाटक-घरों और सनीमों का पूरा-पूरा इस्तेमाल किया गया। नाटकों और सनीमों के जरिये रूसी जनता को बतलाया जाता कि नये औद्योगिक और खेतिहर राष्ट्र की उन्नति के लिये उनके नित्यप्रति के प्रयत्नों पर अल्कोहल का क्या असर पड़ता है। बालकों, नवयुवकों और बड़ों को बड़े रोचक ढंग से बताया जाता कि उनके भविष्य-निर्माण में शराबखोरी का क्या असर पड़ेगा। इंजन चलाने वालों ट्रैक्टर चलाने वालों, मशीन ठीक करने वालों, बिजली के कारखानों, के इंजीनियरों, विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों, खदानों का कोयला निकालने वाले मजदूरों — सभी को बताया जाता कि शराब का उनके काम पर कैसा असर पड़ेगा।

इन कहानियों में अपनी दुर्दशा खुद ही करने के लिये शराबी की आलोचना न की जाती थी। उसे मूर्ख व्यक्ति के रूप में पेश किया जाता। फिर उसे यह दिखाने की कोशिश की जाती कि देश के नव-निर्माण में भाग लेने से जीवन में कितना आनन्द आता है। किसी से नहीं कहा था: तुम शराब मत पियो। पियक्कड़ को पापी के रूप में

पेश नहीं किया जाता था। हाँ, समाज को नुकसान पहुँचाने वाला वह बड़ा हास्यास्पद व्यक्ति मालूम पड़ता।

यह सरकारी रवैया आदती पियक्कड़ों की ओर नहीं अपनाया गया। उनके लिए तो शराब विरोधी आँदोलन के पास दूसरा ही उपाय था। शराबी को अपराधी तो नहीं करार दिया गया था, पर वह राष्ट्र की उन्नति के रास्ते में रोड़ा जरूर था। वोदका की बोतल जब लगभग ६ आने की दर पर बिक रही थी तो राष्ट्र की उन्नति की बातें सुनने की उसे फुर्सत ही कैसे मिलती।

इन लोगों को ठीक रास्ते पर लाने के लिए वैसे ही उपायों का प्रयोग किया गया जैसे वैश्यावृत्ति को काबू में लाने के लिए इस्तेमाल किये गये थे। अधिकारियों ने सभी ऐसे अड्डों पर जहाँ शराबखोरी की समस्या ज्यादा संगीन थी शराब-विरोधी केन्द्र कायम कर दिये। जो कोई भी नशे की हालत में मिलता उसे पुलिस या वोदका-विरोधी आँदोलन के कार्यकर्त्ता इन केन्द्रों में पहुँचा देते। वहाँ पहले तो शराबी को अच्छी तरह नहलाया जाता। फिर एक डाक्टर उसकी जाँच करता। बाद में उसे बिस्तर पर लिटा दिया जाता और होश में आने के लिये एक या दो दिन पूरी तरह आराम करने दिया जाता।

इस सुन्दर उपचार के बाद शराबी का नाम और पता पूँछा जाता। वह कहाँ काम करता है यह भी लिख लिया जाता। अब उसे केन्द्र से छुट्टी दे दी जाती। जहाँ भी वह काम करता था वहाँ की मजदूर-सभा के पास उसके बारे में पूरी रिपोर्ट भेजी जाती। इस तरह के लोगों से निबटने के लिये मजदूर-सभाओं ने विशेष कमिटियाँ बना रखी थीं। शराबी की केन्द्र से छुट्टी होने के बाद इस कमिटी की बैठक होती। शराबी जब काम पर वापिस पहुँचता तो यह कमिटी उसका स्वागत करती। कमिटी के साथ-साथ बहुधा एक लम्बा चौड़ा इश्तहार भी उसे अपने स्वागत के

लिये तैयार मिलता। इस इश्तहार पर उसकी फोटो या व्यंग्यचित्र मौजूद रहता। उसका नाम और पता तो होता ही। बोतल से उसकी यारी का भी नाटकीय और मनोरंजक वर्णन मौजूद रहता। शराबी अगर दुबारा-तिबारा अपनी पुरानी हरकत दुहराता तो जनता उसका और तिरस्कार करती। कुछ ऐसे लोग भी थे जो बार २ नशे की हालत में पकड़े जाते और केन्द्रों को पहुँचाये जाते। ऐसे लोगों के खिलाफ़ मजदूर-सभाओं और जन संगठनों ने सख्त अनुशासन कार्रवाइयों का क़दम उठाया।

शराब-विरोधी आंदोलन के दौरान में शराबियों के बीच जितनी भी पर्चियाँ बाँटी गई थीं, उन सबके मुक़ाबले बड़े इश्तहार वाली योजना कहीं ज़्यादा कारगर साबित हुई। पहले तो शराबी को सिर्फ यही चिन्ता रहती थी कि कहीं घर पर लड़ाई न हो जाय, या कहीं पकड़ न लिया जाऊँ। पर इस बड़े इश्तहार ने उसकी चिन्ता को कहीं ज़्यादा बढ़ा दिया था। अब तमाम दोस्तों के सामने ज़लील होने का खतरा था। यह खतरा था कि सब यही कहेंगे कि तू देश की उन्नति के रास्ते में रोड़ा है। यह तरीका सुधार का एक ऐसा तरीका साबित हुआ जिसने हज़ारों लोगों ठीक रास्ते पर ला दिया।

कुछ ही सालों में यह आंदोलन सफल होने लगा। शराबखोरी को खत्म करने में इसने काफ़ी सफलता हासिल की थी। उसने ऐसे पियक्कड़ों को बीन २ कर अलग कर दिया जिनके लिए शराब एक मानसिक रोग था। वोद्का के उपासकों में इनकी संख्या १ प्रतिशत से कम थी। इन्हें अल्कोहल का इलाज करने वाले सुव्यवस्थित अस्पतालों में दाखिल कर दिया गया। इन अस्पतालों में रखकर उनका इलाज शुरू किया गया और उन्हें हर तरह की मानसिक और शारीरिक सहायता दी गई। अधिकांश शराबियों के लिये तो यही इलाज सब से अच्छा साबित हुआ कि उन्हें

शराब-विरोधी केन्द्रों में पहुँचा दिया जाय और दूसरे दिन उनकी प्रशंसनीय कारगुज़ारियों का बड़ा इश्तहार निकाल दिया जाय।

सोवियत सरकार ने शराब-निरोध के लिये जो कुछ और उपाय अपनाये उन्हें देखकर पहले तो यही लगता था कि वे अपने उद्देश्य में सफल नहीं होंगे, कि उनका परिणाम उद्देश्य का ठीक उल्टा होगा। उदाहरण के लिए, सरकार ने जलपान-गृहों और खान-पान के दूसरे स्थानों मे शराब के ज़्यादा इस्तेमाल किए जाने के लिये ज़ोरों से आंदोलन चलाया। अल्कोहल की तरफ लपकने के लिये जो कारण उकसावा देते हैं, उन कारणों को खत्म करने के लिए सोवियत मनोवैज्ञानिकों ने यह उपाय तजवीजा था। देखने में यह बात ज़रूर कुछ आश्चर्यजनक लगती है कि खाने पीने की जगहों मे शराब का इस्तेमाल बढ़ाया जाय। यह भी लगता है कि यह तो शराबखोरी को बढ़ावा देना है और इस तरह एक अप्रगतिशील क़दम हैं। पर भोजन के साथ शराब को बढ़ावा देने से लाभ यह था कि इस तरह शराब पीना कम हानिकारक होता है। इसका उद्देश्य यह था कि लोग सरायों या शराब की दूकानों पर शराब पीना छोड़ें क्योंकि वहाँ सिर्फ शराब ही मिलती है। और अकेली शराब निस्संदेह बहुत हानिकर होती है। दूसरे, शराब के सरकारी कन्ट्रोल तथा शराबबन्दी योजना के पुराने तजुर्बे साफ सिद्ध कर चुके थे कि भोजन के साथ-साथ शराब का इस्तेमाल वे लोग ही नहीं कर पाते हैं जो ज़्यादा गरीब होते हैं। गरीबी ही लोगों को अल्कोहल की तरफ ढकेलती है और उन्हें शराब का आदी बना देती है गरीबी उन्हें मजबूर कर देती है कि ये तो वे शराब ही पालें या खाना ही खालें। और अक्सर खाना ही छूट जाता है।

वातावरण का भी गहरा असर पड़ता है। सोवियत सरकार द्वारा बनाये गये कानूनों के अन्तर्गत अब शराब ऐसे जलपान-गृहों में मिलती थी जहाँ परिवार के परिवार भोजन करते थे और जहाँ का वातावरण

घरेलू होता था। इससे पीने वालों के व्यवहार और आदतों में भारी सुधार हुआ। वे अब पीते भी कम थे क्योंकि साथ में खाना भी खाना होता था। स्त्रियों, बच्चों और अपने से छोटों की उपस्थिति में अपने आप को क़ाबू मे रखने की उन्होंने आदत डाली। इस तरह ऊपरी तौर पर तो सोवियत सरकार ने शराब को बढ़ावा दिया। पर इसका नतीजा हुआ उल्टा ही : शराबखोरी घटी–और काफी तेज़ी से घटी।

इस नीति के बीस साल तक जारी रहने के बाद सोवियत रूस में अब स्थिति क्या है? जब मैंने सोवियत रूस का भ्रमण किया तो सोवियत नागरिकों के जीवन के इस पहलू का नज़दीक से अध्ययन करने की कोशिश की। मैंने और मेरी पत्नी ने इस सम्बंध में जो रिपोर्ट तैयार की थी नीचे उसी का एक अंश पेश किया जाता है :

युद्ध काल में कनाडा में कहानियाँ ये प्रचलित थीं कि सोवियत रूस के लोग गहरे पियक्कड़ हैं। सोवियत रूस में मेहमान होने की हैसियत से हमे इन बातों को अच्छी तरह छान–बीन करने का दिन रात मौक़ा मिलता रहा। अपने आस–पास के लोगों को हमने देखा। अपने पास उठने बैठने वालों को देखा। रास्ता चलते लोगों का हमने अध्ययन किया। जहाँ भी गये, हमने इस पहलू से लोगों की जिन्दगी को देखने की कोशिश की।

सोवियत नागरिक अतिथि–सत्कार में बड़े ही कुशल हैं। हमारे सत्कार में सामुहिक खेत वाले एक गाँव से लेकर मास्को के एक होटल तक छोटी और बड़ी हर किस्म की दावतें होती रहीं। इन सभी मौकों पर शराब पेश की गई। आम तौर से बीयर और वोद्का लाई गई।

हम लोगों को बताया गया था कि इन अवसरों पर वोद्का न चखना मेज़मान का अपमान माना जाता था। शराब की तरफ हम लोगों का

रुख क्या है इसे हमने उन लोगों पर ज़रा भी प्रकट नहीं होने दिया था। हमने क्या देखा ?

हमने देखा कि अतिथि का स्वागत करने के लिए बहुधा जो लोग खड़े होते वे या तो पानी का गिलास या फलों के रस का गिलास हाथ में लिये होते। बाद में जब खाना परोसने वाले अलग-अलग किस्म के पेय पदार्थ लाते तो लोग स्पष्ट इंगित कर देते कि वे या तो बीयर या हल्के किस्म की शराब पियेंगे।

आम तौर से यदि हम लोग या दूसरे सोवियत नागरिक कहते कि हम सिर्फ पानी या बिना अल्कोहल वाला कोई पेय पियेंगे तो यह क़तई आश्चर्य की बात न समझी जाती।

हमने तमाम जलपान गृहों और छोटे-बड़े होटलों में भोजन किया। इनमें से लगभग आधों में शराब पेश की गई। हमने किस्म-किस्म के हज़ारों सोवियत नागरिकों को खाते—पीते देखा। पर, एक बार भी हमने खाना खाते वक्त या सड़कों पर चलते वक्त किसी व्यक्ति को नशे में झूमते नहीं देखा। हमें बताया गया कि यहाँ भी ऐसे लोग हैं जो नशे में बुत हो जाते हैं। निस्संदेह उनकी संख्या कनाडा के मुकाबले बहुत कम होगी।

शराब निकालने के स्थानों, खालिस शराब बेचने के स्थानों या सरायों के बारे में स्थिति क्या थी ? हमने अपने साथ वाले सोवियत नागरिकों से रूस पहुँचने के प्रारम्भिक दिनों में ही इच्छा प्रकट की कि हम उन स्थानों को देखना चाहते हैं जहाँ खालिश शराब (साथ में खाना—पीना नहीं) मिलती है। हमें ऐसा लगा कि कोई जानता ही नहीं है कि ऐसे स्थान कहाँ हैं।

ऐसी जगहें हैं तो — लोगों ने हमें बताया। उन्होंने हमसे कहा —

रास्ते में ऐसी जगह मिल गई तो हम आपको दिखा देंगे।

कीव नगर में हमने एक टैक्सी-ड्राइवर से पूँछ-तौंछ की। वह अपना सर खुजलाने लगा। "मेरे ख़याल से है तो एक" उसने कहा। "पहले तो ऐसी बहुत सी जगहें थीं। पर अब कोई वहाँ जाता नहीं।"

दूसरे दिन शाम का ज़िक्र है। उसने टैक्सी को एक तरफ को मोड़ा। वह एक सोवियत मयखाना था। देखने में बड़ा ही अनाकर्षक। यूं समझिये कि कनाडा की किसी पुरानी मछली और आलू-चिप्स की दूकान की तरह अन्दर चार मेजें रखी थीं। रात को ६ बजकर ३५ मिनट का वक़्त था। अकेला एक शख़्स बैठा वोद्का पी रहा था। शक्ल से वह लड़ने पर उतारू मालूम होता था। मगर भौहें चढ़ाये क्लर्क से उसे कोई उकसावा मिल ही नहीं रहा था।

हमें अल्कोहल-विरोधी किसी बड़े आँदोलन के चिन्ह नहीं मिले। पर, वोद्का के ख़िलाफ़ शिक्षा प्रचार जारी है,—खासतौर से नवयुवकों के बीच। बीस-तीस साल की उम्र के ज़्यादातर लोग वहाँ किसी खास मौक़े पर ही शराब पीते हैं। बहुत से तो कभी अल्कोहल छूते ही नहीं।

उनका रवैया कनाडा के शराब-विरोधी खाकसारों का सा नहीं है। "जी नहीं; धन्यवाद!" इतना कह कर वे अपना रुख प्रकट कर देते हैं, और शराब लेने से इन्कार कर देते हैं। ठीक उसी तरह समझ लीजिये जैसे हमारे यहाँ के लोग, "जी नहीं; धन्यवाद। मैं सिगरेट नहीं पीता, कह कर सिगरेट लेने से इन्कार कर देते हैं।

हम पहले ही बता चुके हैं कि सोवियत रूस में तलाकों की दर बहुत घट गई है और अपराधियों की संख्या भी घटती जा रही है। नैतिकता का पूरी तरह अध्ययन कर सकने के लिए एक महीना का वक़्त बहुत कम था पर अपने आँख-कान खुले रखे और इस सम्बन्ध में हमने लोगों से

बातचीत भी की।

हम जिस नतीजे पर पहुँचे उसे हम दावे के साथ पेश करते हैं। हम समझते हैं कि कनाडा और अमरीका के मुकाबले समाजवादी दुनिया में नैतिकता का स्तर कहीं ऊँचा है। हमें पूरा विश्वास है कि कोई ईमानदार डाक्टर, पादरी, सामाजिक कार्यकर्ता या न्याय पंडित भी इसी नतीजे पर पहुँचेगा।

जहाँ तक हम समझ पाये हैं, इस स्थिति के भी कारण वे ही हैं जो शराबखोरी और धूम्रपान में कमी के कारण हैं। किन्तु, हम अधिक स्पष्टता से बात कहना चाहते हैं।

वह यह। समाजवाद ने मुनाफ़ाखोरी को जड़ से उखाड़ फेंका है। दूसरों के श्रम से मुनाफा पैदा करना और अपनी जेबें भरना समाजवाद के देश में अपराध माना जाता है। इस एक बात ने ही दूसरों की अनैतिक कमजोरियों का फायदा उठाकर मुनाफ़े कमाने की गुंजाइश को सदा के लिए खत्म कर दिया है।

क्या हमारा यह कथन आपको आश्चर्यजनक मालूम होता है? क्या आप इसे अमान्य समझते हैं? हम यही कहेंगे कि समाजवादी देश में आखों देखी हुई सच्चाई ही इस कथन का सब से बड़ा और अकाट्य सबूत है।

उदाहरण के लिए इसी बात को ले लीजिये। किसी भी सोवियत विज्ञापन चित्र, पुस्तक, पत्रिका, नाटक या सनीमा में काम-वासना को भड़काने वाली बातें इस्तेमाल करके मुनाफा कमाने की गुंजाइश ही वहाँ नहीं है। उत्तरी अमरीका की तरह वहाँ विज्ञापनों का बवण्डर नहीं खड़ा किया जाता। झूठे विज्ञापनों के द्वारा लोगों की अनैतिक भावनाओं को उकसाकर उत्तरी अमरीका के धन्नासेठ लाखों का मुनाफ़ा खड़ा कर रहे हैं।

सोवियत रूस में इस सब की कोई गुंजाइश नहीं। सोवियत रूस में न तो कोई उद्योग ऐसा है, न सेठों का संगठन जो अपने लिये मुनाफ़े खड़ा कर रहा हो। इसलिये वहाँ इस बात की जरूरत नहीं कि लोगों को भरमा कर किन्हीं खास चीजों को उनके गले मढ़ा जाय।

और जब अनैतिकता, अनाचार या काम सम्बन्धी बातों का प्रचार नहीं होता तो स्वाभाविक ही जनता अनैतिकता के विषैले धुयें में नहीं घुटती। हाँ, पूँजीवादी देशों में अवश्य यही प्रचार युवकों और बच्चों के दिल और दिमागों में भरा जाता है।

परिणाम स्वरूप, सोवियत रूस जाने वाला कोई भी जागरुक व्यक्ति इस बात को देखे और माने बिना नहीं रह सकता कि वहाँ के बच्चे और युवक काम—वासना सम्बन्धी समस्या की परेशानियों से मुक्त हैं।

-:oo:-

बच्चों की समस्या

"किसी की हत्या मत करो। चोरी मत करो।"

सदा से हमारे धर्म ग्रन्थ यही कहते आये हैं। किन्तु अपराध के खिलाफ़ संघर्ष बाइबिल के "दस आदेशों" से भी पुराना है। युगों तक संघर्ष का फल असफलता के अलावा और कुछ नहीं हुआ। आज का युग विज्ञान का युग है। लगभग सभी रहस्यों में विज्ञान ने पैठने की कोशिश की है। अपराधों के सम्बन्ध में बेल्जियम के ए० क्वेतलेत नामक एक विशेषज्ञ ने १८३६ में वैज्ञानिक दृष्टिकोण पेश किया। ब्रूसेल्स से प्रकाशित होने वाले एसे द फिज़ीक सोश्येल में उसने "मनुष्य और उसकी भावनाओं का विकास" नामक लेख लिखा। इस लेख में उसने कहा है :

"प्रत्येक अपराध का बीज समाज में मौजूद होता है। समाज ही उन परिस्थितियों को जन्म देता है जिनसे अपराध के लिये इन्सान को बढ़ावा मिलता है। कहा जा सकता है कि समाज ही अपराधों की तैयारी करता है। अपराधी तो निमित्त मात्र होता है। अस्तु, समाज की प्रत्येक व्यवस्था में अपराधियों की संख्या व उनका व्यवहार पूर्वनिश्चित होता है क्योंकि अपराधी व अपराध दोनों ही उस व्यवस्था के आवश्यक परिणाम होते हैं।"

अपने इस कथन को क्वेतलेत बड़ा क्रांतिकारी समझ कर तुरन्त ही सफ़ाई के लिये लपका। उसने कहा, "मेरा कथन ऊपर से देखने में निराशाजनक मालूम होता है। पर, गम्भीरता से विचार करने पर इसी में आशा का प्रकाश मिलेगा। उपरोक्त कथन इस बात की संभावना की ओर साफ़ निर्देश करता है कि यदि मनुष्य की समाज-संस्थाओं, आदतों, शिक्षा-दीक्षा तथा उसके जीवन पर प्रभाव डालने वाली दूसरी चीजों को

बदल दिया जाय तो निस्संदेह उसके जीवन में सुधार हो सकता है।"

किन्तु न तो क्वेतलेत और न उसके अनुयायी ही उन परिवर्तनों का सुझाव पेश कर सके जिनसे मनुष्य को सुधारा जा सके। शराब–समस्या पर फ्रांसिस विलार्ड के शब्दों की तरह क्वेतलेत की बात को भी स्वीकार किया गया,— सिर्फ इसलिये कि उसे बाद में भुला दिया जाय। कानून के तमाम पंडितों का ध्यान अपराध के दण्ड पर केन्द्रित रहा, न कि अपराध के कारणों पर।

पिछले सौ वर्षों के दौरान में विज्ञान सिद्ध कर चुका है कि अपराध के लिये जिम्मेदार समाज है, न कि व्यक्ति। लेकिन, इस पूरे काल में हमारी क़ानून–व्यवस्था का रूख दूसरा ही रहा। क़ानून ने व्यक्ति को ही जिम्मेदार ठहराया। न्यायपंडितों ने सोचा कि दण्ड का मंत्र ही वह मंत्र है जिसके द्वारा हम अपराधी से अपराध छुड़वा देंगे।

पर दंड वाला मंत्र व्यर्थ साबित हुआ। हमारे कानून–विज्ञों ने इस बात को माना भी। माना इस तरह कि अपराधों के लिये दिये जाने वाले दंडों की कठोरता को उन्होंने कम किया। उन दिनों के मुक़ाबले अब हम लोग काफ़ी आगे बढ़ चुके हैं जब खरगोश चुराने का दंड फाँसी दिया जाता था या दिमाग खराब हो जाने पर कोड़ों की मार से प्राण निकाल दिये जाते थे। किन्तु अभी भी पूरी तरह सही दृष्टिकोण नहीं अपनाया जा सका है। यह तो माना जाने लगा है कि अपराधों का जन्म सामाजिक कारणों से होता है, किन्तु अपराधों को मिटाने या कम करने के लिये अपराधी को ही घेरा जाता है। किन्तु, अपराधियों के लाख घेरने पर भी अपराधों की संख्या बढ़ रही है और नई नई किस्म के अपराधों का जन्म हो रहा है।

अपराधियों को दंड देकर अपराधों को खत्म करने के तर्क को नाज़ियों ने अपनी अन्तिम सीमा तक पहुँचाया। फ्राजलर नाम का व्यक्ति

हिटलरी जर्मनी का न्यायमंत्री था। अपराधों को खत्म करने के बारे में उसने हिटलरी सिद्धान्त की विवेचना करते हुये कहा; "दंड को इतना कठोर बना दिया जायगा कि लोग दुबारा जेल का मुँह देखने की इच्छा ही न करेंगे।" दर असल यह "खून के बदले खून" वाला ही सुझाव था। सभ्य पुरुषों को यह घृणास्पद लगता है। किन्तु पुलिस अदालतों में कुछ ही दिनों उठने-बैठने पर आपको मालूम हो जायगा कि हमारे क़ानून मुख्य रूप से दंड और बदले के सिद्धान्त पर ही आधारित हैं।

ईसाइयों के पूज्य देवता ईसामसीह ने कहा था "दूसरे को दण्ड मत दो। तुम दूसरे को दंड दोगे तो तुम्हें भी दंड भुगतना पड़ेगा।" इस कथन को भुला दिया गया है।

अपराधों सम्बन्धी हमारे तथा कथित "वैज्ञानिक" स्कूलों में अधिक मानवता पूर्ण व्यवहार होता है। पर वे भी व्यर्थ साबित हुये हैं। पिछले ५० वर्षों के दौरान में अपराधियों के मस्तिष्क के तमाम विश्लेषण पेश किये जा चुके हैं। कुछ लोगों ने, निस्संदेह, सामाजिक कारणों को ही अपराध के लिए दोषी ठहराया है। पर ये बातें सिर्फ दिखावटी रही हैं। वास्तव में उन्होंने व्यक्ति को ही महत्व दिया है और बताया है कि यदि अपराधी की फलाँ २ गिल्टियों को ठीक कर दिया जाय तो वह अपराध नहीं करेगा। अपराध के सम्बंध में डाक्टरी खोज बीन करने वाला भी अपराधी को स्वस्थ करना चाहता है, — किन्तु बिना अपराध के कारणों को मिटाये हुए। यह तरीका उसी तरह अवैज्ञानिक है जैसे इन्द्रिय रोग से पीड़ित किसी वेश्या को ठीक कर देने के बाद फिर उसे अपने काम पर वापिस कर देने का तरीका।

ज़ारशाही रूस में जो दशा व्यभिचार और शराब के सम्बन्ध में थी वही पूर्वकालीन रूस में अपराध के बारे में भी थी। अपराध के सम्बन्ध में रूसी अदालतें प्रायः जो दण्ड देती थीं वे यह कि साइबेरिया में कठोर-

श्रम के लिए भेज दें या अन्धे तहखानों में बन्द कर दें, कोड़ों की मार और तरह-तरह की दूसरी यातनायें भी दी जाती थीं। रूसी साम्राज्य का प्रत्येक पुलिस अफसर, न्यायाधीश, वकील और जेल का पहरेदार जानता था कि दण्ड देकर अपराधों को कम करनेवाला सिद्धांत गलत है, पर जब कभी भी मौका पड़ता वे खुद कठोर से कठोर दण्ड देने में न चूकते।

क्रान्ति से बीस साल पहले जारशाही का दुराचारी बालकों पर सब से ज्यादा प्रकोप था। उन दिनों १० से १७ साल की उम्र के अपराधियों की संख्या लगभग दुगनी हो गई थी। आवारा, चोर, शराबी, बीमार, व्यभिचारी बालकों की फौजें की फौजें खड़ी हो गई थीं। चोरी के लिये जबर्दस्ती हत्याओं की संख्या तो बेहद बढ़ गई थी।

क्रांति के बाद, दूसरी गम्भीर समस्याओं में उलझे रहने के कारण १९२२ तक सोवियत सरकार अपराध-प्रवृत्ति के खिलाफ़ संगठित हमला न शुरू कर सकी। १९२२ में पहला सोवियत "अपराध क़ानून" प्रकाशित हुआ। यह कानून व्यवस्था समाज और अपराध के वैज्ञानिक विश्लेषण पर आधारित था। सोवियत संघ के प्रमुख सरकारी वकील ए० निशिन्स्की ने इस सम्बन्ध में कहा था :

"आम जनता की कंगाली की स्थिति, बेकारों की लम्बी-चौड़ी सेना, समाज के प्रतिष्ठा प्राप्त वर्गों में भ्रष्टाचार का बोलबाला, टुटपुँजिये व्यापारियों की अन्धाधुन्ध सट्टेबाजी और बड़े व्यापारियों की मुनाफ़े के लिये उड़ानें-इनके साथ ही लगी-लिपटी हजारों किस्म की तिकड़में, जालसाजियाँ और धोखे-धड़ी की करतूतें—ये ही हैं वे जड़ें जिनसे अपराध पनपते और फलते फूलते हैं। अस्तु, तमाम अपराधों के लिए जिम्मेदार सामाजिक-सम्बंधों की उस व्यवस्था को ही ठहराया जाना चाहिये जिसके अन्तर्गत व्यक्तिगत सम्पत्ति ही सब से बड़ी चीज है और लोग असंख्य

किस्म की बुराइयों और व्यभिचारों को धड़ल्ले से बढ़ावा देते हैं।"

रोम के सुप्रसिद्ध कानून-निर्माताओं के समय से लेकर अब तक जितने भी कानून प्रकाशित हुये थे, सोवियत अपराध-कानून सब से भिन्न था। इसकी सब से बड़ी खूबी यह थी कि यह सामाजिक-सम्बंधों की नई व्यवस्था के लिए बनाया गया था। इस नई व्यवस्था में निजी काम-काज की चीजों को रखने की इजाजत तो थी, पर निजी-सम्पत्ति नाम की चीज को इज्जत की नजरों से नहीं देखा जाता था। इस तरह की निजी सम्पत्ति जुटाना वास्तव में अनैतिक माना जाता था। इसीलिये अपराध-क़ानून का खास सम्बंध चोरी करने वाले, जालसाजी करने वाले या तिकड़म रचने वाले से इतना ज्यादा नहीं था जितना उन्हें यह समझाने से कि अब वे सुविधा प्राप्त वर्ग मौजूद नहीं हैं जिनके सम्पर्क से "क़ानूनी" अपराधों को मनमाना बढ़ावा मिलता रहे। सोवियत संघ में भारी परिवर्तन हो रहे थे। जीवन के उद्देश्य तक में परिवर्तन हो रहे थे। अब तक जीवन का उद्देश्य स्वार्थपूर्ण, व्यक्तिगत मुनाफ़े के लिये संघर्ष करना था। अब जीवन का उद्देश्य अपने राष्ट्र को सम्पन्न बनाना था। अपराध की जड़ें खोदी जा रही थीं। उनमें मठा डाला जा रहा था।

सोवियत अदालतों में १६२३ में अपराधों की संख्या हम १०० मानें तो १६२६ में घटकर यह ६३ हो गई थी। १६२६ में यह ६० रह गई। ६ साल के भीतर ही भीतर १० अपराधों में से ४ अपराध उड़ गये।

फिर भी, अपराध के खिलाफ़, संघर्ष को सोवियत विशेषज्ञ १६३० से शुरू हुआ बताते हैं। उद्योगों का समाजीकरण जारी था और छोटे २ खेतों को खत्म करके बड़े सामूहिक खेत बनाये जा रहे थे। फल स्वरूप सोवियत अपराध-क़ानून में भारी परिवर्तन हुए। कुछ सालों से सामूहिक (जन) सम्पत्ति में चोरियों की बाढ़ सी आ गई थी। अपराधियों की

कुल संख्या में से लगभग आधे इन्हीं चोरियों के अपराध में पकड़े गये थे। अस्तु, इन अपराधियों को शिक्षित करने और आर्थिक रूप से उनके जीवन को व्यवस्थित बनाने का आन्दोलन ज़ोरों से जारी किया गया। पाँच साल के भीतर ही भीतर इन अपराधों में ६० प्रतिशत कमी हो गई। समूचे रूस में हर किस्म के अपराधों में लगभग एक तिहाई कमी हुई।

यह सफलता कैसे हासिल हुई? उसी तरह के उपायों से जिनसे व्यभिचार और शराबखोरी को मिटाया गया था। अब हम इनका विस्तार से वर्णन नहीं करेंगे। अनेक विदेशी लेखक बता चुके हैं कि सोवियत संघ में अपराधियों से कैसा व्यवहार किया जाता है। ए० विशिन्स्की ने बहुत थोड़े और स्पष्ट शब्दों में वर्णन किया है:

"पूंजीवादी देशों में जिन अपराधियों को समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है और दूषित व्यक्ति घोषित कर दिया जाता है, उन्हें सोवियत संघ में देश के आर्थिक निर्माण में भाग लेने के लिये प्रोत्साहित किया जाता है। कुछ ही दिनों में ये लोग समाजवाद के सक्रिय निर्माण में भाग लेने लगते हैं। श्वेत सागर—बाल्टिक कैनाल (नहर) और मास्को—वोल्गा केनाल (नहर) की योजना में सैकड़ों ऐसे लोगों ने भाग लिया। यह काम उनके लिये बड़ा शिक्षाप्रद साबित हुआ। इस तरह के काम ने उनके दृष्टिकोण को सुधारा और ईमानदारी की मेहनत से उन्होंने अपनी रोटी कमाना सीखा।"

दूसरे महायुद्ध से कुछ ही दिनों पहले की एक घटना है। इस घटना ने सोवियत संघ में अपराधों की कमी को स्पष्ट रूप से प्रकट कर दिया।

मास्को के निकट बोल्शेवा कालोनी नाम की एक प्रसिद्ध संस्था थी जिसका काम अपराधियों को सुधारना था। कई बातों में यह व्यभिचारिणी महिलाओं को सुधारने वाले अस्पतालों से मिलती जुलती

थीं। अनेकों यात्री इसे देखने आ चुके थे। धीरे-धीरे इस संस्था की कार्रवाइयों में विकास हुआ। १९३९ में कालोनी का आर्थिक और सांस्कृतिक वातावरण इतना आकर्षक बन गया था कि अनेकों "विद्यार्थी" विवाह करने और स्थाई रूप से अपना घर बसाने का आग्रह करने लगे। इन की संख्या उन लोगों के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा थी जिन्हें सज़ा देकर अदालतें अब इस कालोनी में भरती होने के लिये भेज रही थीं। अस्तु, मजबूर होकर अधिकारियों को घोषणा करना पड़ी कि यह संस्था अब सुधार-संस्था नहीं है। अब यह कालोनी सम्मान प्राप्त नागरिकों का निवास-स्थान बन गई। जिन-जिन पाठकों ने वार्डेन लावेस को "ट्वेन्टी थाउज़ेन्ड ईयर्स इन सिंग सिंग" (सिंग सिंग में बीस हज़ार वर्ष) नामक किताब पढ़ी है वे अपराधों के खिलाफ़ हमारे संघर्ष की असफलता और सोवियत रूस के संघर्ष की सफलता को स्वीकार करेंगे। सोवियत संघर्ष का सफलता की निशानी यह है कि बोल्सेवो संस्था जेलखाने से बदलकर सम्मान प्राप्त नागरिकों के रहने का स्थान बन गयी।

सोवियत संघ में आज भी कितने ही जेलखाने हैं। खास बात यह है कि पहले के मुकाबले इन जेलखानों की संख्या अब बहुत कम है। अदालतों में भी अब मुक़दमे बहुत कम आते हैं। हमें सबसे ज़्यादा आश्चर्य में डालने वाली बात तो यह है कि बालकों के बीच अपराधों की संख्या अब बहुत कम हो गई है। १५ साल तक भिन्न-भिन्न प्रयोग करने के बाद सन् १९३५ में रूसी अपराधियों की व्यवस्था में भारी परिवर्तन हुआ। नई व्यवस्था को लागू हुये १८ महीने भी न हो पाये थे कि अपराधों की संख्या में २२ प्रतिशत कमी हो गई। आज १५ सालों के बाद, मैं दावे के साथ कह सकता हूं, स्थिति यह है कि बालकों के बीच से अपराध जिस रूप में कि हम उन्हें जानते हैं—एक दम उठ गये हैं। इन १५ सालों में युद्ध के वे चार साल भी शामिल हैं जब रूसी बच्चों को तरह-तरह की शारीरिक और मानसिक पीड़ाओं के दौर से

से गुज़रना पड़ा था और कितने ही बच्चे अनाथ बन गये थे)। कितने ही नगरों और गाँवों में हमने (मैंने और मेरी पत्नी ने) अपराधी बालकों और अदालतों में उन पर मुक़दमों के बारे मे प्रश्न पूँछे। सब कहीं से लगभग एक सा ही उत्तर मिला : 'अब हमारे यहाँ बहुत कम सिरफिरे लड़के हैं। बेशक शैतान लड़के थोड़े—बहुत अब भी हैं और कभी कभी एक आध ऐसे 'बिगड़े बच्चे' भी निकल आते हैं जिनकी तरफ़ खास ध्यान देने की ज़रूरत होती है। लेकिन हमारे यहाँ बालक अपराधी अब ढूंढ़े से ही मिलेंगे।" जिसने भी सोवियत जीवन को नजदीक से देखा है उसे समझते देर न लगेगी कि ऐसा क्यों है।

हमने सारे विश्व का भ्रमण नहीं किया। पर हम इतना तो दावे से कह सकते हैं कि जहाँ जहाँ भी हम गये हैं सब जगहों के मुक़ाबले समाजवाद के देश में बच्चों का जीवन ज़्यादा सुखमय और स्वस्थ है। सोवियत बच्चे "आकाश कुसुम" नहीं हैं। वे साधारण बच्चे हैं। बिना भेद—भाव के सभी को जीवन की दो मुख्य आवश्यक सुविधायें हासिल हैं।

पहले तो यह कि उन्हें कभी आधे पेट नहीं रहना पड़ता और उनकी पूरी डाक्टरी देख—रेख होती है। दूसरे, खेलने—कूदने और रचनात्मक शिक्षा पाने की उनकी सहज प्रवृत्ति को संतुष्ट करने की वहाँ अनुपम सुविधायें मौजूद हैं।

सोवियत बच्चे गलियों में नहीं खेलते फिरते। उनके खेलने के लिये बढ़िया से बढ़िया मैदान बने हुये हैं। एक मिसाल दूं : सोवियत बच्चे न सिर्फ़ छोटी—छोटी रेलों पर सवारी करते हैं, उनकी अपनी खुद की रेलें हैं जो सचमुच भाप के इंजन से चलती हैं। स्तालिनग्राद में हम बच्चों की रेल को देखते नहीं अघाये। उसका भाप का इंजन और छोटे—छोटे डिब्बे बस देखते ही बनते थे।

सोवियत बच्चे गुंडों और बदमाशों की नकल नहीं करते। ज़्यादा मज़ा उन्हें अच्छे-भले आदमियों की नकल करने में आता है। उनकी अपनी रेलों के अलावा उनके अपने नाटकघर, अखबार, पत्र-पत्रिकायें नावें, प्रयोगगृह, उद्यान, मनोरंजन के पार्क भी हैं। बालकों की जिन-जिन चीज़ों में दिलचस्पी हो सकती है, सभी उनके पास हैं।

शिक्षा सोवियत जीवन का बड़ा महत्वपूर्ण अंग है। वहाँ के स्कूलों में जो कुछ हमने देखा उसमें से कुछ बातें ये हैं:

हमारे स्कूलों के मुक़ाबले सोवियत स्कूलों में ज़्यादा अध्यापक हैं।

स्कूलों में अच्छा अनुशासन रहता है। बच्चे अध्यापकों की इज़्ज़त तो करते ही हैं, उन्हें प्यार भी करते हैं।

सज़ा के तौर पर बच्चों को शारीरिक यातना देना वर्जित है।

अध्यापकों पर ज़रूरत से ज़्यादा काम नहीं रहता। सभी शक्तिशाली अध्यापक-सभाओं के सदस्य होते हैं। स्कूल के बाद यदि वे कोई काम करते हैं तो इसकी उन्हें अतिरिक्त तनख़ाह मिलती है।

विज्ञान की शिक्षा विद्यार्थियों को ख़ास-तौर से दी जाती है। छोटी कक्षाओं में भी अच्छे से अच्छे प्रयोग के यंत्र मौजूद रहते हैं। विद्यार्थियों को बढ़ावा दिया जाता है कि 'तुम इसे ख़ुद ही साबित करो।' तमाम स्कूलों में बहुत अच्छे बागाचे, फूलों की क्यारियां, पशु और मछलियाँ भी होती हैं। बच्चों को स्कूल में ही अच्छी तरह पढ़ाया जाता है। घरों पर पढ़ने के लिये उनको टुकड़ियों में विभाजित कर दिया जाता है। सभी में "टीम (सहयोग) भावना" पाई जाती है।

बच्चों के स्वास्थ्य की बड़ी हिफ़ाजत की जाती है। बड़े-बड़े स्कूलों में पूरे वक़्त के लिये डाक्टर और नर्सें होती हैं। बच्चों के स्वास्थ्य की

साल में कम से कम चार बार जाँच की जाती है।

हर रोग का घर पर या शफाखाने में या बच्चों के स्वास्थ्य केन्द्र में इलाज किया जाता है। इलाज मुफ्त होता है।

स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से जिन बच्चों को विशेष प्रकार के भोजन की ज़रूरत होती है उन्हें यह भोजन स्कूल के भोजनगृह में मुफ्त दिया जाता है।

स्कूल में भोजन का खर्च अधिकांश अभिभावक खुद देते हैं। यह खर्चा बहुत मामूली होता है। उनके भोजन को देख कर हम चकित रह गये। कितने ही स्कूलों में एक ही प्रकार के भोजन की अलग-अलग क़िस्में मौजूद रहती हैं। जो बच्चा जैसा भोजन चाहे ले सकता है।

यदि किसी कारण विद्यार्थी के पिता की आय कम हुई तो उसे स्कूल में मुफ्त भोजन मिलता है। इसे दान नहीं समझा जाता इसे बच्चे का अधिकार समझा जाता है।

हमारे अखबारों में अक्सर बड़े-बड़े धार्मिक पंडितों और सामाजिक कार्यकर्ताओं के बयान छपा करते हैं। इनमें हालीवुड के कामोत्तेजक चल चित्रों, कामोत्तेजक विज्ञापनों, काम सम्बन्धी अपराधों की खबरों से बचे रहने की चेतावनी दी जाती है। यह सब-कुछ हमारे देश में अमरीका से आता है। पंडितों और कार्यकर्ताओं, दोनों का ही मन्तव्य है "भई, कुछ किया जाना चाहिये।" किन्तु सोवियत रूस में ऐसी कोई समस्या नहीं। वहाँ के लोग, अधिकारियों से लेकर आम जनता तक, काम सम्बन्धी बातों के इस तरह के उपयोग को अपराध समझते हैं। वे इसे बरदाश्त करने को तैयार नहीं।

एक चीज़ जो समाजवाद के देश में खासतौर से देखने में आती है यह है: गन्दे चित्र, निशान, सनीमा, किताबें वहाँ एकदम नदारत हैं।

इसका कारण यह क़तई नहीं कि वहाँ के लोग "बड़े भोले हैं।" एक बात ज़रूर है : वहाँ काम सम्बंधी बातों को रास्ता और घटिया किस्म का माल बेचने का साधन नहीं बनाया जा सकता। दूसरे, काम सम्बंधी बातों की ओर जनता का नज़रिया बड़ा स्वस्थ है। ये बातें वहाँ प्रेम-बन्धन में बंधे दो प्राणियों की अपनी निजी चीज़ मानी जाती हैं। घटिया किस्म के कपड़े, नुक़सान-देह पेय पदार्थों या हालीवुड के शेख-चिल्लियों द्वारा लिखे और बनाये चित्रों को बेंचने का साधन नहीं।

सोवियत बच्चे ऐसे वातावरण में पलते हैं जो निराशावादी प्रभावों से मुक्त होता है। वे भी व्यंग-चित्रों के प्रेमी होते हैं। पर उनके व्यंग्य-चित्रों में अधनंगी औरतें और गुण्डे पेश नहीं किए जाते। वे ऐसे चित्रों के प्रेमी होते हैं जो उनमें स्वस्थ और सुखी बचपन की भावनाओं का संचार करते हैं। किताबें भी वे ऐसी ही पढ़ते हैं। वे ऐसे समाज में पल रहे हैं। जिसमे तलाक को बढ़ावा नहीं दिया जाता। बढ़ावा दिया जाता है प्रेम पर आधारित वैवाहिक जीवन को।

इसके विपरीत, अमरीका में जो दशा है वह सभी को मालूम है।

१६३८ में पच्छिमी दुनिया में अपराधों की सबसे ज़्यादा संख्या अमरीका मे थी। १६४३ तक हर वर्ष वहाँ १,३००,००० गम्भीर अपराधों को नोट किया गया। इन अपराधों में हर ५३ वें मिनट पर होने वाली हत्या भी शामिल है। अमरीकी फेडरल ब्यूरो आफ इन्वेस्टिगेशन के कागजातों में ६० लाख अपराधियों की कारगुज़ारियों का ब्योरा मौजूद है। युद्ध के बाद युवा बालिकाओं में अपराधों की संख्या १३० प्रतिशत बढ़ गई है।

अमरीकी युवकों और युवतियों को इस दशा पर पहुँचाने में बहुत बड़ा हाथ तथाकथित अमरीकी 'सभ्यता' का है। 'टेलेविज़ मैगज़ीन'

नामक पत्रिका ने मई १९५१ में लौस एंजेल्स नामक नगर में एक हफ्ते में दिखाये गये चित्रों के आँकड़े लिए थे। हॉलीवुडी सभ्यता के महान देश के नागरिकों ने सात दिन के भीतर ही भीतर जो चित्र देखे उनमें : १२७ हत्यायें थीं, १०१ 'न्यायसंगत हत्यायें थीं, ३५७ हत्या की कोशिशें थीं, ६३ औरतें-भगाने के दृश्य और ३ तरह-तरह की यातनाओं के दृश्य थे। इस खौफनाक 'मनोरजन' का ८० प्रतिशत भाग खास तौर से बच्चों के लिये था।

सोवियत रूस में दशा ठीक उल्टी है।

सोवियत रूस सुखी बच्चों का देश है और यह सुख सब से अच्छी तरह बच्चों को नाटशाला में देखने में आता है। अपनी करतलध्वनि से बच्चे दीवारों को हिला देते हैं। खलनायक को वे खुलकर गालियाँ देते हैं। और नायक की खुल कर प्रशंसा करते है। कुछ अरसे तक तो वे किसी अच्छे दृष्य को देखकर अपनी तालियों की गड़गड़ाहट से रोक देते हैं और उस दृष्य को दुहराने के लिये अपने हम उम्र कलाकारों को मजबूर कर देते हैं।

हमारे यहाँ के बच्चे भी चलचित्र देखकर इतने ही खुश हो उठते हैं। पर उनकी प्रसन्नता में मार्के का फर्क है। यह फर्क चलचित्रों की विषय-वस्तु के कारण है। बच्चों की नाट्यशालाओं में सोवियत बच्चे अच्छी से अच्छी कलाकृतियों, अच्छे से अच्छे नाटकों, को देखते हैं। उनके सब से प्रिय नाटक वे होते हैं जिनमें वास्तविक जीवन की घटनाओं और वास्तविक चरित्रों का प्रतिबिम्ब होता है। उन्हें ऐसी ऊटपटांग और बेहूदी चीजें पसन्द नहीं आ सकतीं जैसी अमरीकी चलचित्रों में पेश की जाती हैं। सोवियत बच्चों में हमने देखा कि उनकी आलोचनात्मक दृष्टि बहुत पैनी है। वे सच्चा और सजीव अभिनय चाहते हैं। बनावटी और

दिखावटी अभिनय को पकड़ने में उन्हें देर नहीं लगती। यदि उन्हें पच्छिमी देशों के हालीवुडी मारकाटवाले खेल दिखाये जायें—जैसे कि हमारे यहाँ के बच्चों को दिखाये जाते हैं— तो हम आसानी से अन्दाज लगा सकते हैं कि शोर गुल मचाकर वे इनके प्रदर्शन को रुकवा देंगे।

बहुत छुटपन से ही, जब वे किन्डरगार्टनों में होते हैं, सोवियत बच्चे नाटक देखना शुरू कर देते हैं। स्कूल में पहुँचने पर साहित्य में उनकी रुचि और भी निखर उठती है क्योंकि सभी देशों के अच्छे से अच्छे नाटकों को वे देख सकते हैं। १४, १५ साल की अवस्था तक पहुंचने पर उनकी परख बहुत पैनी हो जाती है और उन्हें यह समझने में देर नहीं लगती है कि क्या अच्छा है और क्या बुरा है।

"यदि ज़रा सा भी सदाचार बाकी है तो !"

लोग पाप क्यों करते हैं ?

हम और अधिक स्पष्टता से पूँछेंगे : लोग ऐसे काम करते ही क्यों हैं जिनसे उनको, उनके निकट सम्बन्धियों को और समूचे समाज को शारीरिक और मानसिक दुःख भुगतना पड़े ? इससे भी ज्यादा खुले रूप में प्रश्न किया जा सकता है : पुरुष और स्त्री व्यभिचारी होते ही क्यों हैं ? इक्की दुक्की व्यभिचार की मिसालों की बात हम नहीं पूँछ रहे । हम पूँछ रहे हैं, बड़े पैमाने पर व्यभिचार के फ़ैलाव का कारण । इस फैलाव का जीता जागता सबूत योनि रोगों से बचाव की हर महीने ५ करोड़ दवाओं की खपत है ।

इसी अर्थ में हमारा प्रश्न है : लोग पाप करते ही क्यों हैं ।

उत्तर में हमें तमाम लोगों के स्वर सुनाई पड़ते हैं । इन सभी लोगों की अलग-अलग डफली और अलग-अलग राग है । 'व्यभिचार का कारण', एक स्वर कहता है, "यह है कि लोग आत्मा की आवाज़ को नहीं सुनते ।" तो क्या हम उस समय तक हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें जब तक विज्ञान कोई ऐसा ध्वनि प्रसारक यंत्र ईजाद कर दे जिससे यह बारीक आवाज़ बुलन्द होकर सुनाई पड़ने लगे ? 'नहीं, यह तो परम पिता परमात्मा के महात्म्य को कम करके आँकना होगा" दूसरा स्वर कहता है "क्योंकि ईश्वर ही बतला सकता है कि क्या अच्छा है और क्या बुरा है ।" किन्तु खेद है कि सामन्तयुग में करोड़ों लोगों को उनके धार्मिक नेता समझा चुके थे : स्त्रियाँ यदि वेश्यावृत्ति ग्रहण करती हैं तो किंचित हानि नहीं; हाँ, यदि भली स्त्रियाँ प्रेम करना शुरू करें तो यह अवश्य अक्षम्य होगा ।

तो क्या ज्यों ज्यों मनुष्य अपनी सामाजिक व्यवस्था को बदलते हैं त्यों त्यों परम पिता परमात्मा के पाप–पुण्य नियमों में भी रद्दो–बदल हुआ करती है ?

इस बात को अनादरसूचक समझ कर दूसरे सिद्धांतवेत्ता और दर्शन–शास्त्री हमें आगाह कर उठते हैं : बगुलाभक्तों की बातों में विश्वास मत करो। सच्चे भक्त तो हम हैं। हमारी बात मानो और ईश्वर के प्रति उल्टी–सीधी बातें जबान पर मत लाओ। इस तरह के तर्कों और उनके उत्तरों से पुस्तक के पन्ने के पन्ने भर जायेंगे। मध्य युग के बड़े–बड़े दिग्गज विद्वान अनोखी गम्भीरता से इस प्रश्न पर बहस किया करते थे : एक सुई की नोक पर खुदा के कितने फरिस्ते खड़े हो सकते हैं ?

और अब हमारे दर्शनशास्त्री—यहाँ तक कि कुछ वैज्ञानिक भी,—यह प्रश्न पूँछते नहीं अघाते कि मनुष्य में पाप की प्रवृत्ति होती ही क्यों है !

मध्ययुग की बहसें दिलचस्प और लाभदायक हो सकती थीं। मुमकिन है इन बहसों के फलस्वरूप अन्दाज लगाया गया हो कि क्या मनुष्य भी उड़ सकते हैं ! इस का भी तखमीना लगाया गया होगा कि फरिस्ते कितनी मुश्किल से सुई की नोक पर उतरते होंगे; और उतर भी आते होंगे तो फिर दुबारा कैसे उड़ते होंगे। यह भी सोचा जा सकता है कि ऊन बहसों से प्रतिबिम्बों के फैलने और सिकुड़ने के हानि–लाभों और ऐसी ही दूसरी काम–काजी बातों का अन्दाज लगाया गया होगा।

पर व्यभिचार और इन्द्रिय रोगों के बारे में इस तरह की दिलचस्पी की बातों की उम्मीद नहीं की जा सकती।

यदि आप पादरी या डाक्टर या वकील हैं—खास तौर से यदि आप किसी के पिता या माता हैं—तो आपका कर्त्तव्य है कि अपने देश

की घटनाओं का अध्ययन करें और देखें कि वे देश को किस तरफ ले जा रही हैं।

आज हमारे यहाँ बड़े पैमाने पर जो एक अजीब तरह की मानसिक बीमारी फैली है उसका कारण शराबखोरी है। इसे रोकने के लिये क्या किया जा रहा है? कतई कुछ नहीं। शराबखोरी का व्यापक रोग हमारी सरकार के लिये बेहद मुनाफे का साधन बना हुआ है।

इस महाद्वीप पर युद्ध की उथल-पुथल मचाने के पहले हमारे ही यहां हर ७ बच्चों में से दो की भ्रूण-हत्या हो रही थी। तमाम डाक्टर स्वीकार करेंगे कि भ्रूण-हत्याओं की दर अब और भी ऊंची हो गई है। इस हत्याकांड की भयानकता का अन्दाज लगा सकना कठिन है। इस वक्त भी, इधर आप इस पंक्ति को पढ़ रहे हैं और उधर कोई भ्रूण-हत्या के काम में जुटा है। नाज़ी आततायी भी उतने योरपीय बच्चों की हत्या नहीं कर सके थे जितने बच्चे अब हमारे देशों में गुप्त रूप से मारे जा रहे हैं।

इतना ही नहीं। डा० हालबर्ट एल० डुन—अमरीकी मर्दुमशुमारी ब्यूरो के वाइटल स्टैटिस्टिक्स डिवीजन के सर्वेसर्वा—ने हाल ही में बताया है कि अमरीका में पैदा होने वाला प्रत्येक १२ वाँ बच्चा जारज संतान होता है। इसका अर्थ है कि हर साल प्राइमरी स्कूलों में भर्ती होने वाले लगभग १,७०,००० बच्चे अपने पिता का नाम नहीं बता सकते। कानूनी तौर पर वे "बिना पिता के बच्चे होते हैं।" क़ानूनी तौर पर उनका कोई परिवार नहीं होता। जिन्दगी की हर मंजिल पर शर्म और बदनामी से उनकी मुठभेड़ होती है। इन अभागे बेगुनाह बच्चों की फौज दिन पर दिन बढ़ती ही जा रही है। लेकिन उनकी दशा इतनी दयनीय है कि डा० डुन को इस बात की अपील करना पड़ी कि उनके जन्म सम्बन्धी सर्टिफिकेट समाज के सामने पेश न किये जायें और इसके

लिये क़ानूनी क़दम उठाया जाय। साथ ही उन्होंने यह भी कह दिया कि मौजूदा हालत में इन "बिना पिता की संतानों" की संख्या को कम कर-सकना असम्भव है।

हमारे यहाँ तलाकों की दर इतनी तेजी से बढ़ रही है कि लाखों लोग या तो किसी दूसरे की पहली पत्नी से या दूसरे के पहले पति से विवाहित हैं। लाखों-करोड़ों बच्चों पर भी इस स्थिति का दुष्प्रभाव पड़ रहा है। उन्हें अपने सच्चे माता-पिता का प्रेम नहीं मिल पा रहा। गिरजा घर के महन्त और पादरी तलाकों के कट्टर विरोधी बने हुए हैं; पर तलाकों की बढ़ती को रोकने में उनकी एक नहीं चल पाती। क़ानून तो तलाकों के लिये और भी उदार नियमों की माँग कर रहा है। क़ानूनी-विवाहों की इज्जत को बरकरार रखने का क़ानूनी पंडित यही एक उपाय देख पा रहे हैं।

उधर डाक्टरी खोज-बीन का उद्देश्य यह बना जा रहा है कि ऐसे नुस्खे और ऐसी दवाइयाँ तैयार की जायें जिनसे व्यभिचार के दौरान में अधिक से अधिक सुख भोगा जा सके। साथ ही न तो कोई बीमारी लगने पाये और न बच्चे पैदा हों।

इन्द्रिय रोगों, शराबखोरी, जारज संतानों, भ्रूण हत्याओं, तलाकों, अपराधों में दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती हो रही है। भयानक अधः पतन की कगार पर हम खड़े हुए हैं और चौमुखी अनैतिकता का दैत्य मुँह बाये हमे निगलने को तैयार है।

ऊपर कही बातों को अमरीका की आज की स्थिति ने सिद्ध भी कर दिया है। १९५१-५२ में वाशिंगटन बदनामी की बातों से हिल उठा था। हालत यहाँ तक नाजुक हो गई थी कि नवम्बर १९५१ में अमरीका के रोमन कैथोलिक पादरियों को एक खुला वक्तव्य जारी करना पड़ा। जनता

के नाम इस चेतावनी में उन्होंने आगाह किया कि अमरीका नैतिक पतन की उसी दुरवस्था को पहुँच गया है जिसके कारण प्राचीन रोम का पतन हुआ था।

"यू० एस० न्यूज" नामक अमरीका पत्रिका ने उसी सप्ताह बताया कि "देश के एक छोर से दूसरे छोर तक की दशा बताती है कि अमरीका का नैतिक ढाँचा कमजोर होता जाता है।" डॉरोथी थौम्पसन नामक लेखिका ने तो यहाँ तक कह डाला "सरकार के अन्दर भ्रष्टाचार की मौजूदगी नई चीज नहीं है। पर खास बात यह है कि अब-यह भ्रष्टाचार ऊपर से नीचे तक सभी जगह फैल गया है।"

अमेरिका में जो रवैया है उसकी रूस से तुलना करने पर हृदय में बड़ी ग्लानि होती है। वहाँ इतिहास में पहली बार लाखों करोड़ों इन्सानों ने यह समझा और सीखा कि पाप कोई राक्षसी देन नहीं है। उन्होंने समझा कि यह एक सामाजिक बुराई है जो आसानी से समझ में आने वाले वैज्ञानिक उपायों से दूर की जा सकती है। इस समझदारी के फलस्वरूप ही सोवियत रूस के लोग भयानक से भयानक अनैतिकता को खत्म करने में कामयाब हुए हैं। दुनिया में रूस ही एक ऐसा देश है जहाँ से वैश्यावृत्ति को एकदम उठा दिया गया है। इस तरह उन्होंने वह कुछ कर दिखाया है जिसे हमारे दार्शनिक, पादरी और डाक्टर असम्भव समझते हैं।

दुनिया के और किसी देश में जेलों और सुधार केन्द्रों को बन्द नहीं किया जा रहा है। सोवियत रूस ही ऐसा भी देश है जहाँ गर्भ-निवारण बनाम शिशु-हत्याओं को बन्द किया जा रहा है, जहाँ तलाकों की संख्या में तेजी से कमी हो रही है।

एक बात जरूर है नैतिक सुधार के लिये सोवियत रूस को मिसाल से

सीखने की बात बहुत लोगों को अरुचिकर मालूम होती है। ये लोग अमरीका के इस प्रचार के पूरी तरह शिकार बन चुके हैं कि दुनिया में सब से अच्छी सभ्यता अमरीकी सभ्यता है। इस तरह पूँजीवादी देशों के लाखों करोड़ों इन्सानों की आँखों पर पट्टी बाँध दी गई है ताकि वे बुनियादी सच्चाई को देख ही न सकें। इस सच्चाई के एक पहलू को एक कैथोलिक विचारक ने हाल में ही पेश भी किया था। इनका नाम है काउन्ट माइकेल दल बिदोये और ये 'कैथोलिक रेकार्ड' नामक अंग्रेजी पत्र के सम्पादक हैं।

उन्होंने पूँछा है: "आज के सब से बड़े अधः पतन के सामने ईसाई मजहब की वकत ही क्या है?" दुःखी होकर वे कहते हैं, "जैसे भी बने हमें नवीन सत्य को देखना चाहिये और लोगों में नया उत्साह जगाना चाहिये।" बाद में उन्होंने कहा है; "अगर ईसाई मजहब यह उत्साह नहीं जगा सका तो कम्युनिज़्म लोगों को अपने साथ बहा ले जायगा। मास्को का आकर्षणकेन्द्र पोप या कैन्टरबरी के पादरी से कहीं ज्यादा शक्तिशाली सिद्ध हो रहा है।"

एक रोमन कैथोलिक के मुँह से यह बात सुनकर सचमुच आश्चर्य होता है। लेकिन उसकी बात मे अतिशयोक्ति नहीं है। उसने सच्चाई को ठेठ रूप में पेश कर दिया है।

१६४६ के बाद की दुनिया में क्या २ तब्दीलियाँ हुई हैं? इस समय से अमरीका, ग्रेटब्रिटेन, कनाडा और दुनिया के दूसरे आगे बढ़े देशों की युद्ध के लिये जो तोड़ तैयारियाँ शुरू हो चुकी थीं १६४६ के बाद हुआ यह कि सोवियत रूस का सम्मान घटने के बजाय दुनियाँ के लाखों—लाख इन्सानों की नजरों में और भी बढ़ गया है।

अब इस पुस्तक का हिन्दी संस्करण छप रहा है। इस वक्त मुझसे एशिया में होने वाले नवीन महान परिवर्तनों का जिक्र करने का

लोभ संवरण नहीं किया जाता। एशिया में परिवर्तन इतनी तेज़ी से हो रहे हैं कि आज कही बात के कल पुराने पड़ जाने की संभावना मौजूद है। इस पुस्तक में मैं दो ही देशों का ज़िक्र करके संतोष कर लूंगा। अपने विकास—स्तर में, अपने इतिहास में और अपने—अपने रीति-रिवाजों में इन दोनों देशों में सचमुच "ज़मीन आसमान का फर्क" है।

चेकोस्लोवाकिया हर नज़रिये से "पच्छिमी" देश है। यहाँ जन—वादी परम्परा सदा से चली आई है। चेकोस्लोवाकिया ने जब से समाजवाद के रास्ते पर कदम रखे और सोवियत रूस से मित्रता की नीति अपनाई, वहाँ की नैतिक—स्थिति में मार्के की उन्नति हुई है। परिवार को व्यवस्था, तलाक मातात्रों और बच्चों की खुशहाली के लिये वहाँ समाज-वादी क़ानून पास किये गये हैं। वहाँ की महिलायें पुरुषों से सच्ची समानता की ओर तेज़ी से अग्रसर हुई हैं। सोवियत रूस की ही तरह इस परिवर्तन ने चेकोस्लोवाकिया में भी परिवार की नींव को फौलादी बना दिया है। तलाक़ों की दर वहाँ तेज़ी से घट रही है। विवाहों की दर पहले से भी ज़्यादा तेज़ी से बढ़ रही है,—खासतौर से नवयुवकों के बीच जिनका भविष्य सुरक्षित है। माताओं और बच्चों की खुशहाली के लिये और परिवारों को सुदृढ़ बनाने के लिये राष्ट्र की ओर से भारी रकमें खर्च की जा रही हैं। चेकोस्लावाकिया से लौट कर आये हुये लोग एक नये प्रकार के पारिवारिक—जीवन की बातें करते हैं। इसी तरह का पारिवारिक जीवन आमतौर से वहाँ देखने में आता है। विवाह चेक—लड़कियों की आर्थिक-सुरक्षा का निमित्त मात्र नहीं है। राष्ट्र की ओर से हरेक को नौकरी देने और अच्छा जीवन बिताने लायक तनखा देने की गारण्टी है। विवाह के रास्ते में कोई रुकावटें नहीं हैं और बच्चों को आर्थिक बोझा नहीं समझा जाता है।

दूसरा देश है चीन,—नया चीन। यहाँ तीन साल से भी कम अरसे

में क्रांति ने लाखों—करोड़ों स्त्रियों के जीवन में भारी परिवर्तन कर दिया है। चीन के इतिहास में पहली बार झुंड की झुंड स्त्रियाँ स्कूलों में पढ़ने के लिये जाने लगी हैं। ऊंचे से ऊंचे शिक्षालयों के दरवाज़े उनके लिये खोल दिये गये हैं। सभी सरकारी महकमों और पदों पर स्त्रियाँ मौजूद हैं। सैकड़ों—हज़ारों की तादाद में वे उद्योगों में काम करने के लिये पहुँच रही हैं। किन्तु अब वे वहाँ अशिक्षित गुलाम स्त्रियों की तरह भरती नहीं की जाती हैं! अब वे वहाँ पहुँच रही हैं कुशल कारीगरों के रूप में और शासन—प्रबन्ध के ऊंचे से ऊंचे पद पर पहुँचने की सम्भावनायें उनके सामने मौजूद हैं। माताओं और पत्नियों की स्थिति में भारी उन्नति हुई है। इस उन्नति का कारण यह है कि भुखमरी और अकाल का सदा के लिये अन्त कर दिया गया है, अस्पतालों और शिशु क्रीड़ा केन्द्रों का सारे देश में जाल सा बिछा दिया गया है। इस उन्नति का कारण यह है कि वहाँ नये क़ानून बनाये गये हैं और ये क़ानून समाजवादी नैतिकता के सिद्धान्तों पर आधारित हैं। नये चीन को देख कर आये सभी ईमानदार लोग यह स्वीकार करते हैं कि इतिहास में किसी भी दूसरे देश की स्त्रियों ने इतनी तेज़ी से गुलामी के बन्धन नहीं तोड़े।

इसी तरह की दशा दूसरे जनवादी देशों, जैसे हंगरी, रूमानिया, बल्गारिया, पोलैंड और अलबानिया में भी है। दुनिया के बहुत बड़े भाग में समाजवादी नैतिकता का यह ऐतिहासिक विकास सोवियत रूस के घनिष्ट सहयोग से हो रहा है और सोवियत अनुभव पर ही यह आधारित भी है। फिर इसमें ताज्जुब की क्या बात है कि पूर्व, मध्यपूर्व, अफ्रीका, दक्षिणी अमरीका के लोग—योरप के लाखों लोगों की तो बात ही क्या—राजनीतिक और आर्थिक प्रेरणा के साथ—साथ नैतिक प्रेरणा के लिये भी सोवियत रूस की ओर मुखातिब हो रहे हैं। विश्व में इस ऐतिहासिक परिवर्तन के सबक को समझना जरूरी है।

हम यहाँ मैक्सिम गोर्की की रचना का एक अंश उद्धृत करेंगे। "मुफ्तखोर" लोगों की ओर सोवियत नजरिया क्या है यह इस उद्धरण में बड़ी अच्छी तरह स्पष्ट कर दिया गया है। गोर्की ने लिखा है :

"मुफ्तखोर गाली का शब्द नहीं है। यह वास्तव में ऐसे मनुष्य की परिभाषा है जिसने अपना जीवन व्यर्थ गंवा दिया है। समाजवादी परिस्थितियों के अन्तर्गत मुफ्तखोर एक ऐसा प्राणी है जो पुरानी व्यवस्था की बीमारियों ईर्षा और लालच से बुरी तरह पीड़ित है। मुफ्तखोर के बुनियादी सिद्धान्त, उसके आदर्शों और आध्यात्मिक जीवन के सारतत्व को सबसे अच्छी तरह इन थोड़े से शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है : मैं तो बस अपना पेट भरना जानता हूं।" उसके लिये दुनिया क्या है? ऐसी जगह जहाँ लोग अपना पेट भरते हैं, जहाँ वह अपना पेट भरना चाहता है। और अपना पेट वह दूसरों से ज्यादा और अधिक स्वादिष्ट भोजन से भरना चाहता है। उसकी समूची इच्छा-शक्ति, उसकी बुद्धि और उसकी आध्यात्म शक्ति सिर्फ इसी अमानवीय उद्देश्य पर केन्द्रित रहती है।"

संसार के एक महान कलाकार ने इन शब्दों में ऐसे लोगों की भर्त्सना की है। फ़ासिस्त गुंडों के हाथों हत्या से कुछ ही दिनों पहले, गोर्की ने और भी अधिक स्पष्ट शब्दों में कहा था :

"पूंजीवादी दुनिया और हमारी समाजवादी दुनिया के बीच बुनियादी फ़र्क यह है : हमारे सिद्धान्त और हमारी आर्थिक व्यवस्था मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को अडिग रूप से अनुचित ठहराते हैं, हम लगातार और बड़ी सफलता से लोगों को शिक्षित करते हैं कि वे प्रकृति को अपने काबू में लायें और उससे ज़्यादा से ज़्यादा लाभ उठायें। पूंजी वादी तो मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण पर ही जीवित है। आमतौर से पूंजीवाद के अन्तर्गत मनुष्य को ऐसा प्राणी माना जाता है जिसका जन्म ही अपनी लालसा तृप्त करने, मुनाफे कमाने और धन की शक्ति का गुण-गान करने के लिये होता है।"

सच्चाई यह है कि हमारी सामाजिक व्यवस्था यानी पूंजीवादी जनवाद की आधारशिला ही 'धन की शक्ति' है। हमारी मुक्त-प्रतियोगिता, हमारी मुनाफ़े की व्यवस्था उसी व्यक्ति की प्रशंसा करती हैं जो दूसरों को नुकसान पहुँचाने और अपना भला करने में तेज हो। हमारी व्यवस्था के अन्तर्गत सबसे मजे में वे ही लोग रहे हैं जो स्वभाव से ही या जिद से दूसरों का निर्दयता से शोषण कर सके हैं। जनता का बहुसंख्यक अङ्ग, पुरुष और स्त्रियाँ, जो कठिन से कठिन श्रम करते रहे, जो समाज की माली और सांस्कृतिक सम्पत्ति को पैदा करने वाले थे, बहुत कम पा सके। उल्टे, मुट्ठी भर लोग युद्ध और आम गरीबी के दिनों में भी गुलछर्रे उड़ाते रहे।

काउण्ट माइकेल को ज़्यादा गम्भीर चिन्तन की जरूरत नहीं थी। ऊपर बताये गये अन्तर्विरोध को देखकर ही वे आसानी से समझ सकते थे कि क्यों हमारे देशों के लोग और भी अधिक उत्साह से सोवियत रूस के बारे में जानने की कोशिश कर रहे हैं। बचपन से ही हम लोगों को सिखाया गया है—ठीक उसी तरह जैसे हमारे बाबा और परबाबा को सिखाया गया था—कि ज़िन्दगी में कामयाबी इस बात से जाँची जाती है कि किसने कितना धन इकट्ठा किया है। हमारे समाज से दया, परोपकार, क़ुर्बानी, ईमानदारी और सहिष्णुता जैसे गुण मानो लोप हो गये हों। सच पूंछा जाय तो ये गुण उन्हीं लोगों में मिलते हैं जिन्हें हम ज़िन्दगी में असफल हुआ समझते हैं।

इतवार के दिन स्कूल में हमें ईसू मसीह की कड़ी चेतावनी सिखाई जाती है: "एक ऊंट भले ही सुई के छेद में से निकल जाय, धनी आदमी के लिये स्वर्ग में पहुँच सकना इससे भी मुश्किल है।" अब यह चेतावनी शायद पुरानी पड़ गई है। हफ्ते भर हमें धन-वैभव की प्रशंसा के ही गीत सुनाई पड़ते हैं और लगता है कि स्वर्ग के देवता इतवार के दिन भी धनिकों को कष्ट देना जरूरी नहीं समझते। ईसू मसीह खुल्लमखुल्ला विरोध करते हुये हमारे उद्योगपति, हमारे अधिकांश राजनीतिज्ञ और

बहुत से पादरी तक धन के लिये संघर्ष को न्यायपूर्ण सिद्ध करने में ऐडी चोटी का जोर लगा देते हैं। उनकी इस नैतिकता पर अगर कोई उंगली उठाता है तो वे आग बबूला हो उठते हैं और उंगली उठाने वाले पर उनका क्रोध बरस पड़ता है।

आज इन लोगों ने शर्म और लिहाज को एकदम उतार फेंका है। अमरीकी एटम बम के झण्डे के नीचे खड़े होकर वे दुनिया के सामने ऐलान करते हैं कि धन की नैतिकता न सिर्फ़ अमरीका के लिये एक वरदान है बल्कि जीवन का एक ऐसा सुन्दर नमूना है जिसे वे अनिच्छित दुनिया के ऊपर जबर्दस्ती लादना चाहते हैं। इसके लिये, वे कहते हैं, अगर बल का प्रयोग करना पड़े, अगर तीसरा विश्व युद्ध छेड़ना पड़े, तो भी कोई बात नहीं। दुनिया के हर कोने में, जहाँ भी इस "जेहाद" के लिये वे अपने गुर्गे खड़े कर सकते हैं। देखा गया है कि अपने देश अमरीका की तो वे पूजा करवाते हैं किन्तु अपने युद्ध के जाल में फँसने वाले लोगों के साथ वे बड़ा नीचतापूर्ण व्यवहार करते हैं।

समाजवादी संसार के खिलाफ़ अपने बेरोक और बेहूदे प्रचार आन्दोलन में अमरीका के दलाल अब एक बात को छोड़ जाते हैं। घृणा के उनके प्रचार में झूठी से झूठी बातों को शामिल किया जाता है। नहीं शामिल किया जाता है तो सिर्फ एक बात को। फरेबियों और दगाबाजों के गुरुघण्टाल होते हुये भी वे सोवियत राष्ट्र के खिलाफ़ अनैतिकता का दोष लगाने में असमर्थ मालूम होते हैं। पर इसका कारण उनकी ईमानदारी नहीं हैं। तो!

बात यह है कि समाजवादी राष्ट्रों के खिलाफ़ अनैतिकता का दोष लगा सकना अब अमरीकियों के बस की बात नहीं है। इसकी वजह सिर्फ यही नहीं है कि समाजवादी नैतिकता समूची पूंजीवादी दुनिया के लिये चुनौती है। इसकी खास वजह यह है कि अमरीका भ्रष्टाचार व्यभिचार और बेइमानी को ही अमरीकी-जीवन के नाम से रंग-चुन कर पेश करता है।

कभी इतिहास में पहले धन की लोलुपता इतने नंगे रूप में देखने में नहीं आई थी। 'व्हाइट हाउस' वालों से लेकर साधारण से साधारण—टैक्स कलेक्टर तक, सभी के मुँह से धन के लिये लार बह रही है। कभी भी कहीं दूसरी जगह वेश्यावृत्ति और भ्रूण—हत्यायें इतने व्यापक पैमाने पर नहीं फैली थीं। कभी भी किसी दूसरे देश में शराबखोरी, व्यभिचार, विकृत काम वासनाओं और हत्याओं को दैनिक मनोरंजन का साधन नहीं बनाया गया था। आज अमरीका में यही सब कुछ अमरीकी सभ्यता के नाम से विख्यात है। यही है 'ठंडा युद्ध' चलाने वाले अमरीका का असली रूप। और ज्यों २ अमरीका में युद्ध की तैयारियाँ खुलासा होती जाती हैं त्यों २ यह नैतिक पतन अपनी पूर्णता की ओर और भी तेजी से पहुंचता जाता है।

आइन्स्टीन और दूसरे अनेक वैज्ञानिक घोषणा कर चुके हैं एटम बम तथा कीटाणु अस्त्रों के इस युग में सब से बड़ा अपराध, सब से बड़ी अनैतिकता, युद्ध है। यह कोई आकस्मिक बात नहीं कि अमरीका के समर्थक सोवियत रूस के लोगों को कोसते हुये नहीं अघाते। कारण यह है कि सोवियत देश विश्व में शांति कायम रखने का दृढ़ता से समर्थन करता है। सचमुच, आज अमरीका में 'शांति' शब्द सब से खतरनाक शब्द बन गया है। छोटे—छोटे अखबारों से लेकर 'वाल स्ट्रीट जर्नल' और 'न्यू यार्क टाइम्स' तक — सभी में पढ़ लीजिये: शांति अमरीका की सब से बड़ी शत्रु है।

बेशक, शांति अमरीकी जनता की शत्रु नहीं। वह शत्रु है अमरीकी जंगबाजों के गिरोह की, युद्ध का समर्थन करने वाले राजनीतिज्ञों की और फ़ौजी-शेखचिल्लियों की। अमरीकी नेताओं की मौजूदा नीति की सफलता के दर्शन नहीं हो रहे। इसका कारण यह है कि दुनिया के बहुसंख्यक लोग समझते जा रहे हैं कि मनुष्य जाति को जीवित रखने का एक मात्र उपाय शांति की सुरक्षा है। कोई भी समाज व्यवस्था — चाहे वह पूंजीवादी, समाजवादी, या जनता के जनतन्त्र वाली समाज-व्यवस्था

हो — शांति के बिना क़ायम नहीं रह सकती। यह उतना ही बड़ा वैज्ञानिक सत्य है जितना बड़ा और अकाट्य ऐटमी–विस्फोट का सत्य।

जीत, युद्ध की नहीं, शांति की होगी। और शांति के लिये विश्व-व्यापी संघर्ष के दौरान में दुनिया की जनता की अमरीकी अनैतिकता के प्रति घृणा अधिकाधिक बढ़ती जा रही है। इसके साथ ही सोवियत जीवन के हर पहलू के बारे में अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करने की उसकी लालसा बढ़ती जाती है। ईमानदार अमरीकी खुद स्वीकार करते हैं कि अमरीका अनैतिकता के भँवर में फँस गया है। पर ये अमरीकी इस बात को भुला देते हैं कि दो पीढ़ियों पहले के रूसी लोग इस नैतिक पतन की भयानकता को देख चुके थे। और तब सोवियत नवयुवकों ने अनैतिकता के खिलाफ़ झण्डा उठाया। ऐसा झण्डा जैसा अभी तक कभी किसी ने उठाने और सड़कों पर ले जाने का साहस नहीं किया था। इस झण्डे पर लिखा हुआ था : "वैज्ञानिक नियमों के आधार पर हम मानव जाति का सुधार कर रहे हैं।"

सोवियत वैज्ञानिकों का दावा था कि :— जब समाज व्यभिचार, अपराध–प्रवृत्ति और शराबखोरी के दलदल में डूबा हुआ हो तो पाप व्यक्ति विशेष की मानसिक चेतना का परिणाम नहीं हो सकता। पाप राष्ट्र की ही जिम्मेदारी हो जाता है ठीक उसी तरह जिस तरह 'टाइफस' और 'डिप्थीरिया' जैसे रोग राष्ट्र की जिम्मेदारी होते हैं।

—इतिहास सिद्ध कर चुका है कि कानून या मजहब का डर दिखा कर लोगों को अच्छा बना सकना असम्भव है।

—लोग पाप क्यों करते हैं इसका सच्चा उत्तर उन परिस्थितियों की जाँच करने पर ही मिल सकता है जिनमें वे अपना जीवन बिताते हैं। कंगाली और बेकारी दो ऐसे मुख्य कारण हैं जो लोगों को कुराह पर घसीट ले जाते हैं।

—विकृत काम प्रवृत्तियों को सामाजिक उपायों के द्वारा ही रोका जा सकता है,— ऐसे उपायों के द्वारा जो स्थाई प्रेम की भावना को बढ़ावा

हैं। इस भावना की अभिव्यक्ति विवाह और संतानोत्पत्ति में होती है।

—नैतिकता में बार-बार परिवर्तन होते रहे हैं। मनुष्य पैदायशी पापी नहीं होता, वह स्वभाव से ही पापी नहीं होता। दुराचार को तभी उखाड़ कर फेंका जा सकता है जब राष्ट्र की जनता के साथ राष्ट्र के नेता भी जीवन में सदुद्देश्य का मार्ग ग्रहण करें, जब अपनी और दूसरों की खुशहाली के लिये वे अपने जीवन को अर्पित करने के लिए तत्पर रहें। अर्थात् जब जीवन का उद्देश्य दूसरे मनुष्यों को पैरों तले रौंदना न हो।

इसी वैज्ञानिक आधार पर सोवियत नैतिकता का भव्य भवन खड़ा किया गया है और इस इमारत के चार खम्भा के रूप में २० करोड़ रूसी जनता की यह दृढ़ प्रतिज्ञा है कि राष्ट्रीयता, जाति धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था के भेद-भावों को भुला कर दुनिया की समूची जनता के हित में वह शांति की सुरक्षा करेगी।

सच्चाई पर धूल फेंकने, और मनुष्य को पाप प्रवृत्तियों को बढ़ावा देने या उन पर बड़े-बड़े आँसू बहाने का जमाना गुज़र चुका है। आज जो पाप हमारे समाज की जड़ें काट रहा है वह टाइफस से ज़्यादा अनादि और अनन्त नहीं। नहीं वह कुत्सित भोजन से अधिक रहस्यमय है। उसका दारोमदार अलग-अलग व्यक्तिओं पर ठीक उस तरह नहीं है जैसे बेरोज़गारी का दारोमदार चन्द इने-गिने लोगों पर नहीं होता।

बहुतों को यह विचार आश्चर्यजनक लगेगा कि नैतिकता और शांति एक ही चीज़ हैं। मैं आपको उन शब्दों को याद दिला दूं जो बहुत अरसे पहले सेंट पाल ने फिलिप्पियनों से कहे थे :

"अन्त में, भाइयो, जो कुछ भी सच है जो कुछ भी छलहीन है, जो कुछ भी न्यायपूर्ण है, जो कुछ भी पवित्र है, जो कुछ भी सुन्दर है, जो कुछ भी अच्छा है; — यदि ज़रा सा भी सदाचार तुममें बाकी है और यदि ज़रा सी भी प्रशंसा-भावना मौजूद है, तो इन्हीं बातों को याद करो।"

—:०:—